मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य

(सागर विश्वविद्यालय की पी० एच-डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० शिवसहाय पाठक

बी० ए०, (आनर्स), एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

ग्रन्थम, कानपुर

मूल्य : अठारह रुपए

● प्रकाशक :
ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर
● प्रकाशन तिथि :
नवम्बर, १९६४
● मुद्रक :
विवेक प्रिन्टर्स,
ब्रह्मनगर, कानपुर

आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

पूज्य गुरुवर आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

'पंथ लाइ जेहिं दीन्ह गिआनू ।'

को

प्रणतिपूर्वक

निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध में मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के अन्यतम महाकवि 'मलिक मुहम्मद जायसी और उनके काव्य' का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी साहित्य में जायसी को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय सर जार्ज ग्रियर्सन और पं० सुधाकर द्विवेदी को है। ग्रियर्सन ने द्विवेदी जी की सहायता से पदमावत का संपादन किया था। द्विवेदी जी की टीका रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से प्रकाशित हुई थी। उनके असामयिक निधन के कारण यह कार्य पूरा न हो सका। १९२४ ई० में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने पदमावत और अखरावट का संपादन किया। इस ग्रन्थ की भूमिका में उन्होंने विद्वतापूर्ण शैली में जायसी के वास्तविक मूल्यांकन का प्रयत्न किया। १९३५ ई० में शुक्लजी ने जायसी-ग्रन्थावली के अन्तर्गत 'आखिरी कलाम' नामक ग्रन्थ को भी प्रकाशित किया। १९५१ ई० में डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'जायसी–ग्रंथावली' के अन्तर्गत 'महरी बाईसी' नामक ग्रंथ को भी प्रकाशित किया। जायसी और पदमावत-विषयक और भी ग्रन्थ समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। शुक्लजी के पश्चात् जायसी के वास्तविक मूल्यांकन का प्रयत्न कम हुआ है। इस कार्य में जो व्यक्ति प्रवृत्त हुए हैं, उनकी कृतियों में प्रायः शुक्लजी का ही अनुकरण द्रष्टव्य हैं। उनकी मौलिकता इस बात में अवश्य है कि वे शुक्लजी के ही मतों को घटा-बढ़ाकर और काट-छाँटकर गृहीत करते हैं।

शुक्लजी ने भी जायसी के जीवन, व्यक्तित्व, गुरु-परम्परा, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, पदमावत की लिपि, पदमावत का रचना-काल प्रभृति विषयों पर सामग्री के अभाव में बहुत कम विचार किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के कृतित्व और व्यक्तित्व का अभी तक सम्यक् अध्ययन-अनुशीलन नहीं हो सका था। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस अभाव की पूर्ति का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विशिष्ट प्रयत्न संक्षेप में निम्नलिखित हैं :–

'प्रस्तावना' के अन्तर्गत जायसी-विषयक अद्यावधि शोधों और अध्ययनों का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। 'जायसी : व्यक्तित्व : जीवनी और गुरु-परम्परा के अन्तर्गत प्राचीन–नवीन उपलब्ध कृतियों के प्रकाश में एतदविषयक शोधपूर्ण नए तथ्य और विचार प्रस्तुत किए गये हैं। अभी तक यह माना जाता रहा है कि जायसी के दो गुरु थे, किन्तु प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यहां स्पष्ट कर दिया गया है कि वस्तुतः जायसी के एक ही गुरु थे–महदीं शेख बुरहान।

'जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा' के अन्तर्गत जायसी की स्फुट कृतियों का आलोचनात्मक-शोधात्मक परिचय दिया गया है। हिन्दी-साहित्य में

सर्वप्रथम 'चित्ररेखा' 'मसला' (मसलानामा) और 'कहरानामा' नामक ग्रन्थों का विवेचन इसी प्रबन्ध के अन्तर्गत किया गया है। जायसी की लिखी गई लगभग दो दर्जन कृतियाँ हैं। 'फारसी लिपि' के कारण ये लुप्तप्राय हैं। शोध के आलोक में ये कृतियां मिलती जा रही हैं और मेरा विश्वास है कि शीघ्र ही जायसी की सम्पूर्ण रचनायें प्रकाश में आ जायेंगी। 'चित्ररेखा' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित हो चुकी है। 'मसलानामा' की भी चार प्रतियां उपलब्ध हो चुकी हैं और इसे परिशिष्ट में संकलित कर दिया गया है। चित्ररेखा एक प्रेम-कथा है और 'मसला' लोकोक्तियों का संकलन।

द्वितीय खण्ड में 'पदमावत' का विस्तृत अनुशीलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत पांच अध्याय हैं। 'कथावस्तु : मूल स्रोत तथा अन्य उपकरण, शीर्षक अध्याय में एतद्विषयक सर्वांगीण अध्ययन, प्रामाणिक एवं शोधपूर्ण नये तथ्य और विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इस प्रबन्ध में पदमावत की लगभग तीन दर्जन हस्तलिखित प्रतियों का विवरण दिया गया है। लिपि के सम्बन्धमें विचार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि पदमावत फारसी लिपि में ही लिखा गया था। पदमावत के रचनाकाल की समस्या पर भी विचार किया गया है और मेरा मत है कि इसकी रचना ९४७ हि० (१५४० ई०) में हुई थी।

अभी तक पदमावत में ऐतिहासिकता की खोज की जाती रही है और इसकी उत्तरार्द्ध कथा को ऐतिहासिक कहा जाता रहा है। इस प्रबन्ध में ऐतिहासिकता का संगोपांग विवेचन करते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें रत्नसेन, चित्तौर, अलाउद्दीन, दिल्ली प्रभृति कतिपय नाम ही नाममात्र के लिए ऐतिहासिक हैं, वस्तुत: उस समय पद्मिनी नाम की कोई रानी ही नहीं थी। पदमावती रानी की कहानी भारतीय लोक और साहित्य की बड़ी प्राचीन कथा है। इन सबमें जायसी की तूलिका के कल्पना-विलासों और सम्भावनाओं का ही प्राधान्य है। कथावस्तु को निश्चित दिशा, गति, आधार और मोड़ देने के लिए पदमावत में अनेक कथानक रूढ़ियों की योजना की गई है। इस प्रबन्ध में कथानक रूढ़ियों का सविस्तार विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध काव्य के रूप में पदमावत एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें भारतीय प्रबन्ध काव्य—चरितकाव्य की शैली और फारसी की मसनवी शैली का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है। चरित्र-चित्रण, प्रकृति-चित्रण, और शैलीगत विवेचन के अन्तर्गत पदमावत के काव्य-सौष्ठव के सम्बन्ध में नवीन तथ्य एवं विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पदमावत की सांकेतिकता, मसनवी शैली, रूपवर्णन और अप्रस्तुत विधान आदि का विशद विवेचन भी किया गया है और शोधपूर्ण नए तथ्य भी उपस्थित किये गये हैं।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत 'जायसी का रहस्यवाद', 'जायसी की काव्यभाषा' के अतिरिक्त 'सूफीमत' का विशद एवं शोधपूर्ण विवेचन करते हुए जायसी की प्रेम–साधना का परिचय दिया गया है। 'प्रेमाख्यानक परम्परा और जायसी' के अंतर्गत शुद्ध भारतीय और सूफी प्रेमाख्यानों के उद्‌भव एवं विकास का शोधपूर्ण परिचय दिया गया है। साथ ही सूफियों की देन और जायसी के महत्व का मूल्यांकन भी किया गया है।

जायसी ने एक विराट समन्वय की चेष्टा की है। यह समन्वय हैं सूफी प्रेम-पंथ और भारतीय योगपंथ का, अध्यात्म और काव्य का, हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का, इतिहास की संभावनाओं और कल्पना-विलासों का, भारतीय और फारसी शैलियों का, लोक-तत्वों और काव्यतत्वों का, परम्परावाद और स्वछंद-तावाद का। इस विराट समवन्य की चेष्टा ने जायसी को भारतीय साहित्य के शीर्षस्थ कवियों में प्रमुख स्थान दिया है। वस्तुतः मध्ययुगीन हिन्दी कविता में महात्मा तुलसीदास और जायसी ही सर्वश्रेष्ठ प्रबन्धकार हैं।

मेरी प्रस्तुत साधना गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के चरण–कमलों में सम्पन्न हुई है। उन्होंने अत्यन्त प्रेम, उत्साह और वत्सलता के साथ इस प्रबन्ध के लिये विषय दिया-निर्देश किया और अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी इस विस्तृत प्रबन्ध का एक-एक अध्याय देखा, सुना और सुधारा है। यह उन्हीं के आशीष और सुयोग्य निर्देशन का परिणाम हैं कि 'चित्ररेखा' 'कहरानामा, और 'मसला' (या मसलानामा) नामक जायसी की विलुप्त कृतियां प्रकाश में आ सकी हैं। उन्हीं का आश्रय पाकर मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ—वस्तुतः इस प्रबन्ध की अच्छाइयों का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्य जी को है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता कैसे करूँ ? प्रस्तुत कृति के साथ उनके चरण-कमलों में करबद्ध श्रद्धावनत हूं, वस्तुतः उनके 'अनंत 'उपकार और अनुग्रह' से उऋण होना असम्भव है।

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० पं० नाथूराम प्रेमी, प्रो० शशिशेखर नैथानी, भाई चन्द्रबलीसिंह, प्रो० रामलषण शुक्ल, डा० राकेश गुप्त, आदि विद्वानों से मुझे प्रेरणाएं-सहायताएं मिली हैं। मैं इनके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री मार्शल जी ने पुस्तक-पत्र–पत्रिकाओं तथा अलभ्य हस्तलिखित प्रतियों से मेरी सहायता की है, मैं उनका आभारी हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखने में जिन पुस्तकालयों से, जिन भांडारों से, जिन हस्तलिखित प्रतियों से तथा जिन विद्वानों से और जिनकी कृतियों से मुझे किंचित भी सहायता मिली है, उन्हें मेरा धन्यवाद। जिनके मतों का मैंने खंडन–मंडन किया है, उन सबके प्रति मेरी श्रद्धा है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि भाई डा० प्रेमशंकर

जी के स्नेह के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ ? उनकी बहुमूल्य सहायता के लिये औपचारिक धन्यवाद का कोई महत्व नहीं है।

अन्त में, मैं गुरुवर आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के चरणों की वन्दना करता हूँ। मूलत: उन्होंने ही मुझे १९५३-५४ ई० में जायसी के अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया था। उनका आशीष साहाय्य मुझे सदा मिलता रहा है।

यदि प्रेम-पीर के अमर गायक जायसी और उनके काव्य का यह अध्ययन हिन्दी के साहित्य-देवता द्वारा स्वीकृत हुआ, तो यह मेरा सौभाग्य होगा—

'फूल सोइ जो महेसहिं चढ़ै।'

विनम्र,

दीपावली, २०२१ **शिवसहाय पाठक**

विषय निर्देशिका

——

१

प्रस्तावना

जायसी विषयक अध्ययन : अनुसन्धान

जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों के हैं। हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यों में पद्मावत शब्द, अर्थ और अलंकृति तीनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबन्धकाव्यों के गुण एकत्र प्राप्त हैं। मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त लौकिक और ऐतिहासिक कथावस्तु, भाषा की अत्यन्त विलक्षण शक्ति, जीवन के गम्भीर सर्वाङ्गीण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिन्तन आदि इसकी अनेक विशेषताएं हैं। सचमुच 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता हुआ हीरा है। इसके बहुविध पहल और घाटों पर ज्यों-ज्यों साहित्य-मनीषियों की ध्यान-रश्मियाँ केन्द्रित होंगी, त्यों-त्यों इस लक्षण-सम्पन्न काव्य-रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव-जीवन के चिरंतन सत्य प्रेम-तत्व की उत्कृष्ट कल्पना है। पद्मावत की प्रेमात्मक निर्मल ज्योति कितनी भास्वर है, उसमें कितना आकर्षण है, इसे शब्दों में प्रकट करना कठिन है। महाकवि ने एक ओर अनुत्तम रूप-ज्योति का निर्माण किया है और दूसरी ओर उस ज्योति को मानव के भाग्य में लिखी हुई अनिवार्य करुणा की सौभाग्य-विलोपी छाया के सम्मुख ला रखा है, किन्तु इस निर्मम कसौटी पर कसे जाने से वह आभा और अधिक प्रकाशित हो उठी। कवि के शब्दों में इस प्रेम-कथा का मर्म है—'गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।' (६५२।२) रत्नसेन और पद्मावती दोनों के जीवन का अन्तर्यामी सूत्र है—प्रेम में जीवन का पूर्ण विकास और नेत्र-जल में उसकी समाप्ति। प्रेम-तत्व की दृष्टि से पद्मावत का जितना अध्ययन किया जाय कम है। संसार के उत्कृष्ट महाकाव्यों में इसकी गिनती होने योग्य है। इसे अभी तक जो पद मिला है, भविष्य में उसके और उच्चतर होने की सम्भावना है।

इस ग्रन्थ-रत्न को हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान देने के विषय में दो मत नहीं हो सकते। हिन्दी साहित्य की प्रेमकाव्य-परंपरा के अन्तर्गत लिखे गए प्रबन्ध काव्यों में यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है। पद्मावत की रचना के

लगभग ३५ वर्ष पश्चात् अवधी भाषा की दूसरी सर्वश्रेष्ठ कृति का प्रणयन हुआ। यह गोस्वामी तुलसीदास का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। अवधी के ये दोनों ग्रन्थ-रत्न दो भिन्न चिन्ता-धाराओं के प्रतिनिधि काव्य-ग्रन्थ हैं। रामचरितमानस में 'नानापुराणनिगमागम सम्मत' निर्गुण-निराकार ब्रह्म को सगुण-साकार रूप में उपस्थित किया गया है। पद्मावत में लोक और साहित्य समादृत पद्मावती की कथा द्वारा अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए निर्गुण-निराकार प्रेम-प्रभु की आरती उतारी गई है। पद्मावत में सूफी और भारतीय सिद्धान्तों के समन्वय का सहारा लेकर प्रेम-पीर की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है, तो 'रामचरितमानस' में भारतीय सगुण भक्ति की धारा शत-सहस्र शाखाओं में फूटकर प्रस्रवित हुई है और मर्यादा, लोकमंगल एवं आदर्श की अमर गाथा का आकर बन गई है। इन्हीं मूलभूत सैद्धान्तिक अन्तरों के कारण दोनों रचनाएं दो भिन्न प्रकार की रचनाकोटि में आती हैं। रामचरितमानस शास्त्रोन्मुख (क्लैसिकल) अधिक है। प्रबंध-संघटन, रचना-कौशल, भाषा, छन्द, शैली इत्यादि सभी दृष्टिकोणों से तुलसीदास ने भारतीय काव्य-पद्धति का अनुसरण किया है। इसके ठीक विपरीत 'पद्मावत' लोकोन्मुख है। जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका और लोक-जीवन के प्रगाढ़ अनुभव से 'पद्मावत' की काव्यभूमि पर लोक और काव्य के अनेक उपादानों और प्रसाधनों के द्वारा उत्कृष्ट और गाढ़ अभिव्यंजना का विधान किया है। क्या भाषा और क्या भाव, क्या रचना-शिल्प और क्या छन्द, क्या कथा-वस्तु का संघटन और क्या रूप-सौन्दर्य वर्णन इत्यादि सभी दृष्टिकोणों से जायसी ने लौकिक और शास्त्रीय पद्धतियों का सुन्दर समन्वय किया है, परिणामस्वरूप 'पद्मावत' में सहज ही एक अनूठा सौंदर्य आ गया है।

पद्मावत के अतिरिक्त जायसी के और भी अनेक ग्रन्थ हैं इनमें 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'कहरानामा', 'चित्ररेखा' और 'मसलानामा' अभी तक उपलब्ध हो सके हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में इन सब उपलब्ध ग्रन्थों के सर्वाङ्गीण विवेचन का प्रयत्न किया गया है।

मध्ययुग में जायसी की कृतियों का बड़ा व्यापक प्रचार था। अराकान के मगन ठाकुर के राजकवि 'अलाओल' ने बंगाल में इसका अनुवाद किया था। फारसी में बज्मी आदि के अनेक अनुवाद ग्रन्थ मिलते हैं। पद्मावत तथा जायसी की अन्य कृतियों की प्रतियों के आधिक्य से भी यह बात स्पष्ट है। यद्यपि मध्ययुग में जायसी की प्रसिद्धि व्यापक थी, तथापि बीसवीं शताब्दी के पहले हिन्दी में जायसी को पुराने लोगों ने स्थान नहीं दिया। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक भी इनके मूल्यांकन का प्रयत्न नहीं हुआ। इस उपेक्षा का प्रधान कारण धार्मिक पूर्वाग्रह रहा है। पद्मावत की भाषा का (ठेठ अवधी का) पुरानापन, गूढ़ता, एवं शुद्ध संस्करण का अभाव भी जायसी की उपेक्षा के गौण कारण हो सकते हैं। और यही कारण है कि उनका

अध्ययन न हो सका था। बीसवीं शताब्दी में जायसी को हिन्दी-साहित्य के समक्ष उपस्थित करने का प्रथम श्रेय सर जार्ज ग्रियर्सन एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी को है। उन्होंने पद्मावत को प्रकाशित-संपादित किया था। इसके पश्चात् जायसी की कीर्ति को हिन्दी संसार में फैलाने और उनका वास्तविक मूल्यांकन करने का श्रेय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को है।

जायसी पर अब तक हुए अनुसन्धान : अध्ययन का परिचय

फ्रेन्च विद्वान् गार्सान्दितासी[1] ने अपने ग्रन्थ 'इस्त्वार द ला लितरैत्यूर ऐंदुई ऐ ऐन्दूस्तानी' के दूसरे भाग में जायसी के विषय में एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में जायसी के विषय में परिचयात्मक और शोधात्मक उल्लेख किए गए हैं। इसमें जायसी की कई संग्रहालओं में (और व्यक्तियों के पास) मिलने वाली हस्तलिखित प्रतियों का भी विवरण दिया गया है।

"जायसी जिन्हें जायसीदास भी कहा जाता है जो उनके हिन्दू से इस्लाम धर्मानुयायी बनने की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। ...... इसी लेखक की परमार्थ जपजी, सोरठ और पद्मावत नामक पुस्तकें भी हैं। उन्होंने १५४०-४१ ई० में 'पद्मावती' काव्य की रचना की।"[2]

शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज'[3] (१८७७ ई०) में जायसी का उपस्थिति-काल दिया हुआ है कि जायसी १६८० वि० में विद्यमान थे, किन्तु जायसी की मृत्यु १५९९ वि० में हो चुकी थी, अतः यह कथन विश्वासयोग्य नहीं है।

सर जार्ज ग्रियर्सन[4] ने 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' (१८८९ ई०) में पदमावत को हिंदी साहित्य का सबसे अधिक अध्ययन के योग्य ग्रन्थ

१—गार्सान्दितासी : इस्त्वार द ला लितरैत्यूर ऐंदुई ऐ ऐन्दूस्तानी। (इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण दो भागों में क्रमशः १८३९ और १८४७ ई० में पेरिस से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय परिवर्धित संस्करण तीन भागों में पेरिस से ही १८७०-७१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित अंशों का हिंदी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया है (हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित, "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" १९५३) इसमें हिन्दी के अनेक ग्रंथों के नाम-विवरण आदि जो तासी ने दिए थे, छोड़ दिए गए हैं, जैसे अखरावट की प्रति का विशेष उल्लेख भी छूट गया है।

२—वही, पृ० ८३-८६।

३—शिवसिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, सं० १९४० (एशियाटिक सोसायटी, बंगाल)।

४—सर जार्ज ग्रियर्सन : द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, १८८९ ई०। (हिंदी अनुवाद : किशोरीलाल गुप्त —हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, (१९५७)

बतलाया है। उनका कथन है कि जायसी ने शेरशाह के समय १५४० ई० में पदमावत लिखा था। जायसी ने कहानी का कुछ भाग उदयन की पद्मावती और रत्नावली से भी लिया है।'[१]

१९१३ ई० में मिश्रबंधुओं का प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद'[२] प्रकाशित हुआ। मिश्रबंधुओं ने अपने 'नवरत्न' में जायसी को स्थान नहीं दिया। उन्होंने अपने 'विनोद' में जायसी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। उन्होंने जायसी के पदमावत को इतिहास कहना ठीक माना है। सिवा एक दो छोटी-छोटी बातों के अतिरिक्त पद्मावती की अन्य सभी घटनाएं इतिहास से मिलती हैं। इनकी कविता से तत्कालीन रहन-सहन का पता चलता है। इनकी कविता में उद्दण्डता का अभाव नहीं है। इन्होंने कभी हिन्दू धर्म पर श्रद्धा नहीं दिखलाई। मिश्रबंधुओं के विवरण से स्पष्ट है कि जायसी विषयक उनका ज्ञान अत्यंत सीमित था।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा[३] ने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' के प्रथम भाग में पदमावत की कथा और उसके ऐतिहासिक पक्ष पर विचार किया है। ओझाजी ने प्रथम बार साहसपूर्वक प्रतिपादित किया है कि 'पदमावत ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कविताबद्ध कथा है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रचा गया है कि रत्नसेन चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुल्तान था जिसने उससे लड़कर चितौड़ का किला जीता था। उसमें अनेक इतिहास विरुद्ध बातें भी हैं। सिंहलद्वीप में गन्धर्वसेन नाम का कोई राजा नहीं हुआ। उस समय तक कुम्भलनेर आबाद तक नहीं हुआ था।'

१९२४ई० में पं०रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित होकर 'जायसी ग्रन्थावली', नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हुई इसमें जायसीकृत 'पदमावत' और 'अखरावट' दो ग्रन्थ थे। वस्तुत: जायसी-विषयक आज तक की समालोचनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आचार्य शुक्ल जी का ही है। १९३५ ई० में 'जायसी ग्रन्थावली' का परिवर्द्धित और संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें जायसी की एक और नवीन प्राप्त पुस्तक 'आखिरी कलाम' को भी संपादित करके प्रकाशित किया गया है। उनकी २१० पृष्ठों की विशद भूमिका के विषय में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों को हम दुहरा सकते हैं—"पदमावत की प्रस्तावना में आपने जैसी काव्य-मर्मज्ञता दिखाई है, वैसी हिन्दी तो क्या, अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी कम ही मिलेगी। यह प्रस्तावना अपने आप में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति

१—सर जार्ज ग्रियर्सन : द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान १८८९ ई०।
२—मिश्रबंधुविनोद : हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली, खंडवा और प्रयाग।
३—म०म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास।

है ।"[१] जायसी के अध्ययन की गहराई के दृष्टिकोण से शुक्ल जी की 'भूमिका' आज तक हुए जायसी-विषयक अध्ययनों में मूर्धन्य है । शुक्ल जी कृत 'पदमावत' की प्रेम-पद्धति, वियोग-पक्ष, संभोग-श्रृंगार, वस्तु-वर्णन, भाव-व्यंजना, अलंकार, स्वभाव-चित्रण और जायसी की भाषा' आदि की महत्ता आज भी ज्यों की त्यों है । आज तक के जायसी के आलोचक और हिन्दी के इतिहासकार शुक्ल जी के ही वाक्यों को हेर--फेर कर के प्रस्तुत कर देने में अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं । यह अत्यन्त सुस्पष्ट तथ्य है कि शुक्ल जी के पश्चात् उपर्युक्त विषयों पर विद्वानों ने जो कुछ भी लिखा है वह या तो शुक्ल जी के मतों का पिष्टपेषण है या मात्र अनावश्यक विस्तार।

यह अवश्य सत्य है कि विशिष्ट सामग्री के अभाव में प्रेमगाथा की परंपरा जायसी का जीवनवृत्त, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, जायसी का रहस्यवाद आदि विषयक शुक्लजी के मत पूर्ण नहीं कहे जा सकते । शुक्लजी के परवर्ती विद्वानों ने इसी ओर प्रवेश करने का साहस भी किया है । १९२५ ई० में बाबू सत्यजीवन वर्मा का 'आख्यानक काव्य'[२] शीर्षक एक ६० पृष्ठों का लेख प्रकाशित हुआ । इस लेख में उन्होंने उस समय तक के प्राप्त हुये बीस प्रेमाख्यानक काव्यों का उल्लेख करते हुए जायसी, कुतबन और मंझन का परिचय भी दिया था ।

डा० श्यामसुन्दरदास जी ने १९३० ई० में 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया । इसमें उन्होंने 'प्रेममार्गी भक्तिशाखा' शीर्षक के अन्तर्गत जायसी और उनके तीन ग्रंथों का लगभग एक पृष्ठ में परिचय दिया है ।[३] ऐतिहासिक दृष्टि से यह परिचय महत्वपूर्ण है ।

पं० चंद्रबली पाण्डेय ने १९३० ई० में 'सरस्वती'[४] में 'अखरावट' का रचनाकाल 'शीर्षक निबन्ध प्रकाशित कराया था । उन्होंने विद्वतापूर्ण तर्कों और अन्तः साक्ष्यों के आधार पर अखरावट के निर्माणकाल की विवेचना की है । सं० १९८८ (१९३१ ई०) में 'ना० प्र० पत्रिका' में पं० चन्द्रबली पाण्डेय का 'पदमावत की लिपि और रचना काल'[५] शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ । पांडेयजी का प्रस्ताव है कि "रचनाकाल विषयक मतभेद दो और चार का ही है । कवि ने पदमावत कैथी लिपि में ही लिखा था । हमारी समझ में उसका आरम्भ ९२७ हिजरी में हो गया था । पदमावत का रचनाकाल ९२७ हि० से ९४७ हि० तक ठहरता है ।"[६] "वे १५४०

१- पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ६५-६६ ।
२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, भाग ६ ।
३- डा० श्यामसुन्दरदास : हिन्दी भाषा और साहित्य,पृ०२९४ (द्वि०सं० १९९४) ।
४- सरस्वती, प्रयाग, १९३० ई० ।
५- ना०प्र० पत्रिका, काशी भाग १२,सं० १९८८ (लेख३), पृ० १०१-१४५ ।
६- वही, पृ० १४१-४२ ।

ई० तक पदमावत की रचना करते रहे, और ग्रंथ के समाप्त हो जाने पर शेरशाह को उचित शाहेवक्त पाकर उसकी बंदना भी उसमें जोड़ दी । हमको अपने कथन पर इतना बिश्वास है कि हम इसको अधिक बढ़ाना उचित नहीं समझते ।"[१] "पं० चंद्रबली पांडेय कृत" इस निबन्ध में विषयांतर भी है जो शोध-निबंध का एक अवगुण है और लेखक के तर्कों में कहीं--कहीं औद्धत्य और आधारहीनता भी दीख पड़ती हैं, साथ ही उसके निष्कर्ष हमें भ्रामक प्रतीत हो सकते हैं, पर इसमें कहीं भी गंभीरता का अभाव नहीं है ।"[२] सं० १९९० वि० (१९३३ ई०) में पं० चन्द्रबली पांडेय का 'जायसी का जीवनवृत्त'[३] शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ । ना० प्र० पत्रिका में जायसी विषयक प्रकाशित होनेवाले अन्य लेखों में म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'पदमावत का सिंहल द्वीप'[४] शीर्षक लेख उल्लेखनीय है । ओझा जी का मत है कि रत्नसेन इतने कम समय तक राजगद्दी पर रहा कि वह सिंहल (लंका) नहीं जा सकता था । पदमावत का सिंहल द्वीप समुद्र-स्थित लंका न होकर चित्तौड़ से चालीस मील पूर्व में स्थित 'सिंगोली' नामक प्राचीन स्थान है । कवि सिंगोली को सिंहल लिखा गया है । ओझा जी ने 'सिंहल' को 'सिंगोली' तो सिद्ध कर दिया, पर मार्ग के वन-कान्तार, कलिंग, सातसागर आदि के विषय में कोई भी तर्क-वितर्क नहीं प्रस्तुत किया ।

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने १९३३ ई० में 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ'[५] में एक लेख दिया था । इसमें उन्होंने पदमावत की कथा और जायसी के अध्ययन पर विचार किया था ।

डा० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित 'पदुमावति[६]' में टेकचन्द ने 'जायसी' और उनके 'पदमावत' का एक संक्षिप्त परिचय दिया है । चार पृष्ठों के 'फोरवर्ड' में उन्होंने पदमावत की कहानी, रचना-काल (१५४०ई०) और जायसी की कुछ विशेषताओं का परिचयात्मक विवरण देते हुए 'विद्वान् सम्पादक सूर्यकान्त शास्त्री के प्रस्तुत बड़े दार्शनिक मूल्य वाले 'संम्पादन कार्य' की प्रशंसा की है । 'हिन्दू' धर्म और लोकतत्वों का उनका सुन्दर ज्ञान था । हिन्दू संस्कृति और धर्म के ज्ञान के लिए हिन्दू पंडितों से वे वर्षों तक संस्कृत पढ़े थे । उनका

१– वही, पृ० १४५ ।

२– ना० प्र० पत्रिका, काशी, वर्ष ६४, सं० २०१६, पृ० १९१ ।

३– वही, भाग १४, वर्ष सं० १९९० ।

४– वही, भाग १३, वर्ष सं० १९८९ ।

५–'पदमावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद, 'पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रन्थ' ना० प्र० सभा, काशी, सं०१९९० ।

६–पदुमावति : सूर्यकान्त शास्त्री, प्राक्कथनलेखक : आनरेबुल जस्टिस टेकचन्द, प्रथम भाग, खं० १-२५, पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर, १९३४ ई० ।

काव्य-शास्त्र और छंदशास्त्र पर पूरा अधिकार था।' [१]

'पदुमावति' की दस पृष्ठों की भूमिका (प्रीफेस) में श्री सूर्यकान्त शास्त्री ने जायसी और पदमावत पर एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें 'पदमावत की संक्षिप्त कथा' जायसी की रहस्यवादिता, लौकिक और अलौकिक प्रेम का समन्वय, प्रेम का उन्नत रूप, जीवन-दर्शन, पद्मावत अन्योक्ति है' आदि बातों का उल्लेख किया गया है। 'इस सन्त के व्यक्तित्व के विषय में हमें बहुत कम बातें ज्ञात हैं। मोहम्मद उनका नाम था, मलिक कौटुम्बिक उपाधि थी। वे जायस के रहने वाले थे। वे ८३० हि० में 'कंचाना मुहल्ला' में पैदा हुए थे। ११६ वर्ष तक जीवित रहे। उनकी चौदह रचनायें कही जाती हैं—पोस्तीनामा, कहारनामा, मोराईनामा, मेखरावट, चम्पावती, अखरावट, पदुमावति, और आखिरी कलाम।,[२] 'पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है। यह ग्रन्थ परिशियन लिपि में लिखा गया था। देवनागरी के अनुलिपि कर्ताओं ने प्रतिलिपि करते हुए अनेक भूलें की हैं।[३]

१९३४ ई० में ही 'जायसी और प्रेम तत्व'[४] विषय पर पं० परशुराम चतुर्वेदी ने एक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखा था। डा० रामकुमार वर्मा[५] ने १९३७ ई० में पदमावत पर एक आलोचनात्मक लेख लिख कर उसके संक्षिप्त मूल्याँकन का प्रयत्न किया था। डा० वर्मा ने १९३८ ई० में अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'[६] में प्रेमकाव्य और जायसी के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। जायसी का जीवन, काव्य-रचना, अध्यात्मवाद, हिन्दू संस्कृति आदि विषयों का उन्होंने विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। सैयद आले मोहम्मद केहर[७] जायसी ने १९४० ई० में मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित विषय पर एक सुन्दर और खोजपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किथा था। पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मुहम्मद जायसी'[८] नामक एक लेख लिखा था। थोड़े से परिवर्तन के साथ निबन्ध 'हिन्दी के कवि और काव्य' भाग ३ में प्रकाशित किया गया है। १९४१

१—वही, 'फोरवर्ड' पृ० २।
२—वही, पृ० ४।
३—वही, पृ० ६।
४—हिन्दुस्तानी, भाग ४, अंक ३, जुलाई १९३४ ई०।
५—सम्मेलन पत्रिका, पौष-माघ, १९९४ वि०।
६-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (सं० ७५०-१७५०)
७—ना० प्रा० पत्रिका, वर्ष ४५, सं० १९९७।
८—ना०प्र० पत्रिका में प्रकाशित 'हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मोहम्मद जायसी।

ई०में सैयद कल्वे मुस्तफा जायसी[1] ने 'मलिक मुहम्मद जायसी' नामक एक पुस्तक उर्दू में लिखी है। इन्होंने लिखा है कि 'पदमावत' फारसी लिपि में लिखा गया था। जायसी का जन्म ९०० हि० १४९५ ई० में जायस में हुआ था। ये सच्चे मुसलमान थे। महान् सूफी सन्त थे। इनका सिंहल बम्बई के पास अरब सागर में था। पद्मावती की कहानी में पद्मावती की कथा काल्पनिक है। इनमें रत्न-सेन भी काल्पनिक है। 'गोरा-बादल दो व्यक्ति नहीं थे—यह एक व्यक्ति था।' 'पद्मावत' में वर्णित प्रेम में भारतीय और फारसी दोनों के प्रेम-तत्वों का मिश्रण है। सन् १९४४ ई० में ए० जी० शिरेफ ने सर[2] जार्ज ग्रियर्सन कृत 'पद्मावती' के अनुवाद को पूरा करके बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित करवाया। १८९६ ई० में ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने 'पदमावती'का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। 'पद्मावती' की भूमिका में सर्व प्रथम ग्रियर्सन ने जायसी के महत्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। १९११ में पदमावती का (१ से २५ खण्ड तक) पाठ और भाष्य विस्तृत आलोचनात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुआ था। पं० सुधाकर द्विवेदी का स्वर्गवास हो जाने के कारण कार्य आगे न बढ़ सका। १९३८ ई० में शिरेफ ने ग्रियर्सन की अनुमति से इस अधूरे कार्य को हाथ में लिया। उन्होंने इस कार्य को १९४० ई० में पूर्ण किया।[3] शिरेफ ने इस ग्रन्थ की भूमिका में जायसी का संक्षिप्त परिचय दिया है। शिरेफ के 'पदमावती' का पाठ प्रायः ग्रियर्सन और शुक्ल जी द्वारा स्वीकृत पाठ ही है। मूलतः यह एक अनुवाद ग्रन्थ है। यह अनुवाद आज भी महत्वपूर्ण है। शिरेफ की टिप्पणियाँ तो जायसी के अध्ययन के लिये सदा पथ-निर्देशन का काम करेंगी।

डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने १९४७ में 'मलिक मुहम्मद जायसी भाग १'[4] नामक पुस्तक प्रकाशित की। (आज तक इस भाग १ का पूरक भाग २ नहीं ही प्रकाशित हुआ)। १९५३ ई० में डा० कमल कुलश्रेष्ठ का 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य'[5] प्रकाशित हुआ। डा० श्रेष्ठ के इस ग्रन्थ के विषय में श्री गोपालराय[6] का मत उल्लेखनीय है—"डाक्टरेट के लिए प्रस्तुत किए गए शोध ग्रंथों में जिस त्वरा से काम लिया जाता है, और उसके जो दुष्परिणाम होते हैं, यह ग्रंथ उसका सजीव

१--सैयद कल्बे मुस्तफा जायसी मलिक मुहम्मद जायसी, १९४१ ई०।

२-- ए० जी० शिरेफ : पदमावती ।

३- ए० जी० शिरेफ ; पदमावती अंग्रेजी अनुवाद—भूमिका।

४- डा० कमल कुलश्रेष्ठ : म० मु० जायसी भाग १, १९४७।

५- डा० कमल कुलश्रेष्ठ : हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, चौधरी मानसिंह, प्रकाशन, कचहरी रोड, अजमेर, १९५३।

६-- गोपाल राय ; ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ६४, सं० २०१६, पृ० १९६--९७--९८।

उदाहरण है। इस पुस्तक में दोषों की मात्रा इतनी अधिक है कि उनको समुचित रूप से दिखाने के लिए एक स्वतंत्र निबंध की आवश्यकता होगी। समूचा ग्रंथ भ्रान्त आधारों, दुर्बल तर्कों और अशुद्ध निष्कर्षों से पूर्ण है। गम्भीर अध्ययन का अभाव पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। किसी तरह पृष्ठ पूरा करने का प्रयास इतना स्पष्ट है कि लेखक पर दया आती है। — 'फारसी मसनवी का विकास और उसका हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पर प्रभाव', 'कहानी कला', आदि परिच्छेद भी नितान्त हल्के हैं। पदमावत की रचना-तिथि के सम्बन्ध में लेखक का मत और भी हास्यास्पद है। आखिरी कलाम का अर्थ लेखक की अन्तिम रचना मानना निराधार और भ्रमपूर्ण है। लेखक के प्रायः सभी निष्कर्ष दोषपूर्ण हैं। डा० श्रेष्ठ के निष्कर्षों के दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि उन्होंने केवल सात ग्रन्थों के आधार पर अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है और उन्होंने सूफी और सूफीतर प्रेमकाव्यों का वर्गीकरण करके उन पर अलग-अलग विचार भी नहीं किया है। इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा दोष संश्लेषण का अभाव है। प्रेमकाव्य के किसी पक्ष का स्पष्ट विवेचन इस ग्रन्थ में नहीं हो सका है। भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती हैं।[१] 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' के विषय में श्री गोपाल राय का यह कथन ठीक ही है।

१९४९ ई० में डा० लक्ष्मीधर का 'पदुमावती' दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्सटीन्थ सेंचुरी हिन्दी [अवधी][२] नामक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। लेखक ने प्रारम्भ में २९ पृष्ठों में पदमावत की भाषा पर व्याकरणिक दृष्टिकोण से विचार किया है। दूसरे भाग में पदमावत के १०६ छन्दों का पाठ-संपादन है और तीसरे भाग में संपादित पाठ का अंग्रेजी अर्थ दिया गया है। चौथे भाग में पदमावत की शब्द-सूची दी गई है [इस ग्रंथ की आलोचना आगे दी गई है]। पं० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'सूफी काव्य संग्रह'[३] [१९५० ई०] नामक ग्रंथ में हिन्दी के सूफी कवियों का [जायसी का भी] संक्षिप्त पर शोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने १९५१ ई० में 'जायसी ग्रन्थावली'[४] का संपादन किया है [इसकी चर्चा आगे की गई है]। १९५२ में चार्ल्स नेपियर का 'नई जायसी ग्रन्थावली तथा पदमावत की लिपि और रचनाकाल'[५] शीर्षक निबन्ध

१– ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ६४, सं० २०१६, पृ० १९६-९७-९८।

२– डा० लक्ष्मीधर, पदुमावती दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्सटीन्थ सेंचुरी हिन्दी [अवधी], ल्यूजक एण्ड कम्पनी, लन्दन से प्रकाशित।

३– परशुराम चतुर्वेदी : सूफी काव्य संग्रह, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५०।

४– डा०माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५१ई०।

५– ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सं० २००९, पृ० ३३१-४२।

प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध में लेखक ने प्रमाणित किया है कि पदमावत मूलत: 'फारसी लिपि में लिखा गया था।[१]' इस निबन्ध में लेखक ने डा० गुप्त की 'जायसी ग्रन्थावली' का विशद गुण दोष विवेचन भी किया है।

१९५५ ई० में डा०विमलकुमार जैन का प्रबन्ध 'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' हिन्दी अनुसंधान, परिषद्, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसी विषय पर बहुत पहले ही पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने [१९४५ ई०] 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' नामक ग्रन्थ लिखा था। १९५६ ई० में श्री रामपूजन तिवारीकृत 'सूफीमत : साधना और साहित्य' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इन तीनों ग्रन्थों का मूल प्रतिपाद्य सूफीमत का उद्भव और विकास ही है। १९५५ ई० में श्री हरिकान्त श्रीवास्तव का 'भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य' नामक शोधप्रबन्ध प्रकाशित हुआ। इस प्रबंध में हिन्दू कवियों द्वारा लिखित प्रेमकाव्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। १९५६ ई० में डा० सरला शुक्ल का प्रबन्ध 'जायसी के परवर्ती कवि और काव्य' लखनऊ विश्व-विद्यालय से प्रकाशित हुआ। इसमें जायसी के पश्चात् के सूफी प्रेमाख्यानों का विवेचन किया गया है। १९५६ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थीकृत 'पदमावत का काव्य-सौंदर्य' प्रकाशित हुआ। "इसमें पदमावत के काव्यगत सौन्दर्य को नये सिरे से देखने का प्रयास है और मेरे विचार में यह प्रयास बहुत अच्छा हुआ है"।[२] १९५७ ई० में डा० जयदेव का शोध प्रबन्ध 'सूफी महाकवि जायसी' नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का रचनाकाल १९४९ ई० है और इसका प्रकाशन १९५७ ई० में हुआ है। इस ग्रंथ में १९४९ ई० के पश्चात् शोध में प्राप्त किसी भी सामग्री का उपयोग नहीं किया गया है।" इस अध्ययन में ऐसी कोई भी बात नहीं दीख पड़ती, जिसके बल पर इस ग्रन्थ को अनुसंधान ग्रन्थ कहा जाय। इसमें न तो लेखक ने किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन किया है और न उसे ज्ञात तथ्यों की मौलिक व्याख्या और उनके बीच नवीन सम्बन्ध-स्थापन में ही सफलता मिल सकी है। यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ से जायसी विषयक हमारी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं हुई। सारा ग्रन्थ अनावश्यक विस्तार, उथले विचारों और दुर्बल तर्कों से भरा हुआ है। मौलिकता का इसमें सर्वथा अभाव है। शुक्ल जी के ही कथनों को प्राय: हेरफेर के साथ दुहरा भर दिया गया है। जायसी के जीवन-वृत्त-विषयक किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन नहीं हुआ है, उसके तर्क भी सुचिन्तित नहीं हैं। इसके दूसरे अध्याय से जायसी के जीवन-वृत्त से सम्बद्ध हमारी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं होती। अनावश्यक विस्तार करके पुस्तक का कलेवर बढ़ाया गया है। अनावश्यक विस्तार, पिष्टपेषण और छिछलेपन का इससे बढ़कर कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता।

१—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, संख्या २००९, पृ० ३४१।

२—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : पदमावत का काव्य-सौंदर्य—'शुभकामना' से उद्धृत।

चरित्र-चित्रण में लेखक ने अपनी दयनीय विवेकशून्यता का परिचय दिया है। इस ग्रन्थ के सभी अंश जिनके सम्बन्ध में मौलिकता का दावा किया गया है, भ्रामक और आधारहीन हैं । लेखक मंझन को जायसी का पूर्ववर्ती कवि मानता है जो गलत है । ...किसी भी दशा में इसे शोधग्रंथ कहना तो उचित नहीं । प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी आलोचना-साहित्य के विकास में लेशमात्र भी योग नहीं मिला है ।"[१] श्रीगोपालराय का उपर्युक्त कथन यथार्थ है । यदि श्री जयदेव जी थोड़ा श्रम और अध्ययन किये होते तो संभवत: उनकी कृति मूल्यवान होती, पर अध्ययन और श्रम के अभाव में "शुक्ल जी के मतों का पिष्टपेषण और शुक्ल जी की ही निन्दा करके और कहीं-कहीं शुक्ल जी के प्रमाणिक मत को काट कर उन्होंने भारी भूल की है। आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ग्रन्थों में जायसी-विषयक-विवेचन एवं अध्ययन के लिए नई दिशाओं का निर्देशन भी किया है । उन्होंने हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य, नाथ-सम्प्रदाय, मध्यकालीन धर्म-साधना प्रभृत्ति ग्रन्थों में जायसी और उनके अध्ययन के नवीन आयामों का उद्घाटन किया है। उनके मतानुसार 'पदमावत' में ऐतिहासिकता के लिए मूड़ मारना बेकार है । उसका सम्पूर्ण सौंदर्य काव्य का है । उसमें भारतीय काव्यों की कथानक रूढ़ियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । पदमावत की कथा भारत की प्राचीन कथाओं में है ।'

हिन्दी साहित्य के कतिपय अन्य इतिहास–ग्रन्थों में भी जायसी विषयक चर्चाएं की गई हैं, किन्तु प्राय: शुक्ल जी की [जायसी–ग्रन्थावली की] भूमिका का ही सार-रूप सर्वत्र देखने को मिलता है ।

कुछ लोगों ने जायसी पर अलग से भी ग्रन्थ लिखे हैं, डा० रामरतन भट–नागर का 'जायसी' डा० सुधीन्द्र का 'कविवर जायसी और उनका पदमावत,' श्री इन्द्रचन्द्र नारङ्गकृत 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार और 'पदमावत-सार' प्रो० दान बहादुर पाठक कृत 'जायसी की काव्य-साधना,' श्री यज्ञदत्त शर्माकृत 'जायसी साहित्य और सिद्धान्त, श्री पुरुषोत्तमचन्द्र वाजपेयीकृत 'कबीर और जायसी का मूल्याँकन' आदि ग्रन्थ हिन्दी के बी० ए०, एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए लिखे गये हैं । इन ग्रंथों में श्री नारंग जी कृत पदमावत सार की भूमिका और 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' शोध एवं चिन्तनपूर्ण ग्रंथ हैं । पटना विश्वविद्यालय के प्रो० सयद हसन अस्करी के कई लेख सूफीमत, हिन्दी साहित्य और जायसी से सम्बद्ध प्रकाशित हुए हैं । 'कान्ट्रीब्यूशन आफ दी सूफीज आफ दी नार्थ टू हिन्दी लिटरेचर'[२] [१९५३ ई०], 'ए न्यूली डिस्कवर्ड वाल्यूम आफ अवधी वर्क्स एन्क्लूडिंग पदमावत

१—गोपालराय : ना० प्र० पत्रिका, २०१६, अंक ३-४, पृ० २०९-१२ ।

२—करेन्ट स्टडीज : पटना कालेज, पटना, १९५३, अंक २ ।

एण्ड अखरावट आफ मलिक मुहम्मद जायसी'[१] 'रेयर फ्रेगमेंट्स आफ चन्द्रायन एण्ड मृगावती'[२] [१९५५ ई०] आदि लेख हिन्दी शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। प्रो० अस्करी ने चन्दायन के रचनाकाल का प्रामाणिक विवरण दिया है, मनेर शरीफ खानकाह से पदमावत, अखरावट, महरीनामा, अरिल्ल, वियोगसार प्रभृति ग्रंथों को खोज निकाला है और सूफी सम्प्रदायों और कतिपय सूफी सन्तों का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार पदमावत का रचनाकाल ९४७ हि० है। सन् १९५६ ई० में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय पत्रिका, वर्ष १० में एक निबन्ध 'दि बिहार शरीफ मेनस्क्रिप्ट आफ पदमावत' प्रकाशित कराया। इस लेख में उन्होंने ग्रियर्सन, शुक्ल और माताप्रसाद गुप्त आदि द्वारा संपादित पदमावत के विभिन्न संस्करणों तथा मनेरशरीफ की हस्तलिखित प्रति से बिहार शरीफ से प्राप्त 'पदमावत' की हस्तलिखित प्रति के पाठान्तरों का सविस्तार विवेचन किया है।

पं० मुन्शीराम शर्मा कृत 'पदमावत' [पूर्वार्द्ध, सटीक[३]] में शुक्लजी के ही पाठ को प्रधानता दी गई है।[४] यह एक सुन्दर और उपयोगी टीका है, कहीं-कहीं तो शर्मा जी ने अत्यन्त सुन्दर अर्थ किए हैं, जैसे "किछु कहि चला तबल देइ डगा।" का अत्यन्त उपयुक्त अर्थ।[५] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पदमावत मूल्य और संजीवनी व्याख्या'[६] में अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से पदमावत के अर्थानुसंधान का प्रयत्न किया है। इस संजीवन भाष्य द्वारा कोई भी हिन्दी जानकार पदमावत के सौंदर्य का रसास्वादन कर सकता है। इसके प्रारम्भ में डा० अग्रवाल ने ५५ पृष्ठों के विशद 'प्राक्कथन' में 'पदमावत का पाठ', 'रचनाकाल', 'गुरुपरम्परा', 'अध्यात्म पक्ष' आदि पर गम्भीरता पूर्वक और विद्वतापूर्ण ढंग से विचार किया है। श्री गोपालराय कृत 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में आलोचना तथा अनुसंधान'[७] और 'जायसी से सम्बद्ध तिथियों का पुनः परीक्षण'[८] शीर्षक लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी अनुशीलन के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक में प्रकाशित 'जायसी : तिथिक्रम और गुरुपरम्परा' [लेखक पं० रामखेलावन

१—जे० बी० आर० एस०, वर्ष ३९, अंक १-२ (मार्च-जून)।

२—करेन्ट स्टडीज, पटना कालेज, पटना १९५५, पृ० ३३।

३—पं० मुन्शीराम शर्मा : पदमावत, संशोधित संस्करण, १९५८ ई०।

४—वही, प्राक्कथन (च)।

५—वही (टीका भाग) पृ० ११ (दोहा २३ का अर्थ)।

६—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) १९५५ ई०, चिरगाँव झाँसी से प्रकाशित।

७—ना० प्र० पत्रिका, २०१६, अंक ३-४, वर्ष ६४।

८—हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-सितम्बर १९५८, वर्ष ११, अंक ३।

पाण्डेय] और 'जायसी की विरहानुभूति का आध्यात्मिक पक्ष' [डा० मुन्शीराम शर्मा] भी जायसी से सम्बद्ध अध्ययनों में अद्यावधि शृंखला के रूप में समादृत हैं। १९५८-१९५९ ई० में प्रस्तुत लेखक ने 'चित्ररेखा' को प्रकाशित किया। उसकी भूमिका में 'मसलानामा' या 'मसला' की प्राप्त प्रति का भी उल्लेख किया गया है। ('चित्ररेखा' के लिए देखिये—'एक बोल' : आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चित्ररेखा)।

अब तक जायसी के ग्रंथों (मुख्यत: पदमावत) के कई संस्करण-संपादन हुये हैं—

(१) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित, १८८१ ई० (सम्पादक अज्ञात)।

(२) रामजसन मिश्र द्वारा सम्पादित, चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी से प्रकाशित, १८८४ ई०।

(३) बंगवासी फर्म द्वारा १८९६ ई० में प्रकाशित।

(४) मौलवी अली हसन द्वारा सम्पादित, मुन्शी नवलकिशोर द्वारा प्रकाशित।

(५) शेख अहमद अली द्वारा सम्पादित, शेख मुहम्मद अजीमुल्लाह द्वारा कानपुर से प्रकाशित।

(विशेष—मौलवी अली हसन और शेख अहमद अली द्वारा सम्पादित पदमावत के पाठ अत्यन्त उपयोगी हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त[1] ने भी अपने पदमावत के संस्करण में इन प्रतियों का उपयोग किया है। इन दोनों प्रतियों के पाठ शुक्ल जी और ग्रियर्सन के पाठ का व्यापक समर्थन करते हैं)।

(६) दी पदुमावति आफ मलिक मुहम्मद जायसी, १९११-१२ ई०, जी० ए० ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित, १ से २५ खण्डों तक, रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बेंगाल, कलकत्ता से प्रकाशित। इन दोनों विद्वान् संपादकों ने ग्यारह[2] हस्तलिखित प्रतियों (तृ० १, ३, द्वि० २, ३, द्वि० ४, ५, प्र० १, तीन कैथी लिपि की तथा एक उदयपुर की नागरी लिपि की प्रतियाँ) की सहायता से पाठ-निर्धारण का प्रयत्न किया था।[3]

(७) जायसी-ग्रंथावली—(१९२४ ई० प्रथम संस्करण, १९३५ द्वि० सं०) नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित, पं० रामचन्द्र शुक्ल

१—डा० माता प्रसाद गुप्त, जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ० १०६।

२—वही, पृ० १०६।

३—सूर्यकान्त शास्त्री : पदुमावती, प्रीफेस, पृ० ६ (ग्रियर्सन और द्विवेदी ने सात हस्तलिखित प्रतियों-चार फारसी, दो देवनागरी, एक कैथी-की सहायता से पाठ-निर्धारण किया था)।

द्वारा सम्पादित, इसके प्रथम संस्करण में पदमावत और अखरावट दो ही ग्रंथ थे। द्वितीय संस्करण में 'आखिरी कलाम' को भी संपादित करके प्रकाशित किया गया।

(८) पदमावत पूर्वार्द्ध-१८२५ ई०, लाला भगवानदीन द्वारा सम्पादित, १ से ३३ खण्डों तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित।

(९) संक्षिप्त पदमावत–१९२६ ई०, श्री श्यामसुन्दर दास और सत्यजीवन वर्मा द्वारा सम्पादित, इण्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित।

(१०) पदुमावति १९३४ ई०, १ से २५ खण्ड तक, पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर द्वारा प्रकाशित और सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित।

(११) पं० भगवती प्रसाद द्वारा संपादित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

(१२) 'पदुमावती : दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्स्टीन्थ सेन्चुरी हिन्दी (अवधी) डा० लक्ष्मीधर (द्वारा सम्पादित केवल १०६ छन्दों का पाठ-सम्पादन) । और ल्यूजक एण्ड कम्पनी लन्दन से १९४९ ई० में प्रकाशित।

(१३) जायसी ग्रंथावली (डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी १९५१ ई०।

(१४) जायसीकृत 'पदमावत' संजीवनी व्याख्यायुक्त, संपादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, १९५५।

(१५) चित्ररेखा–१९५८–५९ ई०, पं० शिवसहायक पाठक द्वारा सम्पादित, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित।

डा० ग्रियर्सन और सुधाकर का संस्करण–सर जार्ज ग्रियर्सन ने पदमावत का संपादन और पाठ-निर्धारण करते समय दस प्रतियों का उपयोग किया था। सात प्रतियों (जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है) के अतिरिक्त तीन कैथी लिपि की तथा एक उदयपुर राज्य वाली नागरी लिपि की प्रतियां उनके समक्ष थीं। तीनों कैथी प्रतियों के पाठ एक जैसे थे, अतः कैथी की तीन प्रतियों में से केवल एक के पाठांतर उन्होंने अपने संस्करण में दिए हैं। उदयपुर की नागरी प्रति के पाठान्तर उन्होंने दिए हैं। प्रतियों का बहुमत और 'द्वितीय प्रति ३' के पाठ को उन्होंने सामान्यतः ग्रहण किया है।[१]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का संस्करण–शुक्ल जी के समक्ष पदमावत के चार संस्करण प्रस्तुत थे–१. नवलकिशोर प्रेस का, २. पं० रामजसन मिश्र का, ३.

१–डा० माताप्रसाद गुप्त : जायसी ग्रंथावली, पृ० १०६।

कानपुर के किसी प्रेस का, और ४. म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन का[1] इनके अतिरिक्त शुक्ल जी के पास "कैथी लिपि में लिखी एक हस्तलिखित प्रति भी थी, जिससे पाठ के निश्चय करने में कुछ सहायता मिली है।[2]"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं–

(१) शुक्ल जी के समक्ष प्रत्यक्षतः-अप्रत्यक्षतः कुल मिलाकर लगभग १६ प्रतियाँ थीं —(क) नवलकिशोर प्रेस की प्रति, (ख) रामजसन मिश्र का संस्करण, (ग) कानपुर के किसी प्रेस का संस्करण, (घ) ११ प्रतियों के आधार पर पाठ-निर्धारित और प्रकाशित ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी वाला संस्करण जिसमें संपादकों ने विभिन्न प्रतियों के पाठान्तर भी दिए हैं, (ङ) एक हस्तलिखित कैथी अक्षरों वाली प्रति अर्थात् शुक्ल जी के समक्ष ग्रियर्सन आदि के संस्करण की हस्तलिखित प्रतियों का रूप भी विद्यमान था। डा० माताप्रसाद गुप्त का आक्षेप है कि "हस्तलिखित प्रति के नाम पर केवल एक प्रति का उपयोग उन्होंने किया था। प्रतिलिपि-परम्परा, प्रक्षेप-परम्परा, पाठान्तर-परम्परा आदि के आधार पर ग्रंथ के पाठ-निर्धारण की बात ही शुक्लजी के संस्करण के विषय में नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि प्रति के नाम पर केवल एक हस्तलिखित प्रति का उन्होंने उपयोग किया। ग्रियर्सन की भांति ही शुक्ल जी का ध्यान भी इस बात की ओर नहीं गया कि वास्तव में पदमावत की आदि प्रति उर्दू नहीं, नागरी लिपि में थी इसलिए वे भी उसी प्रकार मार्ग के बीच में रह गए जैसे ग्रियर्सन। जायसी की भाषा और छन्दयोजना के स्वरूपों का भी ठीक-ठीक परिज्ञान उनके संस्करण में नहीं दिखाई पड़ता है।[3] जिनका (ग्रियर्सन और कानपुर वाले संस्करण का) इतना ऋण शुक्ल जी पर है, उनकी जिन शब्दों में खबर शुक्ल जी ने ली है, वह शुक्ल जी जैसे समालोचक के लिए ही संभव था"।[4]

यह कथन उपयुक्त नहीं है कि शुक्ल जी के सामने केवल एक हस्तलिखित प्रति थी। डा० ग्रियर्सन और पं० सुधाकर द्विवेदी की ग्यारह हस्तलिखित प्रतियों की चर्चा स्वयं डा० गुप्त ने की है, यह भी स्पष्ट है कि ग्रियर्सन ने अपने संस्करण में प्रतियों के पाठान्तर भी दिए हैं और इस प्रकार शुक्ल जी के समक्ष ये पाठान्तर और निर्धा-

---

१—पदुमावती, सर जार्ज ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी।

२—रामचन्द्र शुक्ल–वक्तव्य, प्र० सं०, पृ० ५।

३—माताप्रसाद गुप्त–ज० ग्रं०, भूमिका, पृ० ११५।

४—डा० माताप्रसाद गुप्त : जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ११४।

रित पाठ भी विद्यमान थे।

शुक्ल जी ने ग्रियर्सन और सुधाकर जी की 'लम्बी-चौड़ी टीका–टिप्पणी' की आलोचना की है। शब्दार्थ टीका और टिप्पणियों की अशुद्धता और भ्रमपूर्णता का उन्होंने अवश्य उल्लेख किया है। शब्दों की गलत व्युत्पत्ति[१] पर वे अवश्य झुंझलाए हुए थे–जो एक आचार्य के लिए स्वाभाविक भी था। ग्रियर्सन वाले संस्करण के पाठ-निर्धारण से शुक्ल जी सहमत थे–"कहीं-कहीं अर्थ ठीक बैठाने के लिए पाठ भी विकृत कर दिया गया है"।[२] कुछ ऐसे स्थल अवश्य थे, जिनका उल्लेख शुक्ल जी ने किया है।

जहां तक पाठ–निर्धारण का प्रश्न है शुक्ल जी ने लिखा है, "कैथी प्रति से पाठ–निर्धारण में कुछ सहायता मिली। पाठ अवधी व्याकरण और उच्चारण तथा भाषा–विकास के अनुसार रखा गया है। कभी–कभी किसी चौपाई का पाठ और अर्थ निश्चित करने में कई दिनों का समय लग गया है। काव्य-भाषा के प्राचीन स्वरूप पर भी पूरा ध्यान रखना पड़ा है।"[३] इसलिए यह कथन कि "शुक्ल जी के संस्करण में पाठ–निर्धारण की बात ही न सोचनी चाहिए" समीचीन नहीं प्रतीत होता। यह अवश्य है कि शुक्लजी के समक्ष इतनी हस्तलिखित प्रतियाँ नहीं थीं और कहीं–कहीं डा० गुप्त के पाठ अच्छे हैं, पर सब स्थानों पर ऐसी बात नहीं है। आदि प्रति नागरी अक्षरों में थी या फारसी लिपि में या कैथी लिपि में यह एक जटिल प्रश्न है। जब तक कोई अत्यन्त सुदृढ़ प्रमाण न हो या जब तक आदि प्रति न मिले, तब तक तीन नागरी प्रतियों के आधार पर (और वे भी क्रमशः सं० १८१८ नागरी लिपि, सं० १८४२ कैथी अक्षरों में लिखी हुई, तीसरी का लिपिकाल नहीं दिया गया है, यह नागरी अक्षरों में है सं० १८१८ वि० के पश्चात् की प्रतिलिपि की हुई है) बिना पर्याप्त कारण के आदि प्रति को नागरी अक्षरों में लिखी हुई कहना और 'शुक्ल–ग्रियर्सन को मार्ग में ही लटकते रह गए' कहना ठीक नहीं जँचता।[४] जहाँ तक जायसी की भाषा और छंद–योजना के स्वरूपों के ठीक–ठीक परिज्ञान और शुक्ल जी के संस्करण में उनके अभाव का आक्षेप है, यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि डा० गुप्त ने 'आदि प्रति की भाषा–छंद–योजना'[५] पर जो कुछ लिखा है, वह शुक्ल और गुप्त दोनों के संस्करणों में एक जैसा है। शुक्ल जी अवधी भाषा और छंद-योजना के मर्मज्ञ थे—इसमें दो मत नहीं हैं।

इस विषय में आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत विशेष रूप से उल्ले-

---

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जा० ग्रं०, प्र० सं०, वक्तव्य, पृ० १ से ५ तक।

२—वही, पृ० ३।

३—वही, पृ० ५, ७, ८,।

४—द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध में 'पदमावत की लिपि' शीर्षक।

५—डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका, पृ० २६–४४।

खनीय है— "आचार्य शुक्ल ने पद्मावत का जो पाठ दिया है वह वैज्ञानिक कसौटी पर बहुत खरा न उतरे, पर मेरी धारणा है कि डा० गुप्त के पाठ की अपेक्षा उनके पाठ अधिक सुसंगत हैं । कहीं--कहीं गुप्त के पाठ भी अच्छे हैं । रह गई मूल के निकट होने की बात । छान--बीन करने से मेरी अब भी निश्चित धारणा यही है कि अवधी के स्वरूप के निकट शुक्लजी के पाठ अधिक हैं । अवधी का नैकट्य जायसी के मूल पाठ का नैकट्य भी हो सकता है।"[१]

डा० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा संपादित पदुमावति - शास्त्रीजी ने 'प्रीफेस' के अंतर्गत लिखा है कि इस संस्करण का पाठ सावधानी के साथ ग्रियर्सन के संस्करण पर आधारित है। उन्होंने ग्रियर्सन के पाठ को प्रामाणिक माना है, क्योंकि वह पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर के पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति के पाठ से मिलता है। उन्होंने पदुमावति के अन्त में एक महत्वपूर्ण 'इन्डेक्स' (शब्द-सूची) भी दी है।

पं० भगवतीप्रसाद पांडेय का पदमावत—पांडेय जी ने 'दी बाचे' में चार (नवल किशोर प्रेस का, कानपुर का, ग्रियर्सन का और शुक्लजी का) संस्करणों का उल्लेख किया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के विषय में उनका मत उल्लेखनीय है—"इसमें कोई शक नहीं कि पण्डितजी (पं० रामचन्द्र शुक्ल) मौसूफ़ ने तसनीफात जायसी की तालीफ फरमा कर जो एहसान अदबी दुनिया पर फरमाया है, उसकी तारीफ करना आफताब को चिराग दिखाना है।" पांडे जी के संस्करण का मूल आधार शुक्लजी का संस्करण है।

पं० लक्ष्मीधर का संस्करण—पं० लक्ष्मीधर ने कुल ६ हस्तलिखित प्रतियों का एवं शुक्लजी के संस्करण का उपयोग किया है। "इस संस्करण के लिए उन्होंने इण्डिया आफिस, लन्दन के बाहर की ही नहीं, इण्डिया आफिस लन्दन की भी कुल प्रतियों को देखने की आवश्यकता नहीं समझी। आश्चर्य यह है कि इसी को समालोचनात्मक सम्पादन कहा गया है और इसी पर सम्पादक को लन्दन यूनिवर्सिटी की पी-एच०डी० की उपाधि मिली है।"[२] लेखक को इस ग्रन्थ पर १९४० ई० में लन्दन विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि मिली थी। उसने २९ पृष्ठों में जायसी की भाषा के व्याकरणिक रूपों का परिचय दिया है। पाँच-छ: हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पदमावत के १०६ छन्दों का संपादन किया है। इन छन्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। चौथे खण्ड में १३२ पृष्ठों में लेखक ने 'ग्लौसरी' (शब्द-सूची) दी है। यह परिश्रमपूर्वक प्रस्तुत किया गया महत्वपूर्ण कार्य है। स्पष्ट है कि लक्ष्मीधर जी ने अपने विषय का सम्यक् प्रतिपादन और अनुशीलन किया है।

१—आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ७। १२। ६७ ई० का पत्र, पृ० १।

२—डा० माताप्रसाद गुप्त : जा० ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ११७-१८

जायसी ग्रन्थावली, डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५१ ई०—डा० गुप्त के संस्करण में जायसीकृत चार ग्रन्थ संपादित हैं—पदमावत अखरावट, आखिरी कलाम और महरी बाईसी। इस सम्बन्ध में डा० गुप्त ने लिखा है कि "इस ग्रन्थावली के अखरावट का पाठ अन्य प्रतियों के अभाव में पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के अनुसार रखा गया है, पश्चात् गोपालसिंह जी से एक प्रति मिली, किन्तु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठान्तर मात्र दे दिया जाय।"[1] किन्तु शुक्लजी के अखरावट और डा० गुप्त के अखरावट (जो मूलत: शुक्लजी का ही है) के पाठों का मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि डा० गुप्त ने अनेक स्थलों पर अपनी ओर से परिवर्तन कर दिये हैं। उन्होंने ऐसा क्यों किया है, कारण अज्ञात है। कम से कम डा० गुप्त नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की अखरावट वाली प्रति का तो उपयोग कर ही सकते थे। इसी प्रकार उन्होंने 'आखिरी कलाम' का भी पाठ शुक्लजी का ही रखा है।[2] (पर अनेक परिवर्तनों के साथ)। इस ग्रन्थावली में सर्वप्रथम 'महरी बाईसी नामक जायसी की एक अप्रकाशित रचना का प्रकाशन किया गया है। स्पष्ट नामोल्लेख के अभाव में संपादक ने 'महरी बाईसी' नाम दे दिया है और लिखा है 'इस कृति में कुल बाईस गीत हैं।[3] इस ग्रन्थ की प्रस्तुत विद्यार्थी के पास तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतियाँ हैं। एक अन्य प्रति आनन्द भवन पुस्तकालय, विसवां, सीतापुर[4] में है। गुप्तजी द्वारा प्रकाशित महरी बाईसी के पाठ असन्तोषजनक हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि डा० गुप्त ने 'इस संस्करण को तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया है। पदमावत के मूल पाठ पर जमी हुई काई को पाठ-संशोधन की वैज्ञानिक युवित से हटाकर श्री गुप्त ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। जब भी कोई विद्वान पदमावत या अन्य किसी ग्रन्थ के पाठ-निर्णय का कार्य हाथ में लेगा, उसे इसी युक्ति का आश्रय लेना पड़ेगा। गुप्तजी ने सोलह प्रतियों के आधार पर पाठ-संशोधन का कार्य किया था, जिनमें से पाँच प्रतियां बहुत ही अच्छी थीं। उनमें से चार प्रतियाँ लन्दन के कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस में हैं। पाँचवीं प्रति श्री गोपालचन्द्र जी के पास थी।"[5] "हो सकता है कि भविष्य में और भी अच्छी प्रतियों के प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पाठों

१—डा० माताप्रसाद गुप्त : जा० ग्रं०, वक्तव्य, पृ० ३।

२—वही, पृ० १०४। ३—वही पृ० १०४।

४—ना० प्र० सभा, त्रयोदर्श त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२६ से २७ तक), पृ० ४३१

५—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ९–१०।

में सुधार की आवश्यकता जान पड़े ।"[१]

इतना लिखने के बावजूद डा० अग्रवाल जी ने गुप्त जी के अनेक पाठों के स्थान पर दूसरे पाठ दिए हैं (जैसे डांड़ के स्थान पर दुआलि[२] इसी प्रकार के बहुत से पाठ हैं) और इंगित किया है कि—"पदमावत के मूल पाठ और अर्थ के विषय में श्री माताप्रसादजी और मेरे इस प्रयत्न के बाद भी खोज के लिए अभी अवकाश बना हुआ है ।"[३] इस बात के स्पष्टीकरण के लिए अग्रवालजी ने कई उदाहरण भी दिये हैं । अन्त में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि "जायसी के पाठ-संशोधन और अर्थ-विचार के सम्बन्ध में जो कार्य अब तक हुआ है; उसे अभी और बढ़ाने की आवश्यकता है । इसी प्रकार जायसी की भाषा के व्याकरण का गहराई से निर्णय आवश्यक होगा, जो पाठ-निर्णय में सहायक हो सकेगा ।"[४] स्पष्ट है कि विद्वान् लेखक की दृष्टि में डा० गुप्त के पाठ-संशोधन-कार्य को अभी और आगे बढ़ाने तथा जायसी के मूल पाठों तक पहुँचने का पूर्ण अवकाश है । गुप्तजी ने बिना कारण दिये लिख दिया है कि "इन तीनों कृतियों (अखरावट, आखिरी कलाम और महरी बाईसी) की प्रामाणिकता के बारे में मुझे सन्देह है ।"[५] इन कृतियों में से अखरावट और आखिरी कलाम में जायसी का अपने जन्म, जीवन आदि के विषय में उल्लेख, जायसी की भाषा, जायसी की छाप और जायसी के ही प्रत्येक शब्द आदि से स्पष्ट है कि ये कृतियाँ जायसी की ही हैं—इसमें दो मत नहीं । परम्परा और प्रामाणिकता भी यही है ।

डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों के विषय में चार्ल्स नेपियर[६] का आक्षेप है कि "वह सब पाठ नागरी अक्षरों में लिखता है, फलस्वरूप उन शब्दों के रूप फ़ारसी अक्षरों में लिखे गये शब्दों से भिन्न हो गये हैं और पाठकों को मूल सामग्री नहीं मिलती । रचना का अध्यायों में विभाजन नहीं हुआ है । ऐसा विभाजन उपयुक्त भी था, चाहे जायसी ने न भी किया हो । गुप्तजी का कोई छन्द किसी दूसरे संस्करण में पाना कठिन है, विशेषकर जब वे कोई अनुक्रमणिका या समन्वय-सूची नहीं देते । गुप्तजी पदमावत के पहले संस्करणों का वर्णन करते हैं, पर लाला भगवानदीन के अध्याय ३३ तक के संस्करण की कोई चर्चा यहां नहीं है । डा० ग्रियर्सन और शुक्ल ऐसे महानुभावों के श्रम की विनयपूर्वक चर्चा असंगत न होती । मुद्रण की भूलों की यथेष्ट लम्बी सूची दी गई है, किन्तु खेद है कि फिर भी कई भूलें रह गई हैं,

---

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन, पृ० २५ ।
२—वही, पृ० २६ ।
३—वही, पृ० २७ ।
४—वही, पृ० २८ ।
५—वही, पृ० १०४ ।
६—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सं० २००९, पृ० ३३२ ।

वैसे जो उस सूची में नहीं हैं, जैसे पृ० ४३०, 'स्वामिहि' के स्थान 'स्यामिहि'।[१] '''लिपि के विषय में डा० गुप्त का पहला उद्देश्य इस बात को प्रमाणित करना है कि नागरी और कैथी प्रतियाँ सबकी सब फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियाँ हैं। इसके बाद उनका प्रस्ताव है कि सब वर्तमान प्रतियाँ, फारसी तथा नागरी भी नागरी की एक मूल प्रति की प्रतिलिपियाँ हैं। परन्तु वे 'प्रस्ताव करके बात को छोड़ जाते हैं।''[२]

''डा० गुप्त के पाठ भी कहीं-कहीं अच्छे हैं। अवधी के निकट शुक्ल जी के पाठ अधिक हैं, अवधी का नैकट्य जायसी के पाठ का भी नैकट्य हो सकता है।''[३]

डा० गुप्त ने इस संस्करण में वैज्ञानिक प्रणाली से पाठ-निर्धारित किया है। उनके पास प्राचीनतम प्रति ११०७ हिजरी की थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह प्रति पदमावत की रचना के १६० वर्ष बाद की है। निश्चित है कि इस प्रति में भी मूल प्रति का रूप अनेक स्थलों पर विकृत कर दिया गया है। अब प्रश्न यह है कि पदमावत के संपादन में वैज्ञानिक प्रणाली का क्या महत्व है? इसका उत्तर है कि केवल वैज्ञानिक प्रणाली ही सब कुछ नहीं है, भाषा और साहित्य की प्रणालियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। जब तक कोई संपादक मूल ग्रन्थ के विषय का मर्मज्ञ न हो, तब तक वैज्ञानिक प्रणाली के पाठशोध के जड़ तत्व के साथ चेतन प्रकिया का योग नहीं होता। वैज्ञानिक छलनी से छान लेने पर ही कोई पाठ मूल के निकट हो जाय, ऐसा नहीं होता। गुप्तजी ने चेतन प्रक्रिया से कम काम लिया है। इसलिये उनके संस्करण में अनेक भद्दी भूलें हो गई हैं। इन समस्त भूलों और त्रुटियों के होने पर भी डा० गुप्त की जायसी ग्रन्थावली का स्वागत प्राचीन हिन्दी के सब प्रेमी करेंगे। संपादक अपने श्रम के लिये धन्यवाद का पात्र है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि जायसी के जीवन और कृतित्व पर पर्याप्त कार्य हुआ है, तथापि कुछ ही कार्य ऐसे हैं जिन्हें प्रमाण्य और उपादेय माना जा सकता है। इस क्षेत्र में सर जार्ज ग्रियर्सन, पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ जायसी के खोजियों के लिये पथ-निर्देशन का काम करते हैं। इन विद्वानों की कृतियों का स्थायी महत्व है। इनमें अनेक महत्वपूर्ण सूत्र ऐसे हैं जिनके आधार पर खोज की जा सकती है।

१—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७ पृ० ३३२—३३।

२—वही, पृ० ३३६।

३—आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (का पत्र ७।१२।६०)।

२

मलिक मुहम्मद जायसी : जीवन--व्यक्तित्व एवं गुरु--परम्परा

नाम, जीवन, व्यक्तित्व

"मलिक मुहम्मद जायसी मलिक वंश से थे। मिश्र में मलिक सेनापति और प्रधान मंत्री को कहते थे। खिलजी राज्यकाल में अलाउद्दीन ने बहुत से मलिकों को अपने चचा को मारने के लिए नियत किया था। इससे इस काल में यह शब्द प्रचलित हो गया। ईरान में मलिक जमीनदार को कहते हैं। मलिकजी के पूर्वज निगलाम देश ईरान से आये थे और वहीं से इनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। "हजिनतुल असफिया" के लेखक ने मलिकजी के 'मुहक्किक तहिंदी' की उपाधि से विभूषित किया है। मलिक जी के वंशज भी अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। 'तारीख फीरोज शाही' में है कि बारह हजार के रिसालादार को मलिक कहते थे। मलिकजी के हकीकी वारिस मलिक थे। इसलिए खानदान भर मलिक कहलाता था। मलिक जी स्वयं चन्द बीघे मौरूसी जमीन पर अपना निर्वाह करते थे।"[१]

मूलतः मलिक अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। 'मलिक' (म० ल० क०) धातु से व्युत्पन्न बताया जाता है। इससे बने अनेक शब्द हैं, जैसे– मलक = परिश्ता, मुल्क, = देश, मिल्क = सम्पत्ति, मलिक = बादशाह, सुल्तान। फारसी भाषा में 'मलिक' का अर्थ है अमीर और बड़ा व्यापारी।[२]

१–सैयद आले मुहम्मद मेहर जायसी, बी० ए० : मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५ अंक १ वैशाख १९९७, पृ० ४८–४९।
२–नूरुल्लुगात, भाग ४, पृ० ४९७।

विद्वानों का विचार है कि जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनका पूर्वजों से चला आया 'सरनामा' (सरनेम) है। इससे प्रकट है इनके पूर्वज अरब थे। इनके पिता-माता के विषय में कहा जाता है कि वे जायस के 'कंचाने'[१] मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था। इन्हें लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी मां मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी। इनकी माता[२] का नाम ज्ञात् नहीं है। मलिक इनके वंश की उपाधि–परम्परा है और 'जायस'नामक स्थान से सम्बद्ध होने के कारण इन्हें जायसी कहा जाता है। इस प्रकार इनका पूरा नाम है मलिक मुहम्मद जायसी।

जायसी को कुरूप और काना भी कहा जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि वे जन्म से ही ऐसे थे, पर अधिकांश विद्वानों का विचार है शीतला या अर्द्धांग रोग के कारण उनका शरीर विकृत हो गया था। जनश्रुति है कि बालक मुहम्मद पर शीलता का भयंकर प्रकोप हुआ। माता-पिता को निराशा हुई। मां ने पाक-साफ दिल से शाहमदार की मनौती की। पीर की दुआ, बालक बच गया, किन्तु इस बीमारी के कारण उनकी एक आंख जाती रही। उसी ओर का बांया कान भी जाता रहा। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है –

'एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ बिमोहा जेइ कवि सुनी॥[३]
चांद जइस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।
जग सूझा एकह नैनाहां। उवा सूक अस नखतन्ह माहां॥
जौ लहि अंबहिं डाभ न होई। तौ लहि सुगंध बसाइ न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जौं खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा।
जौ सुमेरु तिरसूल बिनासा। भा कंचनगिरि लाग अकासा।
जौं लहि घरी कलंक न परा। कांच होइ नहिं कंचन करा।
एक नैन जस दरपन, औ तेहि निरमल भाउ।
सब रुपवंत पांव गहि, मुख जौवहिं कै चाउ॥[४]

— — —

मुहम्मद कवि जो प्रेम भा, ना तन रकत न मांसु।
जेइं मुख देखा तेइं हंसा, सुना तो आये आंसु॥[५]

१–ना० प्र० पत्रिका, भाग २१ पृ ४६।
२–म० मु० जायसी सैयद : कल्बे मुस्तफा, पृ० २०।
३–जा० ग्रं०; मा० प्र० गुप्त, पृ० १३३।
४–जा० ग्रं० मा० : प्र० गुप्त, पृ० १३३–३४।
५–वही, पृ० १३५।

जायसी वाममार्ग को स्वीकार नहीं करते और यही मूलभूत कारण है कि उन्होंने बाई दिशा ही त्याग दी। जब से उनका प्रियतम उनके अनुकूल हुआ, तब से उन्होंने एक श्रवण – एक दृष्टि वाली वृत्ति अपना ली अर्थात् उन्होंने एक का ही देखना शुरू किया और एक का ही सुनना भी शुरू किया –

'मुहम्मद बाई दिसि तजी, एक सरवन एक आंखि।
जब ते दाहिन होई मिला, बोलु पपीहा पांखि ।।[1]

'एक नैन कवि मुहम्मद गुनी – – –।' इत्यादि से स्पष्ट है कि – 'एक आंखवाले मुहम्मद का काव्य जिसने सुना, वही मोहित हो गया। उन्होंने मानो अपने इस एकांगी रूप की समीक्षा की – अवश्य ही विधाता ने एक कान और एक आंख हरण करके मुझे कुरूप बना दिया, किन्तु विधाता जिसे कलंक देता है उसे कोई न कोई महान् वस्तु भी देता है। उसने चांद को कलंक दिया है, किन्तु इस कलंक के साथ उसे उज्ज्वल भी बनाया है। मुझे कुरूप बनाया और साथ ही काव्य-गुण भी तो प्रदान किया। इस एक आंख से मुझे सारा संसार दिखाई देता है। इस एक आंखवाले का तेज नक्षत्रों में शुक्र के सदृश भास्वर है। आम की जिस सुगन्धि से सारा आम्र-कानन महमह हो उठता है उससे पहले आम में नुकीली डाभ का जन्म आवश्यक माना जाता है। मीठे पानी के सरोवर तो छोटे होते हैं, किन्तु विधाता ने समुद्र में खारा जल भर दिया है, इसी से तो उनका अन्त नहीं दिखाई देता, अर्थात् खारे जल के कारण विधाता ने उसे अनंत-असीम बना दिया है। सुमेरु गिरि पर त्रिशूल (बज्र) का प्रहार हुआ, इसी से तो वह सोने का पहाड़ बन कर आकाश से संलग्न हो गया। यह तो प्रकृति का नियम है कि दोष के साथ गुण और गुण के साथ दोष मिला ही रहता है। जब तक रासायनिक प्रक्रिया में घरिया में कलंक नहीं पड़ता, जब तक कांच शुद्ध कांचन की कला को नहीं प्राप्त करता। विधाता ने विकृत शरीर बनाकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है, क्योंकि इसी एक नेत्र से मैंने सारा संसार देखा है। यह दर्पण जैसा है इसका भाव बड़ा ही निर्मल है। बड़े-बड़े रूपवन्त इस एक आंख वाले के चरणों को स्पर्श करते हैं और उमंगित होकर अत्यन्त मुग्ध भाव से मुख की ओर निहारा करते हैं।''

'जेइ मुख देखा तेइ हंसा, सुना तो आए आंसु।' जो जायसी की कुरूपता को देखकर हँसे थे वे ही उनके काव्य को सुनकर आंसू भर लाते हैं।' शोध में नवोपलव्ध काव्य 'चित्ररेखा' में भी जायसी ने अपने 'शुक्राचार्यत्व' की बात कही है :

'मुहम्मद सायर दीन दुनि, मुख अंब्रित बैनान।
बदन जइस जग चन्द सूपरन, सूक जइस नैनान ।।[2]

स्पष्ट है कि जायसी का वदन पूनम के चांद जैसा था (भले ही उनमें थोड़ा

१–वही, पृ० २–चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक पृ० ७७।

कलंक रहा हो) और वे शुक्राचार्य की तरह एक चक्षुवाले थे – शुक्राचार्य की तरह इसलिए कि विद्वता में शुक्राचार्य अन्यतम हैं और अन्यतारों की अपेक्षा उनकी भास्वरता भी अधिक है। सैयद कल्बे मुस्तफा के अनुसार जायसी लूले और कुबड़े भी थे – 'मलिक लले लंगड़े कुब्जापुश्त भी थे।'[१] किन्तु अभी तक प्राप्त हुए प्रमाणों और जायसी के चित्रों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। उनके पिता का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था। कछ दिनों के पश्चात् माता का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही वे अनाथ हो गये। फिर ये फकीरों और साधुओं के साथ रहने लगे थे।[२] किसी-किसी जनश्रुति में उनके वैवाहिक जीवन और सात पुत्रों का भी उल्लेख है।[३]

जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गये और साधु-फकीरों के साथ दर-दर भटकते फिरे। कुछ दिनों तक अपने ननिहाल में मानिकपुर अपने नाना अलहदाद के साथ रहे। एक तो अनाथ, दीन-हीन अवस्था, दूसरे साधु-फकीरों का संग, तीसरे उनकी तीव्र बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम – सब ने मिलकर उन्हें अन्तर्मुखी और चिन्तनशील बना दिया।[४] 'सारांश यह कि परम सत्ता की ओर आकृष्ट करने वाली परिस्थिति मिलने पर उन्होंने अपनी सारी शक्ति उस ओर लगा दी।' संयोगवश उन्हें सुयोग्य गुरु भी मिल गये।

जायसी मृत्यु के समय अत्यन्त वृद्ध और संतानहीन थे।[५] उनके संतान थी या नहीं इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कहा जाता है कि उनके साथ पुत्र थे। खाना खाते समय मकान की छत गिर जाने से दबकर वे सब एक साथ ही मर गए।[६] इस दुर्घटना से जायसी और भी विरक्त हो गये। इसी विरक्ति, पीर और प्रेम-पीर ने धीरे-धीरे जायसी को अपने समय का एक सिद्ध-प्रसिद्ध फकीर बना दिया।

जायसी की प्रसिद्ध जनश्रुति है कि जायसी एक बार शेरशाह के दरबार में गये थे। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हंस पड़ा। सुल्तान का हंसना दरबारियों के अट्टहास्य का साधन था। सारा दरबार ठहाकों में गूंज उठा, किन्तु जायसी ने अत्यन्त संयत विनम्र स्वर में पूंछा– 'मोंहि का हंसति कि कोहरहिं ?' अर्थात् 'तू मुझपर हँसा या उस कुम्हार (गढ़नेवाले – ईश्वर) पर ?' इस पर

१–म० मु० जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० २१
२–ना० प्र० पत्रिका, भाग २१।   ३–वह, पृ० ४३।
४–वही, पृ० ५०।
५–पदमावत : मा० प्र० पृ० ५२५–५६, चित्ररेखा, पृ० ७५।
६–ना० प्र० पत्रिका, भाग २१।

शेरशाह अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने जायसी के चरणों में सिर गिराकर क्षमा की प्रार्थना की। कुछ लोगों का विचार है कि वे शेरशाह के दरबार में नहीं गए थे, शेरशाह ही उनकी ख्याति सुनकर उनके पास आया था। सम्भवत: इसी घटना को थोड़े परिवर्तन के साथ मीर हसन देहलवी ने अपनी मसनवी रिमुजुल आरिज (रमुजे-उल-आरफीन) ने लिखा है —

'थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पदमावत जिन्होंने है लिखी॥
मर्दे आरिफ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फैजयाब॥
साफ बातिन थे वह और मस्त-अलमस्त।
लेकिन दुनिया तो है जाहिर परस्त॥
थे बहुत बदशक्ल और वह बदकवी।
देखते ही उनको अकबर हंस पड़ा॥
जो हंसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होकर चश्मेतर॥
हंस पड़े माटी पर ऐ तुम शहरयार।
या कि मेरे पर हँसे बे अख्तियार॥
कुछ गुनह मेरा नहीं ऐ बादशाह।
सुर्ख बासन तू हुआ औ मैं सियाह॥
असल में माटी तो है सब एक जात।
अख्तियार उसका है जो है उसके हाथ॥
सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर॥
अलगरज उनको ब एजाजे तमाम।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्ललाम॥
साहबे तासीर हैं जो ऐ हसन।
दिल पै करता है असर उनका सुखन॥'[१]

अट्ठारहवीं शती के इस शायर का कथन है कि जायसी 'बादशाह अकबर' के दरबार में गए थे। कुछ लोगों का अनुनान है कि 'यह राजा मुगल सम्राट् अकबर

१—ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ४४-४५।

नहीं हो सकता, क्योंकि जायसी अकबर के जन्म के समय ही १५४२ ई० में संसार से चल बसे थे। शायद यह अवध का कोई छोटा-सा राजा था, जिसका नाम अकबर रहा होगा।'[१]

मीरहसन देलहवी ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर 'जायसी के दरबार में जानेवाली बात का' सम्बन्ध अकबर बादशाह से जोड़ दिया है। चाहे यह दिल्ली का बादशाह अकबर हो, चाहे अवध का कोई छोटा राजा अकबर और चाहे शेरशाह, पर इतना अवश्य स्पष्ट है कि जायसी का बाह्य-रूप आकर्षक न था। 'पदमावत' के प्रारम्भ में ही कतिपय पंक्तियां इसी कथा के मूल की ओर संकेत करती हुई जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ –

'दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहिं जुग राज।
पातसाहि तुम जगत के, जग तुम्हार मुहताज॥'[२]
'बरनों सूर पुहुमिपति राजा। पुहुमि न भार सहइ सो साजा॥'[३]
'जौ गढ़ नए न काऊ, चलत होंहि सतचूर।
जबहिं चढ़इ पुहुमीपति सेरसाहि जगसूर॥'[४]
'सब पिरथिमी असीसइ, जोरि जोरि कै हाथ।
गांग जउँन जौ लहि जल, तौ लहि अम्मर माथ॥'[५]
'पुनि रूपवन्त बखानौ काहा। जावत जगत सबइ मुख चाहा॥
सौंह दिस्टि कइ हेरि न जाई। जेइ देखा सो रहा सिर नाई॥'[६]
'सेरसाह सरि पूजि न कोऊ।'[७]
'अइस दानि जग उपना सेरसाहि सुलतान।
ना अस भयउ न होइहि ना कोइ देइ अस दान॥[८]'

इन पंक्तियों में जायसी ने शेरशाह की प्रशंसा करते हुये लिखा है 'कि मुहम्मद ने उसे आशीर्वाद दिया 'तुम युग-युग तक राज करो। तुम जग के बादशाह हो जग तुम्हारा मुहताज है।' जब तक गंगा यमुना में जल है, तब तक तुम्हारा मस्तक अमर रहे।' इससे स्पष्ट लगता है कि जायसी शेरशाह के दरबार में गए

१–सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, पृ० ५४।
२–जा० ग्रं० (हिं० ए०) (१३।दो० १) पृ० १२८।
३–वही, १४।१ पृ १२९।
४–वही, दो० १४।
५–जा० ग्रं (हिं० ए०) दो० १५, पृ० १३०।
६–वही, दो० १६।५-६
७–वही, दो० १७।३, पृ० १३१।
८–वही, दो० १७।

थे। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद भी दिया था।

महात्मा तुलसीदास की ही भाँति इनकी भी बाल्यावस्था अनाथावस्था रही। इन्हीं कारणों से इनकी प्रवृत्ति अन्तःमुखी हो गयी। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे स्पष्ट कहते हैं–

'हौं सब कविन केर पछिलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा[१] ॥

उनका कहना है कि 'मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नक्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर बढ़ाकर कुछ कहने चल पड़ा हूँ।

सचमुच उनके समस्त काव्य में एक उक्ति भी निज के विषय में गर्व की नहीं है।

जायसी इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों को तत्वतः स्वीकार किया है, इन असंख्य मार्गों में वे मुहम्मद साहब के मार्ग को सुगम और सरल कहते थे।

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन रोवां जेते ॥
तिन्ह मंह पन्थ कहौं भल भाई। जेहि दूनों जग छाज बड़ाई ॥
से बड़ पन्थ मुहम्मद केरा। है निरमल कविलास बसेरा ॥'[२]

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखने वाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा पूरा था। उनकी वह उदारता थी जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का महत्व स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था, तभी 'पद्मावत' ऐसा चरित्र-काव्य लिखने की उत्कंठा उन्हें हुई। वे जो कुछ जानते थे उसे नम्रतापूर्वक पण्डितों का प्रसाद मानते थे।

वे बड़े ही सच्चरित्र, कर्तव्य-निष्ठ और गुरुभक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अपार थी। उनका विश्वास था कि परम ज्योति-स्वरूप उस जगत के करतार

१–डा० मुन्शीराम शर्मा ने एक बार इस विनम्रोक्ति के विषय में मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने कहा था कि मैंने इसका अर्थ सहज ढंग से किया है। उनके अर्थ से जायसी की नम्रता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। "मैं पण्डितों से अपनी त्रुटियाँ संवारने तथा उन्हें सजाकर ठीक करने के लिए विनती करता हूँ। जैसे तबल की सम के पीछे डगा का ठेका चलता है वैसे ही मैं पण्डितों का अनुचर हूँ। अतः जो कुछ मैं कहता हूँ वह उन्हीं से सीखा हुआ है, उन्हीं की कृपा से मैं कुछ कहने में समर्थ हुआ हूँ।" पद्मावत : डा० मुशीराम शर्मा, पृ० ११

२–जा० ग्रं० : मा० गु०, आखिरी कलाम २५।२–५, ६६३–६४।

के नियंत्रण में ही समस्त सृष्टि वर्तमान है–गतिमान है । वे महान् संत थे । सहजता, सहृदता, सारग्राहिता, अनुभव-गम्भीरता, लोक और काव्य का गहन अध्ययन, आडम्बरहीनता, संयम और पवित्र भक्ति उनके चरित्र के विशेष आकर्षण हैं ।

जन्म स्थान

जायसी ने 'पदमावत' की रचना जायस नामक स्थान में की–

'जाएस नगर धरम अस्थानू । तहवां यह कबि कीन्ह बखानू ।।[१]

जायसी के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म-स्थान था या वे कहीं अन्यत्र से आकर वहाँ रहने लगे थे । जायसी ने अन्यत्र भी लिखा है–

'जायस नगर मोर अस्थानू । नगर क नावं आदि उदयानू ।।
तहाँ देवस दस पहुँने आएउं । भा वैराग बहुत सुख पायउं ।।'[२]

पं० रामचन्द्र शुक्ल[३] का अनुभव है कि 'पदमावत' की कथा को लेकर थोड़े से पद्य जायसी ने रचे थे । उसके पीछे वे जायस छोड़ कर रहने लगे, तब उन्होंने इस ग्रन्थ को उठाया और पूरा किया ।' शुक्ल जी को इस बात का संकेत 'तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू ।' में मिला था । डा० माता प्रसाद गुप्त[४] और बासुदेव शरण अग्रवाल[५] ने 'तहवां यह कवि कीन्ह बखानू ।' पाठ को शुद्ध माना है । 'पं० सुधाकर द्विवेदी[६] और डा० ग्रियर्सन[७] ने यह अनुमान किया था कि मलिक मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे । पर यह ठीक नहीं । जायस वाले ऐसा नहीं कहते । उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस ही के रहने वाले थे ।'

पं० सूर्यकान्त शास्त्री[८] ने भी लिखा है कि 'इनका जन्म जायस शहर के 'कंचाना मुहल्ला' में हुआ था ।' डा० मुन्शीराम शर्मा का मत है कि 'जायस का पूर्व नाम उद्यान था । यहाँ पर वे थोड़े दिनों के लिये पाहुन के रूप में आए थे– बाद में वैरागी हो गए थे ।[९] अतः जायस उनका धर्म-स्थान है । कहा जाता है कि

१–पदमावत (हिं० ए०, २३।१,) पृ० १३४ ।
२–आखिरी कलाम, १०।१–२ ।
३–जा० ग्रं० (भूमिका) ; पं० राम चन्द्र शुक्ल, पृ० ६ ।
४–जा० ग्रं० : डा० मा० प्र० गुप्त, (२३।१) पृ० १३४ ।
५–पदमावत : डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, (२३।१) पृ० २२ ।
६–पदमावत : डा० ग्रियर्सन और पण्डित सुधाकर द्विवेदी, (१९११) । ७–वही
८–पदुमावति : प्रो० सूर्यकान्त शास्त्री, प्रोफेस, पृ० ५ ।
९–पदमावत : डा० मुन्शी राम शर्मा, प्राक्कथन, 'उ'

मलिक मुहम्मद गाजीपुर के एक दरिद्र मुसलमान के पुत्र थे। कई विद्वानों ने जायसी के विषय में कहा है कि 'ये गाजीपुर में पैदा हुए थे[1]।' मानिकपुर (जिला प्रतापगढ़) में अपने ननिहाल में जाकर कुछ दिनों तक रहे थे[2]।

इस प्रसंग में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[3] का मत विशेष रूप से उल्लेख्य है। 'जायसी ने लिखा है–'जायस नगर में मेरा स्थान है। मैं वहाँ दस दिन के लिए पाहुने के रूप में आया था, पर वहीं मुझे वैराग्य हो गया और सुख मिला। 'दिन दस' का अर्थ पदमावत 'में थोड़े समय के लिये' है। (६६।१) पाहुने आयउ" का संकेत कुछ विद्वानों ने ऐसा माना है कि कवि ने जायस में जन्म लिया था। किन्तु इन शब्दों का सीधा अर्थ भी लिया जा सकता है कि सचमुच मलिक मुहम्मद जायसी किसी दूसरी जगह से जायस में कुछ दिनों के लिए पाहुने के रूप में आये थे, किन्तु वहाँ आकर उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने जीवन के प्रवाह को ही बदल डाला और उन्हें अनुभव ने एक नए लोक में पहुँचा दिया।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था, बल्कि वह उनका धर्म-स्थान था और वहाँ कहीं से आकर वे रहने लगे थे।

गार्हस्थ्य : वैराग्य

जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। वे आरम्भ से बड़े ईश्वर-भक्त और साधु-प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते, तब अपना खाना वहीं मंगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते थे, जो आसपास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर उधर कोई नहीं दिखाई पड़ा। बहुत देर तक आसरा देखते-देखते अन्त में एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे खाने को अपने पास बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिए उठाया, पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा—'इसे मैं खाऊँगा, आप साफ हिस्सा खाइए।' पर जायसी झट से उसे खा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरान्त उसकी मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक बलवती हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग अखरावट के इस दोहे में बताते हैं—

१–ना० प्र० पत्रिका, १४, ३६१।

२–वही भाग २१, पृ० ४३।

३–डा० वासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावत, प्रा० पृ० ३५।

'बुन्दहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महं।'[१]

"कहते हैं कि जायसी के सात पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुर्घटना से मर गए। तब वे जायसी संसार से और भी विरक्त हो गए और कुछ दिनों में घर-बार छोड़ कर इधर उधर फकीर होकर घूमने लगे।"[२]

जायसी के विराग का जो भी कारण रहा हो, पर इतना निश्चित है कि 'जायसी में उनके[३] जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने उन्हें प्रेमानुभव के एक नवीन लोक में पहुँचा दिया, उनके हृदय में वैराग्य का एक प्रबल स्रोत फूट निकला। हृदय किसी अपूर्व ज्योति से उद्भासित हो उठा। उसी का रूप नयनों में समा गया। सर्वत्र उसी सौन्दर्य और प्रेम-सत्ता के दर्शन होने लगे। संसार के मानदंड बदल गए। विषयों से मन हट गया। हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उस परम ज्योति या रूप की साक्षात प्राप्ति हो। जायसी ने अपनी उस वैराग्य-अवस्था का सच्चा वर्णन किया है।

'तहां देवस दस पहुने आएउँ। भा बैराग बहुत सुख पाएउ।
सुख भा सोच एक दुख मानों। ओहि बिनु जिवन मरन कै जानों॥
नैन रूप सो गएउ समाई। रहा पूरि भरि हिरदै छाई॥
जहवैं देखौं तहवैं सोई। और न आव दिस्ट तर कोई॥
आपुन देखि देखि मन राखौं। दूसर नाहिं सो कासौं भाखौं॥
सबै जगत दरपन कर लेखा। आपुन दरसन आपुहि देखा॥'[४]

स्पष्ट है कि वैराग्य की तीव्र धारा के स्पर्श से एक बार ही उनका मन आनन्दप्लावित हो गया। प्रियतम का जो रूप नयनों में समा गया था वही भीतर और बाहर का आनन्द था और वही मिलन की वेदना का कारण बना। 'रत्नसेन का वैराग्य मानों कवि का अपना ही अनुभव है जिसमें संसार का मोह छूट जाता है और परमात्म ज्योति रूपी प्रेमिका से मिलने के लिए हृदय में आकुलता भर जाती है।'[५]

सचमुच वैराग्य के अनन्तर जायसी को महान् आत्मिक सुख हुआ होगा। उन्होंने परमात्म-तत्व के दर्शन अवश्य किए थे। उसे उन्होंने विश्व के कण-कण में

१—जा० गं० : पं० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० ७।
२—वही।
३—पदमावत : डा० वासुदेवशरण अग्रवाव, प्राक्कथन, पृ० ३५।
४—जा०ग्रं० : डा० माताप्रसाद गुप्त (आखिरी कलाम १०। २–७), पृ० ६९०।
५—पदमावत : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३५–३६।

देखा और अनुभव किया था ।

मित्र

जायसी ने बड़े ही उल्लसित कंठ से अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है– मलिक यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख ।

पदमावत के प्रारम्भ में ही जायसी ने अपने इन चारो मित्रों की प्रशस्ति की है–

'चारि मीत कवि मुहमद पाए । जोरि मिताई सरि पहुँचाए ॥
यूसुख मलिक पंडित औ ज्ञानी । पहिलैं भेद बात उन्ह जानी ॥
पुनि सलार कांदन मतिमाहां । खांडै दान उभै निति बाहां ॥
मियां सलोने सिंघ अपारू । बीर खेत रन खरग जुझारू ॥
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाने । कइ अदेस सिद्धन बड़ माने ॥
चारिउ चतुर दसौ गुन पढ़े । औ संग जोग गोसाई गढ़े ॥
बिरिख जो आछहिं चन्दन पासां । चन्दन होहिं बेधि तेहि बासां ॥
मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए जो एकइ चित्त ।
एहि जग साथ निबाहा, ओहि जग बिछुरन कित्त ॥'[१]

नागरीप्रचारिणी पत्रिका के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि यूसुफ मलिक पट्टी 'कंचाना' के रहने वाले थे । अब उनके वंश में कोई नहीं है । सालार कानिम 'सालार पट्टी' के रहने वाले थे और वे शाहजहां के वक्त तक जीवित रहे । वे पुत्रहीन थे । उनकी लड़की के वंशज आज भी 'कंचाना कला' मुहल्ले में बसे हुए हैं । ये अत्यन्त बुद्धिमान, तलवार के धनी, जमींदार और दानी भी थे । सलोने मियां नाम के तीन व्यक्ति जायसी के समय में जायस में थे । जनश्रुति है कि जायसी से इन तीनों का स्नेह-सम्बन्ध था, तीनों सज्जनता, वीरता और धन-भैभव से सम्पन्न थे । बड़े शेख नाम के पांच व्यक्ति कहे जाते हैं ।[२] जिस बड़े शेख से जायसी की मैत्री थी वे बड़े सिद्ध पुरुष थे ।

मृत्यु

सैयद कल्वे मुस्तफा ने[३] लिखा है कि जब मुरीदी करते बहुत दिन बीत गए, तो जायसी और उनके साथी हजरत निजामुद्दीन बन्दगी की उत्कट अभिलाषा

१–जा० ग्रं : डा० माताप्रसाद गुप्त, (पदमावत २२।१) पृ० १३४ ।
२–ना०प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ५३–५६ ।
३–म०मु० जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ३८ ।

हुई कि हम भी अपनी गद्दी स्थापित करके शिष्य बनाएं। इस इच्छा को इन लोगों ने गुरु के चरणों में उपस्थित होकर कहा। इनके गुरू ने आज्ञा दी कि 'अमेठी चले जाओ, यह सुनकर दोनों शिष्य मौन हो गए। प्रश्न था कि एक ही स्थान पर दो गुरू किस प्रकार रहेंगे ? गुरु की आज्ञा में मीन-मेख निकालना अनुचित है, अत: जायसी ने विवेक से काम लिया। गुरु के उस आवास में दो द्वार थे एक पूर्व की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर। उन्होंने पश्चिम वाले द्वार से बन्दगी मियां को भेजा और वे लखनऊ वाली अमेठी की ओर गए। आज भी उस अमेठी को लोग लखनऊ मियां की अमेठी कहते हैं। जायसी पूर्वी द्वार से गढ़ अमेठी की ओर गए। गढ़ अमेठी के पास के जंगल में उन्होंने अपना स्थान बनाया।

दूसरी जनश्रुति है कि जायसी अपने समय के एक महान् फकीर माने जाते थे। चारो ओर उनकी ख्याति-प्रख्याति थी। उनके शिष्य उनके मान-सम्मान को और वर्द्धित-संवर्द्धित कर रहे थे। ये शिष्य 'पदमावत' के अंशों को गा-गाकर भिक्षा मांगा करते थे। एक दिन जायसी के एक शिष्य ने अमेठी-नरेश रामसिंह को नागमती का 'बारहमासा' सुनाया—

'कंवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयेउ सुखाइ।
सूखि बेलि पुनि पलुहै, जो पिउ साचै आइ॥' आदि

उस भीख मांगने वाले से राजा ने पूछा कि यह किस कवि की रचना है, तो उसने जायसी का नाम बताया। रामसिंह बड़े सम्मान के साथ जायसी को अमेठी गढ़ में लिवा आये[1]। अपने जीवन के अन्तिम समय तक वे अमेठी में ही रहे। अमेठी के राजा रामसिंह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे।[2]

सैयद कल्बे मुस्तफा ने एक बहेलिया के द्वारा जायसी के मारे जाने की घटना का अत्यन्त मनोरंजक वर्णन किया है। इस घटना का उल्लेख पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी किया है।[3]

अमेठी नरेश जब जायसी की सेवा में उपस्थित होते थे, तो उनका एक तुफंगचबी (बहेलिया) भी उनके साथ जाता था। जायसी बहेलिया का विशेष सत्कार करते थे। लोगों के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि 'यह मेरा कातिल है।' यह सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित हो गये। बहेलिये ने निवेदन किया कि इस पापकर्म के पहले ही मुझे कत्ल कर दिया जाए। राजा रामसिंह ने भी यह उचित समझा, परन्तु जायसी ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपने कातिल को कत्ल होने से बचा लिया। राजा ने उस दिन से उस बहेलिए को बन्दूक, तलवार आदि न रखने की

१—जा०ग्र० (भूमिका) : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ११।
२—वही, पृ०८।   ३—वही, पृ० ८—११।

आज्ञा दी, किन्तु विधाता का लेख कौन मिटा सकता है ? एक अंधेरी रात में जब वह बहेलिया अमेठी गढ़ से अपने घर जाने लगा, तो उसने दरोगा से कहा—समय तंग हो गया है और मेरी राह जंगल में होकर है इसलिए रात भर के लिए एक बन्दूक दे दो, प्रातःकाल में ही लौटा दूंगा। दारोगा ने भी इस पर कोई आपत्ति न की और एक बन्दूक उस बहेलिया को दे दी। जब बहेलिया जंगल में होकर जाने लगा, तो उसे शेर के गुर्राने का-सा शब्द सुनाई पड़ा। शेर को पास जानकर उसने शब्द पर गोली छोड़ दी। गोली के साथ गर्जन का शब्द भी बन्द हो गया। बहेलिए ने शेर को मरा जानकर घर की राह ली। उसी समय अमेठी नरेश ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है कि आप सो रहे हैं और आपके बहेलिए ने मलिक साहब को मार डाला। राजा घबड़ा उठा। वह दौड़ा-दौड़ा जायसी के आश्रम के पास गया। उसने देखा—मलिक साहब को गोली लगी है और उनका शरीर निर्जीव हो चुका है। इस दुर्घटना के कारण सारे राज्य में शोक छा गया। बाद में गढ़ के समीप ही उन्हें दफना दिया गया और उनकी समाधि बनवा दी गई।[१]

जायस में यह कहानी आज भी थोड़े से हेरफेर के साथ सुनी जा सकती है।[२]

इस कथा से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का अमेठी से बड़ा गहरा सम्बन्ध था। अमेठी के राजा की उनके ऊपर बड़ी श्रद्धा थी। ये अमेठी के पास के ही जंगल में रहते थे और किसी दुर्घटना के शिकार हुए।[३]

"मलिक जी की कब्र मंगरा के बन में, रामनगर (रियासत अमेठी, जिला सुलतानपुर अवध) के उत्तर की ओर एक फर्लांग पर है। इसकी पक्की चहार दीवारी अभी मौजूद है। इस पर अब तक चिराग जलाए जाते हैं। राजा ने एक कुरान पढ़ने वाला भी नियुक्त किया था, जिसका सिलसिला १३१३ हि० (१९१५ ई०) में बन्द हो गया।"[४]

जायसी की कब्र अमेठी नरेश के वर्तमान कोट से पौन मील की दूरी पर है। यह वर्तमान कोट जायसी की मृत्यु के काफी बाद में बना हुआ है। अमेठी के राजाओं का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। पं० रामचद्र शुक्ल का कथन है कि 'यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनवाई, निराधार है।'"[५]

१–चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक, भूमिका, पृ० २९–३०।

२–वही पृ० ३०। ३–वही

४–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५, अंक १, वैशाख १९९७, पृ० ५९।

५–जायसी ग्रंथावली : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८।

'कोट के समीप' का अर्थ 'कोट के निकट या अत्यन्त निकट' ही नहीं होता—कोट से कुछ दूर भी होता है—अनतिदूर भी होता है। जायसी की कब्र देखने पर लगता है कि कब्र से कुछ ही दूरी पर अमेठी का कोट रहा होगा। जायसी की कब्र से पुराने कोट की ओर चलते समय लगता है कि थोड़ी ही दूरी के बाद कोट के ढूहे शुरू हो जाते हैं और ढूहों की परम्परा कुछ दूर तक चली गई है और यदि 'वैज्ञानिक चश्में' को उतार कर भारतीय परम्परा और सिद्धत्व की दृष्टि से विचार करें, तो 'जायसी की दुआ से अमेठी नरेश को पुत्र-प्राप्त' होने वाली बात भी ठीक मानी जा सकती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जायसी की मृत्यु अमेठी के समीपवर्ती जंगल में किसी दुर्घटनावश ९४९ हिजरी में हुई।

मलिक मुहम्मद जायसी : अन्त:साक्ष्यों एवं बहि:साक्ष्यों के आधार पर जायसी का जीवन

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है —

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिख ऊपर कबि बदी।
आवत उधत चार बड़ ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना ॥[१]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "इन पक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। नवसदी ही पाठ मानें, तो जन्मकाल ९०० हिजरी (सन् १४९२ के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से ३० वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।"[२]

पं० चन्द्रबली पांडेय[३] जायसी की उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ "नवीं सदी हिजरी में ३० वर्ष बीतने पर 'अर्थात् ८३० हिजरी मानते हुए जायसी की जन्म तिथि ८३० हिजरी (१४२७ ई०) सिद्ध करते हैं।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने लिखा है—"जायसी का जन्म ९०६ हिजरी में हुआ था। जायसी ने यह बात स्पष्ट बतला दी है। वे कहते हैं —

"नौ सै बरस छतिस जब भए। तब एहि कथा के आखर कहे।"

अर्थात् ९३६ हिजरी में उन्होंने आखिरी कलाम की रचना की। "भा अवतार...... कवि बदी।" अर्थात् तीस वर्ष की आयु में उन्होंने यह रचना की और वे नव सदी में पैदा हुए थे। ९३६ हिजरी में से तीस वर्ष निकाल देने पर ९०६ हिजरी

१—जायसी ग्रंथावली : डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६८८।४—१—२

२—जायसी ग्रंथावली : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५।

३—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, सं० १९९०, पृ० ३९७।

आता है। ६११ हिजरी में एक बहुत कड़ा भूकम्प आया था और सूर्यग्रहण भी ६०८ हिजरी में पड़ा था। जायसी इन घटनाओं को वयस्क होने पर कह सकते थे कि वे उनके जन्म के समय में हुई थीं। नव सदी का अर्थ या तो कवि को ठीक-ठीक न मालूम था या नई सदी से ही उसका तात्पर्य था। 'नव' शब्द का प्रयोग 'नये' के अर्थ में कवि ने अनेक स्थलों पर किया है। ६०६ हिजरी के लिये कवि यह कह सकता था कि उसका जन्म एक नई सदी में हुआ था और यह भी हो सकता है कि कवि 'नव सदी' का अर्थ ६०० के बाद का समय समझता हो। "आखिरी कलाम" के साक्ष्य से यह ६०६ हिजरा जन्म सन् इतना स्पष्ट निकलता है कि सहसा उस पर बिना किसी अति प्रबल प्रमाण के अविश्वास नहीं किया जा सकता।"[1]

सैयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है—"कस्बा जायस में मुहम्मद जहीरुद्दीन बाबर शाह के अहद में सन् ६०० हिजरी (१४६५ ई०) में पैदा हुए।"[2]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी की "भा अवतार मोर नव सदी" आदि पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है "नवीं सदी हिजरी (१३६८-१४६४ ई०) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नव सदी से यह अर्थ लेना कि ठीक ६०० हिजरी में जायसी का जन्म हुआ था कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगत नहीं ठहरता। पदमावत की रचना सन् १५२७ से १५४० ई० के बीच में किसी समय हुई। उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। अतएव १४६४ ई० को उनका जन्म संवत् मानना कठिन है।"[3] डा० जयदेव की जायसी की जन्म-तिथि से सम्बद्ध मान्यता है कि "जायसी का जन्म ६०० हिजरी (सन् १४६५ ई०) में हुआ था जिसका वर्णन उन्होंने अपने काव्य आखिरी कलाम में किया है—'भा अवतार मोर नव सदी।"[4]

जायसी के जन्म सन् से सम्बद्ध विवेचना की तालिका इस प्रकार है —

८३० हिजरी : नवीं सदी हिजरी में तीस वर्ष बीतने पर–१४२७ ई०	:	पं० चन्द्रवली पाण्डेय[5]
६०० हिजरी : १४६२ ई० के लगभग	:	पं० रामचन्द्र शुक्ल
९०० हिजरी : १४६५ ई०	:	डा० जयदेव

१–म० मु० जायसी : डा० कमलकुल श्रेष्ठ, पृ० १६।
२–म० मु० जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा।
३–पदमावत, : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३२।
४–सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, पृ० ३१।
५–नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृ० ३६७।

९०६ हिजरा : डा० कमलकुल श्रेष्ठ
९०० हिजरी : १४९५ ई० : सैयद कल्बे मुस्तफा
नवीं सदी हिजरी : १३९८–१४९४ ई० के बीच किसी समय : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
९०६ हिजरी : १४९९ ई० : डा० विमलकुमार जैन[1]
८३० हिजरी : (मृत्यु ९४९ हि०) : पं० सूर्यकान्त शास्त्री[2]

आखिरी कलाम में जायसी ने अपने सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—

"भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिख ऊपर कबि बदी ।।
आवत उधत चार बड़ ठाना। भा भूकम्प जगत अकुलाना ।।
धरती दीन्हिं चक्र विधि भाई। फिरै अकास रहट कै नाई ।।
गिरि पहार मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भल चाला ।।
मिरित लोक जेहिं रचा हिंडोला। सरग पताल पवन घट (खट?) डोला ।।
गिरि पहार परबत ढहि गये। सात समुंद्र कहच (कीच ?) मिल भये ।।
धरती छात फाटि भहरानी। पुनि भइ मया जौ सिस्टि हठानी (दिठानी) ।।
जो अस खंभहि पाइकै, सहस जीब (जीभ ?) गहिराइं।
सो अस कीन्ह मुहम्मद, तो अस बपुरे काइं ।।[3]

वस्तुतः जायसी की इन्हीं पंक्तियों के आधार पर नौ सदी से ९०० हिजरी अर्थात् १४९२ ई० या १४९४ ई० को जायसी की जन्म-तिथि मानने में कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगति नहीं बैठती।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का यह कथन कि 'नौ सदी' का 'अर्थ या तो कवि को ठीक ठीक नहीं मालूम था या नई सदी से ही उसका तात्पर्य था' स्वयं में अशक्त है। एक तो जायसी जैसे समर्थ भाषाविद् और महाकवि के लिये इस प्रकार के कथन समीचीन नहीं हैं और दूसरे 'नौ सदी' 'नई सदी' अर्थ लगाने की बात भी समझ में नहीं आती, क्योंकि उन्होंने जायसी का जन्म-काल ९०६ हिजरी माना है। ऐसा मानने पर तो नई सदी के अनुसार नव (९) सदी नहीं, बल्कि दस सदी होना चाहिए। उनके ९०६ हि० की संगति है कि जायसी ने पदमावत की रचना २१ वर्ष की आयु में की या प्रारम्भ की, किन्तु यह बात संभव नहीं प्रतीत होती।

१–सूफीमत और हिन्दी साहित्य : डा० विमलकुमार जैन, पृ० ११६।
२–"ही वाज बार्न इन ८३० (एच०) इन द कंचन मुहल्ला आफ द टाउन (जायस)
पदुमावति : प्रो० सूर्यकान्त शास्त्री, प्रीफेस, पृ० ५।
३–जा० ग्रं० : डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६८८।४

'पदमावत' हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है।[१] 'और इस श्रेष्ठ काव्य की रचना' इक्कीस वर्षीय युवक के हाथों संभव नहीं है। पदमावत में ही कुछ पंक्तियां ऐसी हैं जिनके साक्ष्य पर पदमावत की रचना के समय जायसी वृद्ध हो चले थे या वृद्ध थे।

'मुहमद बिरिध बएस अब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई॥
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन दै नीरू॥
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला॥
बुद्धि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुंण सिर नाई॥
सरवन गए ऊंच दै सुना। गारौ गएउ सीस भा धुना॥
भंवर गएउ केसन्ह दै मुवा। जोबन गएउ जियत जनु मुवा॥
तब लगि जीवन जोबन साथां। पुनि सो मींचु पराए हाथां॥
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़े आढ़े होहु तुम्ह, केइं यह दीन्ह असीस॥''[२]

स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय 'वे अत्यंत वृद्ध हो गए थे।'[३] यह एक प्रकार से अन्तर्विरोध है और इसी कारण ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी की जन्म-तिथि मानना युक्ति संगत नहीं जंचता।

इस प्रसंग में एक बात और द्रष्टव्य है कि जायसी की मृत्यु-तिथि के विषय में भी अनेक सन् दिए गए हैं:—

कई विद्वान् जायसी की मृत्यु-तिथि १६५९ ई० मानते हैं।[४] श्री गुलाम सरवर लाहौरी इनकी मृत्यु तिथि १६३९ ई० मानते हैं।[५] 'श्री काजी नसरुद्दीन हुसेन जायसी ने जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में इनका मृत्युकाल ५ रजब ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) दिया है।[६]

यह काल कहां तक ठीक है नहीं कहा जा सकता। इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु व्यक्ति नहीं ठहरते। उनका परलोकवास ४९ वर्ष से भी कम की अवस्था में सिद्ध होता है, पर जायसी ने पदमावत के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत-सा जान पड़ता है।[७]

१—जा० ग्रं० : पं० रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य, पृ० १।
२—पदमावत : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ७१४—७१५।
३—वही, प्राक्कथन, पृ० ३२।
४—ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ५८।
५—खजीनतुल असफिया, सरवर, पृ० ४७३।
६—जा० ग्रं० : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८। ७—वही, पृ० ८।

पं० चन्द्रबली पांडेय[१] का मत है कि काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने जो मृत्यु-तिथि (५ रजब ९४९ हिजरी, सन् १५४२ ई०) दी है वह ठीक और प्रामाणिक है ।

यहां पर विशेष द्रष्टव्य है कि जायसी ने 'पदमावत' की सर्जना १५४० ई० के आसपास की थी । अत: १६३९ ई० या १६५९ ई० को जायसी का मृत्युकाल मानना समीचीन नहीं है । पूर्वांकित पंक्तियों में लिखा जा चुका है कि पदमावत की रचना के समय कवि अत्यंत वृद्ध हो चला था । और अत्यंत वृद्ध होने के पश्चात् वह "९९ वर्ष या ११९ वर्ष तक और जीवित रहा"–यह बात गले के नीचे नहीं उतरती ।

सैयद कल्बे मुस्तफा साहब ने लिखा है कि 'जिस वर्ष वे दरबार में बुलाए गए थे, उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई ।'[२]

मुस्तफा साहब ने गुलाम सरवर लाहौरी और अब्दुल कादिर के साक्ष्य पर जायसी की मृत्यु-तिथि सन् १०४९ हिजरी को ही स्वीकार किया है । मुस्तफा साहब की दी हुई तिथि को भी स्वीकार करने में अनेक आपत्तियां हैं । उनके मत के अनुसार जायसी का जीवनकाल १४९ वर्ष का ठहरता है । यदि यह असंभव नहीं, तो असाधारण बात अवश्य है, किन्तु अन्त: या बहि: किसी साक्ष्य से आजतक यह बात ज्ञात नहीं हुई कि वे लगभग डेढ़ सौ वर्ष के होकर मरे, और यदि १०४९ हिजरी तक वर्तमान थे और ९४७ हिजरी (१५४० ई० के आसपास) पदमावत की रचना कर चुके थे, तो शेष १०० वर्ष से अधिक लंबे अवकाश में अखरावट के अतिरिक्त अन्य पुस्तक का न लिखना उन जैसे क्रियाशील सूफी के लिए असंभव ही प्रतीत होता है । इस विवेचन के पश्चात् यह निश्चय ठीक प्रतीत होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ९४८ हिजरी में राज्य की ओर से अमेठी में आमंत्रित किए गए और ९४९ हिजरी में उनका शरीरांत हो गया ।

पुन: यदि ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी (क्रमश: पं० रामचन्द्र शुक्ल और श्री कमलकुल श्रेष्ठ के मतानुसार) को जयसी की जन्म-तिथि माने, तो मानना पड़ेगा कि उनकी मृत्यु ४३ या ४९ वर्ष की आयु में हुई । इस मत के विरोध में (पदमावत के उपसंहार में वर्णित वृद्धावस्था के वर्णन के अतिरिक्त) एक और प्रबल तर्क है । पदमावत के 'स्तुति-खन्ड' में कवि ने शाहे-तख्त-शेरशाह को आशीर्वाद देने का उल्लेख किया है—

१–ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१७ ।
२–म० मु० जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ७५ ।

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहिं जुग राज।
पातसाहि तुम जगत के, जग तुम्हार मुहताज ॥[1]

'दिल्ली की गद्दी पर बैठने के समय शेरशाह की अवस्था ५३–५४ वर्ष की हो चुकी थी। शेरशाह बादशाह को आशीर्वाद देनेवाला कवि अवश्य वृद्ध रहा होगा। अतः पदमावत के अंतिम छन्द में कवि का स्वतः अनुभूत वृद्धावस्था का वर्णन मानना ही ठीक है। पदमावत लिखते समय जायसी वृद्ध हो चुके होंगे। उन्हें अपने जन्म संवत् का स्वयं ठीक पता न रहा होगा, इसलिए उन्होंने 'भा औतार मोर नौ सदी' लिखा होगा। उनका जन्म नौवीं शताब्दी हिजरी में अर्थात् १३९८ और १४९४ ई० के बीच कभी हुआ।'[2] इसलिए ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी का जन्म-काल नहीं माना जा सकता।

सन् १९५२–५३ ई० में प्रोफेसर सैयद हसन अस्करी को मनेर शरीफ से कई ग्रन्थों के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं[4]। ये प्रतियां शाहजहां-कालीन बताई गई हैं। 'अखरावट' की प्रति की पुष्पिका में जम्मा ८ जुल्काद, ९११ हिजरी का उल्लेख है। "तमाम सुदद पोथी अखरौती बजुबाने मलिक मुहम्द जायसी किताबे हिंदवी किताबुल मिल्क व कातिबे हुरूफ फकीर हकीर मोहम्मद मोकीन साकिन टप्पा नदानू उर्फ बकामू खास अमला परगना निजामाबाद व सरकारे जौनपुर सूबे इलाहाबाद बवख्ते जोहर जुमा जकी शहरे मुल्काद सन् ९११। दर मौजे खास दीया मुकाम कनौरा अमला परगना नेहू खसरा मस्तूर अस्त तहरीर याफ्त ज्यिद: गुफ्तार नविस्तन इजहार नीस्त।' डा० रामखेलावन पांडेय[3] का कथन है कि 'इलाहाबाद की प्रतिष्ठा ९८१ हि० में होती है। अतः यह प्रति ९८१ हि० के पूर्व की नहीं हो सकती।' उन्होंने इसके लिए और भी तर्क दिए हैं। यह सन् मूलतः मूल प्रति या उसकी किसी प्रतिलिपि का है जिसे लिपिकार ने ज्यों का त्यों स्वीकार करके उतार दिया है। अतः यह प्रति ९११ हि० की है, प्रतिलिपि कब की है यह ज्ञातव्य है। प्रो० अस्करी,[4] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[5] और श्री गोपाल राय[6] इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'संभवतः' जिस मूल प्रति से यह प्रति लिखी गई थी, उसकी पुष्पिका में यह तिथि लिखी हुई थी, जिसे प्रतिलिपिकार ने ज्यों का त्यों उतार दिया

१–जा० ग्र० : डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १२८।१३

२–पदमावत–सार : इन्द्रचन्द्र नारंग, पृ० ३।

३–हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ३५९।

४–दी जर्नल आफ दी बिहार–रिसर्च सौसाइटी, भाग ३९, पृ० १९।

५–पदमावत : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३२।

६–ना० प्र० पत्रिका, अंक ३–४, सं० २०१६।

है। इन विद्वानों का विचार है कि मनेर शरीफ की इस प्रति के साक्ष्य पर 'अखरावट' का रचनाकाल ९११ हिजरी माना जा सकता है। अखरावट जायसी की प्रारम्भिक रचना है जिस भूकंप का जीवंत चित्र जायसी ने आखिरी कलाम में दिया है, और जिसे डा० कमलकुल श्रेष्ठ,[१] पं० परशुराम चतुर्वेदी[२] आदि विद्वानों ने जायसी के जन्म के समय घटित मान लिया है--उससे भी स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि जायसी कृत अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी है।

'भा भूकंप जगत अकुलाना।' वाले भूकंप को इन विद्वानों ने जायसी के जन्म के समय में घटित कहा है। 'तारीखे-दाऊदी (अब्दुल्लाह) मखजनै-अफागिना (नियमतुल्लाह) और मुन्तखबुत्तवारीख[३] (बदायूनी) के अनुसार ९१०-११ हि० में उत्तर भारत में एक भयानक भूकंप हुआ था और कदाचित इससे इतनी हानि पहुंची थी कि इतिहासकारों ने भी जो इस प्रकार की घटनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते, इसका वर्णन किया है।'[४]

९११ हिजरी (सन् १५०५) में एक भंयकर भूकंप आगरे में आया था।[५] बाबरनामा[६] और अल्बदायूनी[७] के 'मुन्तखबुत्तवारीख' से भी स्पष्ट है कि ९११ हिजरी में एक भूकंप आया था। यदि 'अखरावट' के भूकम्प-वर्णन को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जायसी ने इसे स्वयं देखा हो। भूचाल का विस्तृत वर्णन इस बात का संकेत है कि जायसी ने उसे देखा और उसकी विकरालता का अनुभव किया था।[८] जायसी के जन्म के समय भूकम्प हुआ था या नहीं किन्तु यह स्पष्ट है कि अखरावट में जिस भूकम्प का उल्लेख है उसमें और ९१० हिजरी के आसपास आए हुए भूकम्प के उल्लेख में साम्य है। 'इससे यह बात प्रमाणित होती है कि

१-म० मु० जायसी : डा० कमलकुल श्रेष्ठ, पृ० ७।

२-सूफी काव्य सग्रह : पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १०४।

३-दी जर्नल आफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, पृ० १९।

४-३ सफर सन् ९११ (६ जुलाई १५०५ ई०) को भूकंप आया था, आइने अकबरी, पृ० ४२१।

५-"दूसरे वर्ष १५०५ ई० में आगरा में एक भयंकर भूकंप आया था। इससे धरती कांप उठी थी और अनेकानेक सुन्दर इमारतें और मकान धराशायी हो गए थे।" डा० ईश्वरी प्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० २३२।

६-बाबर ने लिखा है-"तीसरी सफर को तैंतीस धक्के लगे और प्रायः एक मास तक दो तीन धक्के लगते रहे।" इलियट भाग ४, पृ० २१८।

७-मुंतखवुत्तवारीख (अल्बदायूनी) अंग्रेजी अनुवाद : रैंकिंग कृत, भाग १ पृ० ४२१।

८-हिन्दी अनुशीलन : गोपाल राय, पृ० ९।

'अखरावट' ६११ हिजरी में लिखा गया। अत: जायसी का जन्मकाल ६०० या ६०६ हिजरी मानना असंगत हो जाता है, क्योंकि ५ या ११ वर्ष की अवस्था में अखरावट जैसे सिद्धान्त-प्रधान ग्रंथ की रचना संभव नहीं है।"[१]

पूर्वांकित पंक्तियों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० अस्करी, इन्द्रचन्द्र नारंग आदि के मतों का उल्लेख किया गया है कि ये विद्वान् 'नौ सदी' का अर्थ ८०१ हिजरी से ९०० हिजरी तक का समय लेते हैं अर्थात् इसी सदी (सौ वर्ष) के बीच किसी समय जायसी का 'अवतार' हुआ था।

पं० चन्द्रबली पांडेय[२] ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखकर इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपने मत की पुष्टि की थी। वे मानते हैं कि जायसी की जन्मतिथि नवीं सदी में तीस वर्ष बीतने पर मानी जानी चाहिए अर्थात् ८३० हि० को जायसी का जन्मकाल मान लिया जाय तो उनकी उम्र ११९ वर्षों की ठहरती है। जायसी जैसे महान् संत के लिए यह अवस्था असम्भव नहीं है।

उक्त मत को मान लेने में एक भारी आपत्ति है। पदमावत का रचनाकाल १५४० ई० नि:संदिग्ध है। यदि पं० चन्द्रबला पांडेय के मतानुसार ८३० हिजरी को जायसी का जन्मकाल स्वीकार करें, तो इसका अर्थ हुआ कि पदमावत की रचना (९४७ हि०) के समय उनकी अवस्था ११७ वर्षों की थी अर्थात् जायसी ने ११७ वर्ष की अवस्था में इस ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की। जायसी ने पदमावत में जिस स्वानुभूत वृद्धावस्था का वर्णन किया है वह सम्भवत: इसी अवस्था की वृद्धावस्था है (?) स्पष्ट ही यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। मनेर शरीफवाली प्रति के साक्ष्य पर विद्वानों का विचार है कि 'अखरावट' का रचनाकाल ९११ हिजरी है। ९११ हि० में से तीस हिजरी वर्ष घटाने पर ८८१ हिजरी आता है और अखरावट में कवि कहता है :—

'भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कबि बदी॥

तो स्पष्ट हो जाता है कि ८८१ हि० के लगभग ही जायसी का 'अवतार' हुआ था। इस गणना के अनुसार मृत्यु के समय जायसी की अवस्था लगभग ६८-७० वर्ष की थी। इस प्रकार ८८१ हि० (सन् १४७६ ई०) को जायसी की जन्म-तिथि मान लेने पर उनके जीवन की अन्य तिथियों की संगति आसानी से बैठ जाती है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि जायसी का जन्म ८८१ हिजरी (१४७६ ई०) में और मृत्यु लगभग ७० वर्ष की अवस्था में ४ रजब ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) हुई थी।

१-वही। २-ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१७।

जायसी गुरु–परम्परा

'मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में थे। इस परम्परा की दो शाखाएं हुईं–एक मानिकपुर–कालपी की और दूसरी जायसी की। जायसी ने पहली शाखा के पीरों की परम्परा का उल्लेख करते हुए उनका स्तवन किया है। सूफी लोग निजामुद्दीन औलिया की मानिकपुर कालपी वाली परम्परा इस प्रकार बतलाते हैं :

१–चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।१

'पदमावत और अखरावट दोनों में जायसी ने मानिकपुर–कालपी वाली गुरु परम्परा का उल्लेख विस्तार से किया है, इससे डा० ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा-गुरु माना है।

रामचन्द्र शुक्ल[1] ने अनुमान लगाते हुए कहा था–'गुरुबन्दना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सैयद अशरफ के। 'पदमावत में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है—

'सैयद अशरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा। चले उताइल जेहिकर खेवा॥

निजामुद्दीन औलिया की पूर्ववर्ती गुरु-परम्परा इस प्रकार है–

मुहम्मद
।
अली
।
इमाम हसन बसरी
।
अब्दुल वाहिद
।
ख्वाजा फुजैल बिन् अयाज
।
सुलतान इब्राहीम बिन अधम बख्शी
।
ख्वाजा आफिज अलमरशी
।
ख्वाजा हवेर अल् बसरी
।
ख्वाजा अलुव (अबू ?) ममशद
।
ख्वाजा बु-अम-इशाक शामी
।
ख्वाजा अबू अहमद अब्दाल चिश्ती
।
ख्वाजा मुहम्मद जाहिद मकबूल चिश्ती
।
ख्वाजा यूसुफ नासिरुद्दीन चिश्ती
।
ख्वाजा कुतुबुद्दीन मौदूद चिश्ती
।

१–जा० ग्र० : रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० ६।

ख्वाजी हाज शरीफ जिन्दनी
।
ख्वाजा उसमान हरवनी
।
ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
।
ख्वाजा कुतुबुद्दीन
।
शेख फरीदुद्दीन शकरगंज
।
हजरत निजामुद्दीन औलिया

'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहांगीर का ही उल्लेख है। 'पीर' शब्द का प्रयोग भी सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बन्दा कहा है, इससे हमारा (पं० रामचन्द्र शुक्ल का) अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायस वाले तो सैयद अशरफ के पोते मुबारक शाह बोदले को उनका गुरु बताते हैं, पर यह ठीक नहीं जंचता।[1]

शुक्ल जी ने जायसवाली गुरु-परम्परा में केवल चार नाम दिये हैं। जायस वाली परम्परा इस प्रकार है–

१–जा० ग्र० : पं० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० ६–१०।

यहां पर विद्वानों का ध्यान एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की ओर आकृष्ट करना अपेक्षित है। शुक्लजी ने जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में उपर्युक्त बातें लिख दीं, तब से लेकर आजतक इस विषय के (प्रायः सभी) शोधकों ने शुक्लजी के ही वाक्यों को घुमाफिरा करके शोध के नाम पर प्रस्तुत किया है। क्या सचमुच सैयद अशरफ और मुहीउद्दीन दोनों जायसी के गुरु थे ? क्या मुबारक शाह बोदले भी जायसी के गुरु थे ? जायसी ने गुरु–विषयक क्या-क्या बातें लिखी हैं ?

ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि सैयद अशरफ एक महान् सूफी संत थे और उनकी मृत्यु ८०८ हिजरी में हुई थी।[१] जायसी का उनकी मृत्यु के काफी बाद में 'अवतार' हुआ था। जायसी ने उन्हें पूज्य 'पीर' माना है। उन्होंने पदमावत में ही अपनी गुरु-पम्परा और अपने गुरु की बात स्पष्ट रूप से लिख दी है–

'सैयद असरफ पीर पियारा । तिन्ह मोहिं पंथ दीन्ह उजियारा ।'
'जहांगीर ओइ चिस्ती, निहकलंक जस चांद ।
ओइ मखदूम जगत के हौं उन्हके घर बांद ॥

वे सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती वंश के थे और चांद जैसे निष्कलंक थे। वे जगत् के मख़दूम (स्वामी) थे और मैं उनके घर का सेवक हूं।

इससे स्पष्ट है कि जायसी स्वयं को उनके 'घर का सेवक' के रूप में मानते थे। वे आगे और लिखते हैं –

'उन्ह घर रतन एक निरमरा । हाजी सेख सभागइ भरा ॥
तिन्ह घर दुइ दीपक उजियारे। पंथ देइ कहं दइअ संवारे ॥
सेख मुबारक पूनिउं करा । सेख कमाल जगत निरमरा ॥'[२]
मुहम्मद तहां निचिन्त पथ जेहि संग मुरसिद पीर ।
जेहि रे नाव करिआ औ खेवक बेग पाव सो तीर ॥[३]

उस सैयद अशरफ जहांगीर के घर में एक निर्मल रत्न 'हाजी शेख़' हुआ जो सौभाग्य सम्पन्न था। उनके घर में मार्ग दिखलाने के लिए दो उज्ज्वल दीपक संवारे। एक शेख मुबारक जो पूनम की कला के समान था और दूसरा शेख कमाल जो संसार भर में निर्मल था। मलिक मुहम्मद का कथन है कि विश्व में जिसके संग में मुरशिद (गुरु) और पीर (संत) हों, वह मार्ग में निश्चिन्त रहता है। जिसकी नाव में पतवरिया और खिवैया दोनों हों वह शीघ्र तीर पर पहुँच जाता है।'

१–अखबार उल अख्यार के अनुसार इनकी मृत्यु ८४० हि० में हुई।
देे० हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ३६८।
२–जा० ग्रं० : डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३२
३–जायसी ग्रन्थावली : डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १३२, दो० १६

इतना लिखने के पश्चात् उन्होंने तुरन्त लिखा –

'गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिन्ह कर खेवा ॥
अगुआ भएउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहिं दीन्ह गियानू ॥
अलहदाद भल तिन्हकर गुरू। दीन दुनिअ रोसन सुरखुरू ॥
सैयद अहमद के ओइ चेला। सिद्ध पुरुष संग जेहिं खेला ॥
दानिआल गुरु पंथ लखाऐ। हजरति ख्वाज खिजिर तिन्ह पाए ॥
भए परसन ओहि हजरत ख्वाजे। लइ मेरए जंह सैयद राजे ॥
उन्ह सौं मैं पाई जब करनी। उघरी जीभ प्रेम कबि बरनी ॥
ओइ सौं गुरु हौं चेला निति बिनवौं भा चेर।
उन्ह हुति देखइ पावौं दरस गोसाई केर ॥'

गुरु 'मोहदी' खेनेवाले हैं। मैं उनका सेवक (शिष्य) हूं। उनका डांड़ शीघ्रता से चलता है। शेख बुरहान अगुआ (मार्ग दर्शक) हैं। उन्होंने मार्ग पर लाकर ज्ञान दिया। बुरहान् के गुरु अलहदाद थे, जो दीन-दुनियां में सुविदित तेजस्वी थे। वे सैयद मुहम्मद के शिष्य थे, जिनकी संगति में पहुंचे हुए लोग रहते थे। उन्हें गुरु दानियाल ने मार्ग दिखाया था। हजरत ख्वाजा खिज़ से कहीं उनकी भेंट हो गई थी। वे हजरत ख्याजा उनपर प्रसन्न हो गये और जहां सैयद राजे थे वहां ले जाकर मिला दिया। उन गुरु मुहीउद्दीन से जब मैंने कर्म की योग्यता पाई, तो मेरी जीभ खुल गई (वाणी फूट निकली) और वह प्रेम काव्य का वर्णन करने लगी।

'वे हमारे गुरु हैं, मैं उनका चेला हूं, मैं नित्य उनका सेवक बनकर उनकी बन्दना करता हूं। उनकी ही कृपा से मैं भगवान् के दर्शन पा सकूंगा।'

पदमावत के अनुसार जायसी द्वारा दी गई पीर-परम्परा और गुरु-परम्परा इस प्रकार है –

(१) पीर–परम्परा
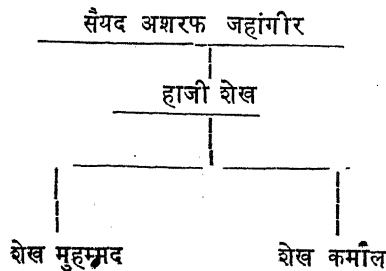
(२) गुरु—परम्परा
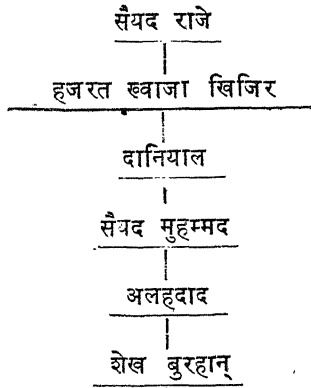
'अखरावट' में वर्णित परम्परायें भी लगभग इसी प्रकार की हैं। अन्तर यह है कि प्रथम परम्परा में निजामुद्दीन चिश्ती और अशरफ जहांगीर को ही स्मरण किया है और गुरु महदी वाली दूसरी परम्परा हजरत ख्वाजा खिजिर तक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के दो तीन गुरु नहीं थे एक ही गुरु थे – गुरु मोहदी। यह कहना उन्होंने एक गुरु से दीक्षा ली और तत्पश्चात् दूसरे 'दूसरे 'गुरु से भी दीक्षा लेकर लाभ उठाया – निराधार है। जायसी ने अन्यत्र भी स्पष्ट लिखा है –

'महदी गुरू शेख बुरहानू । कालपि नगर तेहिंक अस्थानू ।
सो मोरा गुरु, हौं तिन्ह चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला ।।'[१]

अत: स्पष्ट है कि इनके गुरु प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहदी थे।[२]

गुरु–परम्परा (निष्कर्ष)

भारतवर्ष में सूफी धर्म का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ।[३] यह मूलत: चार सम्प्रदायों के रूप में आया जो समय-समय पर देश में प्रचारित हुए। उनके नाम और समय निम्नलिखित हैं –

(१) चिश्ती सम्प्रदाय – सन् बाहरवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।
(२) सुहरावर्दी संम्प्रदाय – सन् तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

१–चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।
२–हिन्दी-साहित्य : डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० २६४।
३–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०४।

(३) कादरी सम्प्रदाय – सन् पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ।

(४) नक्शबंदी सम्प्रदाय – सन् सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ।

'आइने-अकबरी' में अबुल फजल[१] ने अपने समय में चौदह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है – चिश्ती, सुहरावर्दी, हबीजी, तूफूरी करर्वी, सकती, जुनेदी, काजरूनी, तूसी, फिरदौसी, जैदी, इयादी, अध्मी और हुबेरी। इनकी भी अनेक शाखायें फैलीं। भारतीय सूफी सम्प्रदायों में चिश्ती सम्प्रदायों को बड़ी ख्याति मिली है। 'इसके पश्चात् कादरी, सुहरावर्दी, सत्तारी और नक्शबंदी सम्प्रदाय भी अत्यन्त प्रसिद्ध सम्प्रदाय रहे हैं।'[२]

चिश्तिया[३] सम्प्रदाय के मूल संस्थापक अदब अब्दुल्ला चिश्ती बारहवीं शती के अन्त में भारत आए और अजमेर में रहने लगे। इन्हीं की शिष्य परम्परा में निजामुद्दीन औलिया हुए। निजामुद्दीन की शिष्य-परम्परा में शेख अलाउल हक हुए। उन्हीं से अलाई चिश्तियों की एक शाखा मानिकपुर में स्थापित हुई। इसके आरम्भ-कर्ता शेख हिशामुद्दीन थे, जिनकी मृत्यु १४४६ ई० (८५३ हिजरी) में हुई। उनके शिष्य सैयद राजे हामिदशाह अपने पीर की आज्ञा से जौनपुर में आ बसे थे, किन्तु फिर मानिकपुर लौट गये। वहीं १४९५ ई० (९०१ हि०) में उनका देहान्त हुआ। इनके शिष्य शेख दानियाल हुए जो 'खिज्री' विरुद से प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि हजरत ख्वाजा खिज्र से उनकी भेंट हो गई थी जिनसे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। दानियाल सुलतान हुसैन शर्की (८६२-८४ हि०) के राज्यकाल में ज़ौनपुर में बसे थे। उनके अनेक शिष्यों में एक सैयद मुहम्मद हुए, जिन्होंने 'महदी' होने का दावा किया और वे अपने शिष्यों में महदी नाम से ही विख्यात हो गए। बदायूनी ने भी जौनपुर के सैयद मोहम्मद महदी का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है इनकी मृत्यु १५०४ ई० में हुई। इनके शिष्य शेख अलहदाद हुए और अलहदाद के शेख बुरहान उद्दीन अन्सारी हुए, जिन्हें जायसी ने 'शेख बुरहानू' कहा है। शुक्लजी ने बुरहान के शिष्य-रूप में शेख मोहिदी या मुहीउद्दीन का उल्लेख किया है। श्री हसन असकरी ने सिद्ध किया है कि मोहदी या मुहीउद्दीन कोई अलग व्यक्ति न थे, बल्कि सैयद मोहम्मद की ही संज्ञा महदी थी।

'अखरावट' और मनेर शरीफ की प्रतियों का पाठ महदी ही है–

"गुरु महदी खेवक में सेवा।" २०।१

"चले उताइल महदी खेवा" अखरावट २७।५

१–ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दी हिस्ट्री आफ सूफीज़्म : आर्थर जे० आरबेरी (इन्ट्रोडक्शन) पृ० ७-८।

२–आउटलाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर, वाल्यूम २; ए० एम० ए० शुस्तरी, पृ० ५४६

३–पदमावत ; ड० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३७।

जायसी ने जीव, ब्रह्म और प्रकृति (सृष्टि) की अभेदता का भी प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण जगत ईश्वर की ही प्रभुता का विकास है। नाना योनियों में वही परमात्म तत्व ही प्रकट हुआ है –

'जौ उतपति उपराजै चहा। आपनि प्रभुता आपु सों कहा॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुन्दा॥'[१]

ब्रह्म ही इस जगत का बड़ा सर्जक है, करतार है, धारण करने वाला और हरण करने वाला भी है –

'तुम करता बड़ सिरजन-हारा। हरता धरता सब संसारा।'[२]

इस प्रकार जायसी ने जीव और ब्रह्म के अभेदत्व की स्थापना की है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि जीव में अल्लाह के 'जमाल एवं जलाल[३]' (सौन्दर्य-माधुर्य एवं शक्ति; प्रताप और ऐश्वर्य पक्ष) का लोप हो जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि एक बूंद में समुद्र समाया हुआ है अर्थात् मनुष्य-पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है जब अपने भीतर ही ढूंढ़ा, तो वह उसी अनन्त सत्ता में विलीन हो गया –

'बुन्दहिं समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं ?
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महं॥'[४]

साधक के लिए इसी अभेदत्व का स्पष्टीकरण करते हुए कवि का कथन है कि 'जैसे दूध में घी और समुद्र में मोती की स्थिति है वैसे ही वह परम ज्योति भी इसी जगत के भीतर-भीतर भासित हो रही है।'[५] कवि कहता है कि वस्तुतः एक ही ब्रह्म के चित् और अचित् दो पक्ष हुए, दोनों के मध्य तेरी अलग सत्ता कहां से आई। जीव जब अपनी अलग सत्ता के अहंभाव या भ्रम को मिटा देता है, तो वह ब्रह्म में मिलकर एक हो जाता है –

'एकहि ते दुए होइ, दुइ सों राज न चलि सकै।
बीचतें आपुहि खोइ, मुहम्मद एकै होइ रहु॥'[६]

'ठकार के सिलसिले में भी जायसी ने जीव, ब्रह्म और सृष्टि के विषय में अपना मत व्यक्त किया है –

'ठा – ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेहि सिरजा जग अपनिहिं नाईं॥
आपुहि आपु जौ देखै चहा। आपनि प्रभुता आप सौं कहा॥

१–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०५।
२–वही, पृ० ३०५।
३–वही, पृ० ३०८
४–वही, पृ० ३०८ (सोरठा)।
५–वही, पृ० ३१४।
६–वही, पृ० ३१४। (सोरठा १५)।

सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सौजा, आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूलि बन फूले। अपुहि भंवर बास-रस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस-चाखनहारा ॥
आपुहि घट-घट महं मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै ॥
आपुहि कागद आपु मसि, आपुहि लेखनहार।
आपुहि लिखनी, आखर, आपुहि पंडित अपार ॥[१]

कवि निखिल सृष्टि में उसी एक सत्ता को संप्रसारित पाता है।

३-साधना – मूलतः सूफी साधना 'प्रेम-प्रभु' की साधना है। विरहानुभूति एवं प्रियतम की प्राप्ति के लिए प्रेम-पंथ का अवलम्बन इस साधना के केन्द्र हैं। साधक अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम के प्रति प्रेम की पीर को जगाता है। पहले जीव-ब्रह्म (बन्दा-अल्लाह) एक थे। पश्चात् इस अद्वैत या अभेद-स्थिति में भेद की निष्पत्ति हुई। अब जीव इस विरह-जन्य तड़पन की स्थिति में है, वह पुनः अपने बिछुड़े हुए प्रियतम से मिलकर अभेदता का आनन्द पाना चाहता है –

"हुता जो एकहि संग, हम तुम काहे बीछुरे।
अब जिउ उठै तरंग, मुहमद कहा न जाइ किछु ॥"[२]

यह 'भावतरंग' मूलतः विछोह की तीव्र अनुभूति से उत्पन्न है। कबीर[३] की ही भांति जायसी ने भी इसे एक महान् प्रेम भावना और 'शीश का सौदा' कहा है–

"परैं प्रेम के झेल, पिउ सहुं धनि मुख सो करै।
जो सिर सेंती खेल, मुहम्मद खेल सो प्रेम रस ॥[४]

इस 'काया नगरी' में ही प्रियतम मिल सकता है, हां यह अश्वय है कि उसे खोजने में स्वयं 'खो' जाना 'चाहिए, उनमें खो जाने पर ही 'पिउ' मिलता है[५] –

आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा ॥
जौ ओहि हेरत जाइ हेराई। सो पावै अमृतफल खाई ॥

१–जा० ग्रं०ना० प्र० सभा,पृ० ३१६।
२–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०५।
३–'जह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीर उतारै भुइं धरै, सौ पैसे घर माहिं ॥ कबीर।
४–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०६।
५–हेरत हेरत हे सखी रहया कबीर हेराइ। बूंद समानी समद में, सोकत हेरी जाइ ॥
हेरत हेरत हे सखी गया कबीर हिराइ। समद समाना बून्द में सोकत हेरया जाय ॥
–कबीर ग्रंथावली, पृ० १७, ३–४।

आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचारि मन, लेहु न हेरि हिराय ॥[1]

प्रियतम की यह खोज साधारण जन के वश की बात नहीं है। कोई 'मरजिया' ही उसे पाता है –

'कटु है पिउ कर खोज, जो पावा सो मरजिया
तहं नहिं हंसी, न रोजं, मुहमद ऐसे ठावं वह ॥'[2]

गुरु की कृपा से ही शिष्य समझ कर इस प्रेम पंथ पर चलता है। यह पंथ भी अजब विकट है – 'सात खण्ड हैं, चार सीढ़ियां हैं, अगम्य चढ़ाई है, त्रिवेणी (इला-पिंगला-सुषुम्ना) का पंथ है, इस पर वही चढ़ता है जिसे गुरु चढ़ाता है, जो अपने बल पर चढ़ा वह गिर पड़ा, नारद दौड़कर संग में हो जाते हैं, उसे साथ लेकर कुमार्ग पर चलते हैं आगे फिर तो तेली के बैल की तरह वह निशिदिन फिरता रहता है, पर एक पग भी और नहीं बढ़ता।[3]

यों तो जायसी उदारतापूर्वक विधिना तक पहुंचने के अनेक मार्गों को स्वीकार कराते हैं, फिर भी वे मुहम्मद के पंथ (स्वर्गीय प्रेम पंथ या इस्लाम) को श्रेष्ठ मानते हैं, उस मार्ग को जो पाता है वह पार उतर जाता है और जो अन्यत्र भूला होता है वह बटपारों द्वारा लूट लिया जाता है –

"विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवां जेते ॥
तेहि महं पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई ॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कबिलास बसेरा ॥"—
वह मारग जो पावैं, सो पहुँचे भव पार।
जो भूला होइ अनतहि, तेहि लूटा बटपार ॥"[4]

जायसी मुहम्मद के पंथ को श्रेष्ठ मानते हैं। जायसी ने नमाज, तरीकत, हकीकत, मारिफत और शरीअत को इस पंथ का महत्वपूर्ण अंग कहा है। इस्लामी सृष्टि रचना की कल्पना से उनका कोई मतभेद नहीं है। कुरान[5] में आदम को खुदा के रूप-रंग का कहा गया है। जायसी ने भी लिखा है कि 'उहै रूप आदम अवतरा।'[6] आदम के स्वर्ग से निष्कासन की कथा को भी जायसी ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। जायसी ने आदम के अल्लाह से बिछोह के दुःख को साधारण जीव के वियोग

१–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३१९-२०।
२–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३१९–२०।
३–वही, पृ० ३२० (दा दाया जा कह गुरु करई, आदि)।
४–वही, पृ० ३२१। ५–कुरान शरीफ (हिंदी)
६–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०८।

का दुःख मान कर इस्लामी कल्पना पर सूफीमत की प्राणप्रतिष्ठा कर दी है। वस्तुतः बन्दा और अल्लाह में 'जमाल-जलाल' के ही अस्तित्व और अनस्तित्व का भेद है। जीव इस संसार में आते ही अल्लाह के 'जमाल–जलाल' से अलग हो जाता है। और इस कारण वह दुःखी होता है—

"छाँड़ि जमाल जलालहि रोवा। कौन ठांव तें दैव बिछोवा ॥"

सूफी साधकों ने विधि-विहित पंथ को स्वीकार किया है। जायसी ने भी अन्य सूफी साधकों की भांति नमाज, मक्का-मदीना, फरिश्तों और इमाम में विश्वास प्रकट किया है, किन्तु उनकी व्याख्या नवीन प्रकार की है। ये सब कायानिष्ठ हैं, अतः उनके मत से इनके लिए हज (तीर्थ-यात्रा) और कृच्छ्र-साधना की आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि कायानिष्ठ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए 'चारि बसेरे सों चढ़े सत सों उतरै पार 'वाली सूफी साधकों की विशिष्ट साधना पद्धति है, तथापि जायसी ने योग-मार्ग की साधना की भी बातें स्वीकार की हैं। उन्होंने स्थान-स्थान पर योगियों के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग भी किए हैं। अनहदनाद्, इला, पिंगला, सुषुम्ना, बंकनालि, शून्य, सहस्रार, चक्र, कमल, कुंडलिनी, नौ पौरी, दशम द्वार आदि अनेक योगसाधना-परक शब्द अखरावट में मिलते हैं।

शून्यवाद-योगमत में 'शून्य' की महत्ता है। विद्वानों का विचार है कि संभवतः बौद्ध शून्यवादी सिद्धों के दाय के रूप में उन्होंने इसे प्राप्त किया था। जायसी ने इस 'शून्यवाद' का इस प्रकार निरूपण किया है—

'इहै जगत कै पुन्नि, यह जप-तप यह साधना।
जानि परै जेहि सुन्न, मुहमद सोई सिद्धभा ॥
भा भल सोइ जो सुन्नहि जानै। सुन्नहि तें सब जग पहिचानै ॥
सुन्नहि ते है सुन्न उपाती। सुन्नहि तें उपजहिं बहु भांती ॥
सुन्नहि मांझ इन्द्र बरम्हंडा। सुन्नहि ते टीके नवखंडा।
सुन्नहि ते उपजे सब कोई। पुनि बिलाइ सब सुन्नहि होई ॥
सुन्नहि सात सरग उपाराहीं। सुन्नहि सातौ धरति तराहीं ॥
सुन्नहि ठाट लाग सब एका। जीवहि लाग पिंड सगरे का ॥
सुन्नम सुन्नम सब उतिराई। सुन्नहि महं सब रहे समाई ॥
सुन्नहि महं मन-रूख, जस काया महं जीउ।
काठी माझ आगि जस, दूध माहं जस पीउ ॥'"[१]

हिंदी में संभवतः सर्वप्रथम 'शून्यवाद' की बातें सिद्ध सरहपाद की बानी में मिलती हैं—

१–आ० ग्रं०, ना प्र० स०, पृ० ३२३–३२४।

"जहि मण पवण ण संचरइ, रवि-ससि णाह पवेस।
तहि बढ़! चित्त विसाम करु सरहें कहिउ उएस॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण॥[१]

इस सिलसिले में नागार्जुन के शून्यवाद का महत्व है। नागार्जुन का शून्यवाद बुद्ध के 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का ही तर्क प्रतिष्ठित एवं विकास प्राप्त रूप है। उसने प्रतीत्यसमुत्पादवाद, शून्यवाद और मध्यममार्ग भी कहा है।[२] दार्शनिक दृष्टि से जागतिक पदार्थों को न सत कह सकते हैं और न असत्। और न उनके विषय में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद की ही स्थापना की जा सकती हैं।[३] न तो हम संसार के पदार्थों के कारण से उत्पन्न होने के कारण ऐकांतिक असत् कह सकते हैं और सापेक्ष होने के कारण उन्हें ऐकांतिक सत् भी नहीं कह सकते।[४]

"शून्यमिति न वक्तव्यं अशून्यमिति एव च।"

नागार्जुन ने तो यहां तक कहा है कि तत्व जैसा है वैसा उसका वर्णन करना असंभव है। वह शून्य है। शून्य से ही समस्त पदार्थों की निष्पत्ति हुई है अन्त में वे शून्य में ही लीन भी हो जाते हैं। इस शून्य रूप की अनिर्वचनीय सत्ता की अनुभूति होने के ही कारण बुद्ध तथागत हैं। समस्त दृश्य वस्तुएं (पदार्थ) भी शून्य ही हैं। यह शरीर भी शून्य है। यही शून्यवाद नाथपंथी योगियों के माध्यम से कबीर आदि निर्गुनियों संतों और जायसी आदि सूफियों को प्राप्त हुआ है। भंवर-गुफा, ब्रह्मरन्ध्र—दशम-द्वार, अनाहतनाद इला-पिंगला-सुषुम्ना आदि शून्यवादी शब्द इन तीनों मतवादों में एक ही प्रकार से प्रयुक्त मिल जाते हैं। जायसी ने शून्यवाद[५] का जो महत्व प्रतिपादित किया है उसके मूल में भारतीय-योग साधना है। उन्होंने अखरावट में नाथों और योगियों की साधना-पद्धति को स्वीकार कर लिया है। क्या प्राणायाम और क्या आसन-समाधि, क्या इला, पिंगला या सुषुम्ना की बात

१—हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग : नामवर सिंह, परिशिष्ट, पृ० ३२४।
२—मूल माध्यमिक कारिका, नागार्जुन (चन्द्रकीर्ति की वृत्ति-सहित, २४।१८)

"यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्ष्महे।
सा प्रज्ञप्तिसपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा॥"

महायान, भदंत शांतिभिक्षु, पृ० १६।

३—ए हि० इं० फि०, सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, वा० १, पृ० १४३।
४—मूल माध्यमिक कारिका वृत्ति, पंचम प्रकरण, पृ० १४५।
५—जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, (अखरावट), पृ० ३३४।

और क्या ब्रह्मरन्ध्र की महत्ता, क्या अनहदनाद[1] और क्या 'सोंहम्', क्या पिंड-ब्रह्माण्ड की एकता[2] और क्या इनका सूक्ष्म विवेचन यह सब मूलत: हठयोगियों की साधना का ही प्रभाव है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

"तब बैठहुह बज्रासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी॥"[3]

जायसी ने कबीर के विषय में लिखा है कि वे बड़े भारी सिद्ध थे–

"ना–नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहै सौं मैं हारा॥"[4]

कबीर की बानियों पर योग-संप्रदाय की गहरी छाप है। जायसी द्वारा कबीर को बड़ा सिद्ध कहना और उनकी महत्ता को स्वीकार करना इस बात की ओर इंगित करता है कि जायसी पर भी योगमत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

'चारि बसेरे (अवस्थाएं)

सूफी मत के साधक की क्रमश: चार अवस्थाएं[5] कही गई हैं (१) शरीअत धर्म ग्रन्थों के विधि-निषेध का सम्यक् पालन (कर्मकाण्ड), (२) तरीकत (वाह्य-क्रिया कलापों से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान (उपासना काण्ड), (३) हकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक् बोध–जिससे साधक तत्व-दृष्टि-सम्पन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है (ज्ञानकाण्ड) और (४) मारिफत (सिद्धावस्था) –कठिन व्रतोपवास द्वारा साधक की आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना), इस प्रकार साधक ईश्वर की सुन्दर प्रेममयी प्रकृति का अनुसरण करता हुआ प्रेममय हो जाता है।

अखरावट में जायसी ने इन अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख किया है–

(शरीअत) "कही सरीयत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहंगीरू॥
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई। देखि समुद जल जिउ न डेराई॥
(तरीकत-मारिफत) राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड़की॥

"साँची राह सरीअत, जेहि बिसवास न होइ।
पांव रखै तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचै सोइ॥

स्पष्ट है कि जायसी सच्चे मुसलमान की भाँति विधि-विधान शरअ को मानते थे। उनकी शरीअत पर आस्था थी। इन अवस्थाओं के नाम-मात्र के ही वर्णन

१–वही, पृ० ३०७, ३१२, ३१६, ३३८।
२–वही, पृ० ३०६ (दोहा)। ३–वही पृ० ३२८।
४–वही, पृ० ३३१।
५–पदमावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० १२५।
६–जा० ग्र०, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृ० ६६४।

अखरावट में मिलते हैं। वे चारो मुकामों और सातो मुकामों के महत्व को भी स्वीकार करते हैं–

"सात खंड और चार नसेनीं। प्रथम चढ़ाव पंथ तिरबेनी ॥[1]
बाँक चढ़ाव सात खंड ऊँचा। चारि बसेरे आइ पहूँचा ॥[2]

नैतिक मतवाद एवं आध्यात्मिक वैशिष्ट्य

क्या कबीरदास और क्या सूरदास, क्या तुलसीदास और क्या जायसी– वस्तुतः भक्तियुगीन इन संतों, भक्तों और सूफियों में विचार और भावना की संकीर्णता नहीं है। यद्यपि वे अपने-अपने धर्म और पंथ पर दृढ़ हैं, फिर भी वे उन्हें 'ऐकान्तिक-एकमात्र पंथ के रूप में नहीं कहते। वे सत्य और परम सत्ता को किसी मत-विशेष में बांधना नहीं चाहते। "प्रेमाभिलाष की प्रेरणा से प्रेमी भक्त उस अखंड ज्योतिरूप की किसी न किसी कला से दर्शन के लिए सृष्टि का कोना-कोना झकांता है, प्रत्येक मत और सिद्धान्त की ओर आंख उठाता है और सर्वत्र जिधर देखता है उधर उसका कुछ न कुछ आभास पाता है। यही उदार प्रवृत्ति सब सच्चे भक्तों की रही है। जायसी की उपासना 'माधुर्य भाव से, प्रेमी और प्रिय के भाव से है। उनका प्रियतम संसार के परदे के भीतर छिपा हुआ है। जहां जिस रूप में उसका आभास कोई दिखाता है वहां उसी रूप में देख वे गद्गद होते हैं। वे उसे पूर्णतया ज्ञेय या 'प्रमेय' नहीं मानते। उन्हें यही दिखाई पड़ता है कि प्रत्येक मत अपनी पहुँच के अनुसार, अपने मार्ग के अनुसार उसका कुछ अंशतः वर्णन करता है। किसी सिद्धान्त विशेष का यह मत या आग्रह कि ईश्वर ऐसा ही है भ्रम है। जायसी कहते हैं–

"सुनि हस्ती कर नाव अंधरन टोवा धाइ कै।
जेइ टोवा जेइ ठांव मुहम्मद सो तैसे कहै ॥"

'एकांग दस्सिनों' (एकांगदर्शियों) का यह दृष्टान्त सबसे पहले बुद्ध ने दिया था। इसको जायसी ने बड़ी मार्मिकता से अपनी उदार मनोवृति की व्यंजना के लिए लिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मत में सत्य का कुछ न कुछ अंश रहता है।"[3]

इसी कारण जायसी 'मुहम्मद' के मत को श्रेष्ठ मानते हुए भी 'विधना के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं। वे अखरावट में किसी विशिष्ट सिद्धान्तवाद

१–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२०।
२–वही, पृ० ३१५।
३–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० १५६–५७।

में बंधना नहीं चाहते। अपनी उदार और सारग्रहिणी बुद्धि के फलस्वरूप योग, उपनिषद्, अद्वैतवाद, भक्ति, इस्लामी एकेश्वरवाद आदि से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। उनके लिए वे सभी तत्व ग्राह्य हैं जो प्रेम की पीर जगाने में समर्थ हैं। अलग-अलग पंथों की अनेक भावनायें, अनेक विचारावलियाँ, अनेक सूक्तियाँ, जायसी की धर्म-साधना में मिलकर इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत), योग, (हठ-योग चक्रभेद और आनन्दवाद) और इस्लामी–सूफी सिद्धान्तों का समन्वय जायसी की अपनी विशेषता है।[१] सच्चे साधक को इन्द्रियोपभोग से ऊपर उठना आवश्यक है। साधना के मार्ग में 'नारद' तो पथ-भ्रष्ट करने के लिये हैं ही, चंचल 'मन'[२], भी एक प्रबल शत्रु है, इसका नियन्त्रण साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अखरावट में साधना-पंथ के कतिपय रूपक (घी-रूपक, घन दरपन-रूपक और जोलाहा-कर्म-रूपक) भी नाथ-पंथी साधकों की शैली के ही अनुरूप दिए गए हैं–

(क्ष) घी रूपक :

मा-मन मथन करै तन खीरू। दुहै सोइ जो आपु अहीरू॥
पांचौ भूत आतमहि मारैं। गरब दरब करसी कै जारैं॥
मन माठा-सम अस कै धोवै। तन खैला तेहि माहं बिलोवै॥
जपहु बुद्धि कै दुइ सन फेरहु। दही चूर अस हिंया अभेरहु॥
पछवां कढुई कैसन्ह फेरहु। ओहि जौति महं जोति अभेरहु॥
जस अन्तपट साढ़ी फूटै। निरमल होइ मया सब टूटै॥
मखनमूल उठै लेइ जोती। समुद माहं जस उलटै कोती॥
जस घिउ होइ जराइ कै, तस जिउ निरमल होइ।
महै महेरा दूरि करि, भोग करै सुख सोइ॥[३]

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी प्रकार के 'घृत रूपक' की साधना का वर्णन किया है—

"सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जो हरि कृपा हृदयं बस आई॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पिन्हाई॥

१–जायसी : डा० रामरतन भटनागर, पृ० १७७

२–'चंचलं' हि मनः कृष्ण प्रमथि बलवद्दृढम्
तस्माहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्'
'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च युज्यते।' श्री मद्भागवद्गीता।

३–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२४-२५।

"चित्ररेखा" में भी जायसी ने महदी या महदीं गुरु का उल्लेख किया है—

महदी गुरू शेख बुरहान् ।" चित्ररेखा, पृ० ७४।१

"पा पाएउ महदी गुरु मीठा। मिला पंथमहं दरसन दीठा ॥" (छं० २७)

चित्ररेखा की नवोपलब्धि से जायसी–विषयक नवीन तथ्यों की उपलब्धि होता है। "जायसी के गुरु कौन थे ?" इस विषय को लेकर हिन्दी के अनेक विद्वानों ने वड़ी दूर की कौड़ी लाने के प्रयत्न किये हैं। चित्ररेखा से यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है कि जायसी के वास्तविक गुरु निःसंदिग्ध रूप से कालपी वाले मुहीउद्दीन–महदीं थे ।[1]

महदी गुरू सेख बुरहानू । कालपि नगर तेहिंक अस्थानू ॥
मक्कइ चौथहि कहि जस लागा। जिन्ह वै हुए पाप तिन्ह भागा ॥
सो मोरा गुरू तिन्ह हौं चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला ॥
पेम पियाला पंथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा ॥[2]

हमें चित्ररेखा के प्रस्तुत उद्धरण से अत्यन्त स्पष्ट रूप से जायसी के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित विवाद का पूर्ण समाधान मिल जाता है ।

"यह अवश्य सत्य है कि जायसी ने सैयद अशरफ, जहाँगीर की पीर-परम्परा का भी उल्लेख किया है। यह फैजाबाद जिले में कछोछा के चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी महात्मा थे। ये आठवीं शती हिजरी के अन्त और नवमी शती के आरम्भ में जायसी से बहुत पहिले हुए थे।[3] जायसी उनके घराने के बड़े श्रद्धालु भक्त थे।"

जायसी के ग्रन्थों से स्पष्ट है कि उनके हृदय में सैयद अशरफ जहाँगार के प्रति अपार श्रद्धा थी। पदमावत,[4] अखरावट,[5] आखिरी कलाम[6] और चित्ररेखा[7] चारो ग्रंथों में उन्होंने उनका उल्लेख किया है।

ए० जी० शिरेफ[8] ने अशरफ जहाँगीर चिश्ती को शेख निजामुद्दीन औलिया

१–चित्ररेखा-:एक बोल, आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १०।

२–चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।

३–"सैयद अशरफ की मृत्यु के विषय में दो सन् दिये गये हें। एक ८४० हि० अखबार उल अख्यार। राजपूताना गजेटियर के अनुसार उनकी मृत्यु ८०८ हि० में हुई।

४–सैयद असरफ पीर पियारा। पदमावत, स्तुति खंड, १।१८।

५–'उधरित असरफ औ जहंगीरू।' अखरावट, दो० २६।

६–आखिरी कलाम, ६।१०२ ७–चित्ररेखा ।

८–पदमावत का अंग्रेजी अनुवाद : ए० जी० शिरेफ, पृ० १७।

की चौथी पीढ़ी में और शेख अलाउल हक का शिष्य कहा है। राजपूताना गजेटियर के अनुसार सैयद अशरफ की मृत्यु कछोछा नामक स्थान पर हुई थी, जहाँ उनकी समाधि है। कहा जाता है कि उन्होंने जौनपुर को ही अपना स्थान बनाया था।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने एक और भ्रम की उद्‌भावना की है। उनका कथन है कि जायसी के गुरु शेख मुबारक थे। उन्होंने प्रमाण दिया है कि अन्त:साक्ष्य में 'हौं उन्हके घरबाँद' कहा गया है। शेख मुबारक के पश्चात् शेख कमाल का उल्लेख है। इस प्रकार यदि ऐसा ही अर्थ लेना हो, तो शेख कमाल जायसी के गुरु हुए, मुबारक नहीं।

कहा जा चुका है कि सैयद अशरफ जायसी के प्यारे पीर थे। जायसी ने गुरु को खेवक और पीर को पतवरिया या 'करिया' कहा है।

अपने गुरु के विषय में उन्होंने लिखा है–

'पा पाएउं महदी गुरु मीठा। मिला पंथ महं दरसन दीठा॥' अखरावट।

'गुरु मोहदी खेवक में सेवा। चलै उताइल जिन्हकर खेवा॥

अगुआ भएउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहिं दीन्ह गियानू॥

पदमावत, १।२०

'अखरावट' वाले पाठ का सीधा अर्थ है कि गुरु महदी अर्थात् ईश्वर का संदेश-वाहक है और उस खेवक जीवन-नैया के खेने वाले का मैं सेवक हूँ। उस सेवक का नाम 'शेख बुरहान' है और मैंने कालपी को गुरुस्थान बनाया है (अर्थात् कालपी नगर मेरा गुरु-स्थान है)। डा० रामखेलावन जी का कथन है कि यहाँ गुरु को महदी कहा गया है और इसमें न तो मोहिउद्दीन चिश्ती के संकेत हैं और न पीर सैयद मुहम्मद से तात्पर्य। जायसी के अगुआ अर्थात् पथ-प्रदर्शक हैं शेख बुरहान।[1] 'अखरावट' और 'चित्ररेखा' में यह कथन स्पष्ट है–

'नाव पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानू॥ अखरावट।

महदी गुरू सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू॥ चित्ररेखा।

"बदाऊनी के अनुसार बुरहान बारी के मियाँ अलहदाद के सम्पर्क में रहे, जो मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे। प्रो० अस्करी को फुलवारी शरीफ के खानकाह में अरिल्ल छन्द में कुछ रचनायें मिली हैं। बदाऊनी को इनकी रचनाओं में ईश्वर-प्रेम, उपदेशादेश, वैराग्य, सूफीमत-प्रतिपादन और ईश्वर-प्राप्ति के लिए आत्मा की व्याकुलता का वर्णन मिला था।[2] सन् ९६७ हिजरी में बदाऊनी ने इनका साक्षात्कार किया था और उसके साक्ष्यानुसार उनकी

१–डा० रामखेलावन पाण्डेय, हिन्दी अनुशीलन, पृ० ३७२।

२–बदाऊनी, भाग ३, पृ० ६२, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० ३७२।

मृत्यु सन् ९७० हि० में (१५६२–६३ ई० में) प्राय: सौ वर्षों की आयु में हुई।[1] इस प्रकार उनका जन्म ८७० हिजरी के आसपास ठहरता है। उन्होंने कालपी में अपना निवास-स्थान बनवाया था। मृत्यु के अनन्तर वहीं इन्हें समाधि दे दी गई। आइने-अकबरी में भी इन्हें कालपी-निवासी कहा गया है।[2] 'तबकाते अकबरी में इन्हें 'काली वाल' कहा गया है जो लिपिकार का प्रमाद है। इनका पूरा नाम था शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान। डा० रामखेलावन पांडेय ने ग्रेंड कार्ड लाइन पर 'सैयदराजे' नामक स्टेशन के समीपवर्ती ग्राम में किसी सैयद रजा की छोटी-सी दरगाह का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि सैयद रजा या राजू से जायसी सम्बद्ध थे। डाक्टर साहब को कोई ऐसी जनश्रुति भी उस ग्राम में मिली है उनका कथन है कि 'जायसी का जन्मस्थान जायस नहीं है। सासाराम में उनका जन्म हुआ था और वे शेरशाह के बाल सहचर थे। इनका वास्तविक नाम था मियां मुहम्मद। पीछे चलकर शेख की उपाधि से विभूषित हुए। हाजी शेख के एक शिष्य का नाम था शेख मियां मुहम्मद। 'वह हुसेनशाह जौनपुरी का प्रियपात्र था, शेख हाजी की इस व्यक्ति पर पुत्रवत् ममता थी। शेख हाजी की मृत्यु ९७९ हिजरी में हुई। बदाऊनी और मियां मुहम्मद का साक्षात्कार बारी में ९७४ हिजरी में हुआ था। बदाऊनी ने शेख मुहम्मद की कवित्व शक्ति, प्रतिभा और धार्मिक प्रवृत्ति का सविस्तार उल्लेख किया है। शेख हाजी के परिवार में इनके विवाह होने की संभावना है और 'तहां दिवस दस पहुने आएउ' में इसके संकेत देखे जा सकते हैं। शेख मुबारक के पाठान्तर रूप में मुहम्मद भी मिला है। इस प्रकार शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद में अभिन्नता मिलती है। जायसी की मृत्यु ९४९ हिजरी में नहीं हुई। सन् ९७४ हिजरी तक उनका जीवित रहना संभव है। जायसी ने दीर्घायु प्राप्त की थी और अत्यन्त वृद्धावस्था में उनकी मृत्यु हुई।[4]

शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद जायसी की अभिन्नता यदि ठीक होती तो बहुत ही उत्तम होता, पर यह बादरायण सम्बन्ध ठीक नहीं है। पहली बात तो यह कि पांडेय जी के ही शब्दों में बदाऊनी के बहुत से लेख प्रामाणिक नहीं है दूसरे जायसी ने ९४० हि० में पदमावत लिखकर ख्याति प्राप्त की थी। यदि अल्बदायूनी ९७४ हि० में शेखमियां मुहम्मद से मिला था और वह भी 'बारी' में तो उसने पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम आदि ग्रंथों का नाम क्यों नहीं लिखा? यदि मियां मुहम्मद ही मलिक मुहम्मद जायसी होते तो अल्बदायूनी अवश्य ही उनके 'पदमावत' का उल्लेख करता, शेरशाह द्वारा प्राप्त उनकी प्रतिष्ठा का भी उल्लेख करता। वास्तविकता यह है कि ये कोई दूसरे शेख मियां हैं जायसी नहीं। वे शेर-

१–हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक २–वही,
३–वही, पृ० ३७७ ४–वही, पृ० ३७७-७८

शाह के 'बाल-सहचर' थे, यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती जो कवि शेरशाह को बुजुर्ग की तरह आशीर्वाद दे (दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहिं जुग राज, बादशाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज) सकता हो, जो शेरशाह की प्रशंसा के पुल बांध सकता हो, और यदि वह उसका बाल-सहचर होता, तो इस बात का उल्लेख कवि ने अवश्यमेव किया होता। जहाँ तक 'शेख हाजी के परिवार में जायसी के विवाह होने की बात है, उसका कोई भी प्रमाण नहीं है। वे सासाराम से ही जायस में दस दिन के लिए पाहुन बनकर आए यह बात भी निराधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिना सुदृढ़ प्रमाणों के शेख मियां और मलिक मियां की अभिन्नता ठीक नहीं है। जायसी सासाराम से आए थे और शेरशाह के बाल्य-सहचर थे वाली बातें प्रमाणों और आधारों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हैं। जायसी की शादी की 'शेख हाजी' के परिवार में संभावना वाली बात भी संभावना ही है। और जब अल्बदायूनी से मिलने वाले शेख मियां और मलिक मुहम्मद दो व्यक्ति थे, दोनों में अभिन्नता नहीं है, तो ९७४ हि० में जायसी के वर्तमान होने की बात भी आधारहीन हो जाती है।[१]

इस प्रकार डा० रामखेलावन पांडेय जी के मत तर्कहीन, संभावनाओं पर आधारित होने के कारण स्वीकार्य नहीं हैं।

१—हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ३७३।

३

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा

गार्साद तासी,[१] पं० रामचन्द्र शुक्ल,[२] पं० चन्द्रबली पाण्डेय,[३] सैयद आले मोहम्मद,[४] सैयद कल्बे मुस्तफा,[५] प्रो० हसन अस्करी[६] प्रभृति विद्वानों की शोधों, अन्यान्य शोधकों,[७] खोज रिपोर्टों[८] एवं सूचनाओं के साक्ष्य पर हमें जायसी की निम्न-लिखित कृतियों के नाम मिलते हैं–

१–पदमावत	२–अखरावट
३–सखरावत	४–चंपावत
५–इतरावत	६–मटकावत
७–चित्रावत	८–खुर्वानामा
९–मोराईनामा	१०–मुकहरानामा
११–मुखरानामा	१२–पोस्तीनामा
१३–होलीनामा	१४–आखिरी कलाम[९]

१–इस्त्वार दी ल लितौरैत्यूर ऐंदूई ऐं ऐंदुस्तानी–गार्साद तासी, भाग २, पृ० ९८, १८७० ।

२–जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा, द्वि० सं० १९३५ ।

३–ना० प्र० पत्रिका (पं० चन्द्रबली पाण्डेय का लेख) भाग १४ ।

४–ना० प्र० पत्रिका (श्री सैयद आले मोहम्मद), वर्ष ४५, १९९७, पृ० ५७ ।

५–मलिक मुहम्मद जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ८३ और १६४–६५–६६ ।

६–जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, पृ० १२ ।

७–ना० प्र० (सभा) पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१८ ।

८–ना० प्र० सभा, खोज रिपोर्ट, १९४७ ।

९–ग्रन्थ संख्या १ 'पदमावत' से लेकर संख्या १४ आखिरी कलाम तक चौदह ग्रन्थों के नाम श्री सैयद आले मोहम्मद ने गिनाए हैं । उनके अनुसार 'जायसीकृत यही १४ ग्रन्थ हैं । देखिए, ना० प्र० प०, वर्ष १९९७, पृ० ५७ ।

१५–घनावत[1]　　१६–सोरठ[2]
१७–जपजी[3]　　१८–मैनावत[4]
१९–मेखरावटनामा[5]　　२०–कहारनामा[6]
२१–स्फुट कवितायें[7]　　२२–लहतावत[8]
२३–सकरानामा[9]　　२४–मसला[10] या मसलानामा

पदमावत के आज अनेक प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल की जायसी ग्रन्थावली (१९३५ ई०) के अन्तर्गत पदमावत, 'अखरावट' और आखिरी कलाम मुद्रित हुए हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त को जायसी का नया ग्रन्थ मिला था, जिसे बाईस छन्दों में होने के कारण 'महरी बाईसी' नाम से उन्होंने अपने (जा० ग्रं० के) संस्करण में प्रकाशित किया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम कहरानामा या 'कहरानामा है, जैसा कि इसकी कई हस्तलिखित प्रतियों से अब ज्ञात हो गया है। रामपुर राजकीय पुस्तकालय की पदमावत की प्रति के अन्त में 'कहारानामा' की भी अति सुलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। १९५९ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थी ने दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'चित्ररेखा' का सम्पादन प्रकाशन किया था। प्रस्तुत विद्यार्थी को 'मसला' की भा एक खण्डित प्रति मिली है, प्रस्तुत प्रबन्ध के 'परिशिष्ट' में 'मसला' को टंकित रूप में दिया गया है। कहरानामा या 'कहारनामा' ही आले मुहम्मद की सूची का 'मुकहरानामा' और 'मुखरानामा' ज्ञात होता है। 'पोस्तीनामा' के विषय में जनश्रुति है कि जायसी के गुरु स्वयं अमल करते थे। जायसी ने उन्हें ही दृष्टि में रखकर यह ग्रन्थ लिखा था। इसमें उन्होंने अफीमचियों पर व्यंग किया था। जब जायसी ने इसे अपने गुरु को सुनाया, तो वे क्रोधित हो गए। उन्होंने शाप दिया कि तुम्हारे सातो बच्चे छत गिरने से मर जायेंगे। पश्चात् पीर ने इतना और कहा कि लड़के तो नहीं बच सकते, पर

१–इस्त्वार दी ल लितौरैत्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी, गार्सां द तासी, पृ० ६८।
२–वही, पृ० ६८।　　३–वही, पृ० ६९।
४–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा पं० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० १६।
५–ना० प्र० प०, भाग १४, पृ० ४१८।　　६–वही, पृ० ४१८।
७–द्रष्टव्य 'मलिक मुहम्मद जायसी' : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० १६४।
८–जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, पृ० १२।
९–वही।
१०–ना० प्र० सभा, खोज-रिपोर्ट १९४७ तथा ना० प्र० सभा, हस्तलिपि ग्रन्थों की सूची में म० मु० जायसी कृत 'अखरावट' और 'मसला' पृ० २५–२६ (हस्तलिखित प्रति)

तुम्हारा नाम तुम्हारे १४ ग्रन्थों से चलेगा ।[१] अंत में ऐसा ही हुआ। ये चौदह ग्रन्थ ऊपर दी हुई सूची के प्रथम चौदह ग्रन्थ हैं । 'पोस्तीनामा' की कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं, जैसें–

'जब पुस्ती मां लागै पात । पुस्ती बूदे नौ-नौ हात ।।
जब पुस्ती मां लागै फूल । तब पुस्ती मटकावै कूल ।।'[२]

पं० रामचन्द्र शुक्ल[३] ने जायस में प्राप्त जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि जायसी ने 'नैनावत' नाम की एक प्रेम कहानी भी लिखी थी । सम्भव है 'नैनावत' में रानी नैनावती की प्रेम कहानी लिखी गई है ।

जायसी के पदमावत में दोहा १८३–१८६ तक का वर्णन अलग कर दिया जाय, तो वह 'होलीनामा' के ढंग की कृति हो जाती है । गार्सां द तासी ने लिखा है कि सोरठ और जपजी की प्रतियाँ बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी में हैं और घनावत की प्रति डा० स्प्रेंगर के पास है । जायसी की रचनाओं के विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[५] का कथन उल्लेखनीय है । सम्भव है आगे की खोज में इन ग्रन्थों पर कुछ प्रकाश पड़े । वस्तुतः उस युग की यह पद्धति थी कि महाकवि मुख्य ग्रन्थ के अतिरिक्त लोक में प्रचलित विविध काव्य-रूपों पर भी प्रायः कुछ लिखा करते थे । कबीर कृत कहरानामा और वसंत एवं चांचर पर फुटकर कविता बीजक में संगृहीत हैं । तुलसी के बरवै रामायण, नहछू और मंगल काव्य साहित्य के लोक रूपों की पूर्ति के रूप में लिखे गये थे । 'मुसलमानी धर्म के विविध अंगों पर काव्य लिखने की परम्परा जायसी से शुरू होकर बाद तक चलती रही । आखिरी कलाम में जायसी ने कयामत के दिन का चित्र स्वधर्मानुयायियों के लिये प्रस्तुत किया था । रीवां के जहूर अलीशाह ने तवल्लुदनामा नामक अवधी काव्य में मुहम्मद साहब का जीवन चरित्र लिखा । अब्दुल समद के किसी भागलपुरी शिष्य ने सं० १८१० में मेराजनामा नामक अवधी काव्य में स्वर्ग का पूरा वर्णन किया है । किन्तु काव्य-गुणों की दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्व नहीं है ।

अखरावट

अभी तक मुख्य रूप से 'अखरावट' के दो सम्पादित रूप हिन्दी-जगत के समक्ष आए हैं–

१–ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, वर्ष ४५ पृ० ४७ ।
२–म० मु० जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० १६४ ।
३–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, भूमिका, पृ० १६ ।
४–इस्त्वार दी ल लितरैत्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी, गार्सांदतासी, पृ० ६८–६६ ।
५–डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ३२ ।

(१) 'जायसी ग्रन्थावली' के अन्तर्गत संपादित (पं रामचन्द्र शुक्ल द्वारा) अखरावट : सं० १९८१ वि० ।

(२) जायसी ग्रन्थावली के अन्तर्गत सम्पादित-प्रकाशित (डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा) सं २००८ वि ।

इन दोनों सँपादकों के विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त[१] ने लिखा है— "इस ग्रन्थावली में सम्मिलित 'अखरावट' का पाठ अन्य प्रतियों के अभाव में पहिले पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के अनुसार रखा गया था, किन्तु संयोग से 'अखरावट' की छपाई प्रारम्भ हो जाने पर उसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्रान्तीय सेक्रेटरियट के अनुवाद- विभाग के विशेष कार्याधिकारी श्री गोपालचन्द्र सिंह जी से मिल गई । इस प्रति का पाठ शुक्लजी द्वारा दिये गये पाठ की अपेक्षा अधिक संतोषजनक प्रतीत हुआ । किन्तु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठांतर मात्र दे दिया जाय ।"

शुक्लजी ने यह नहीं लिखा है कि किस मूल प्रति के आधार पर उन्होंने 'अखरावट' का संपादन किया । डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी शुक्ल जा द्वारा दिये गये पाठ को ही अपने संपादन में स्थान दिया है । उन्होंने श्री गोपाल चन्द्र सिंह द्वारा प्रदत्त 'अखरावट' की एक प्राचीन प्रति के पाठान्तर भी आठ पृष्ठों में दिये हैं ।

प्रो० श्री हसन अस्करी[२] के प्रयत्न से विहार में मनेर शरीफ के खानकाह पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखित अखरावट की एक प्रति मिली है । उनके मत से यह प्रति सत्रहवीं शती में शाहजहां के समय में लिखी गई थी ।

१९५९ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थी को नागरीप्रचारिणी सभा, काशी में 'अखरावट' की एक प्रति नागरी लिपि में लिखी हुई मिली । यह प्रति प्राचीन है और किसी 'शीतलदास' जी द्वारा नागरी लिपि में लिखित है । अखरावट का नाम उन्होंने 'अखरावती' दिया है और इसकी पुष्पिका में लिखा है– "लिषा है सीतल-दास महम्मद कृत अखरावती ग्रन्थ केर एह नाम ।"[३]

१–जायसी ग्रन्थावली : डा० माताप्रसाद गुप्त, वक्तव्य, पृ० १ ।

२–द्रष्टव्य–जर्नल आफ विहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, १९५३ (प्रो० अस्करी ए न्युली डिसकवर्ड वाल्यूम आफ अवधी वर्क्स इनक्लूडिंग पदमावत एण्ड अखरावट आफ म० मु० जायसी) ।

३–ना०प्र० सभा, काशी, हस्तलेख–विभाग, अखरावट और मसला की प्रति, पृ० २५ ।

जायस क्षेत्र के सेमरौता जू० हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास एक हस्तलिखित 'जायसी ग्रन्थावली' है। इसमें नागराक्षरों में लिखित 'अखरावट' की भी एक प्रति है। जायस के ही मौलवी 'वसी नकवी' के पास भी एक 'जा० ग्र०' है। इसमें भी 'अखरावट' की नागराक्षरों में लिखित एक प्रति है।

डा० कमल कुल श्रेष्ठ की निराधार कल्पना

अखरावट जायसी कृत एक सिद्धान्त प्रधान ग्रन्थ है। पं० रामचन्द्र शुक्ल और डा० माताप्रसाद गुप्त के सम्पादनों के अनुसार इस काव्य में कुल ५४ दोहे, ५४ सोरठे और ३७१ अर्द्धालिया हैं। इसमें दोहा, चौपाई और सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है। एक दोहा पुनः एक सोरठा और पुनः ७ अर्द्धालियों के क्रम का निर्वाह आदि से लेकर अन्त तक किया गया है। विषय की दृष्टि से इस काव्य को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में बांटा जा सकता है–(१) पूर्वार्द्ध-प्रारम्भ से लेकर अन्तिमाक्षर 'न' (ज्ञ) के पश्चात् और (२) उत्तरार्द्ध–गुरु-चेला संवाद–जो ४४वें सोरठे के पश्चात् प्रारम्भ होता है और अंत तक चलता है। गुरु-चेला संवाद के विषय में डा० कमलकुलश्रेष्ठ,[१] का अनुमान है कि 'संभव है कि यह जायसी की कहीं पर अलग स्फुट रचना किसी को मिली हो, उसने बाद में इसे पद्मावत या 'आखिरी' कलाम' में न जम सकने के कारण इसमें जोड़ दिया हो। "कई अन्य लोग[२] भी इस मत का समर्थन करते हैं। परन्तु अभी तक अखरावट की जो भी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं, उनसे स्पष्ट है कि यह बात निराधार एवं कोरी कल्पना मात्र है।

अखरावट का रचनाकाल

जायसी ने इस ग्रन्थ में रचना से सम्बद्ध तिथि-निर्देश नहीं किया है। सैयद कल्बे मुस्तफा का कथन है कि यह जायसी की अन्तिम रचना है–अल्फाज का इन्तिखाब" जुबान की खानिगी, वन्दिश की चुस्ती पता देती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौर आखिर का नतीजा है। इसके यह करायन हैं कि अखरावट पदमावत के बाद तशनीफ हुई है।"[३] कुछ लोग इन्हीं के मत का समर्थन करते हुए तर्क उपस्थित करते हैं कि 'इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुर्य भी अधिक है और भाषा भी अधिक सुस्थिर और व्यवस्थित है। कवि ने

१–म०मु० जायसी : डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० ४९।
२–सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, पृ० १३८।
३–मलिक मुहम्मद जायसी : सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० १६०।

एक नवीन छन्द सोरठे का भी सफल प्रयोग किया है। कुछ सोरठों के चारो चरणों 'की' तुकों में साम्य है, जिससे यह छन्द विशेष श्रुतिमधुर बन गए हैं। "प्रायः यह भी देखा जाता है कि कवि अपनी वैयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण अन्त में ही करते हैं, यद्यपि उनका यत्र-तत्र समावेश तो उनकी समस्त रचनाओं में व्याप्त रहता है। इसी प्रकार की रचना 'अखरावट' है। जनश्रुति के आधार पर शैली की प्रौढ़ता एवं विशदता के समर्थन से तथा अध्यात्मिकता के विशेष झुकाव के कारण हम[१] (डा० जयदेव) इस काव्य को पदमावत के बाद की ही रचना मानते हैं। ए० जी० शिरेफ[२] ने लिखा है कि अखरावट की रचना अमेठी के राजा के कहने पर हुई थी। राजा का जायसी से परिचय पदमावत के द्वारा हुआ था। अतः अखरावट पदमावत के बाद की ही रचना ठहरती है।"

ध्यानपूर्वक विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि अखरावट की रचना-तिथि से सम्बद्ध ऊपर दी हुई समस्त बातें पुष्ट प्रमाणों से रहित एवं अनुमानमात्र हैं। 'जनश्रुति' का कोई प्रमाण नहीं मिलता। "शैली की प्रौढ़ता एवं विशदता" की दृष्टि से पदमावत को अखरावट से हीन कोटि का मानना समीचीन नहीं है। 'वैयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण कवि, अन्त में ही 'नहीं, अपितु कभी भी कर सकते हैं। इस सिलसिले में अखरावट की निम्नलिखित चौपाई भी उद्धृत की जाती है—"कहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी।।"[३] और अर्थ लगाया गया है कि "वह कौन सी कहानी है जिसको सुन कर ज्ञानी लोग भी परम प्रिय के प्रेम में ध्यानावस्थित हो जाते हैं। निश्चय ही जायसी की वह प्रेम कहानी 'पदमावत' है। इस प्रकार 'अखरावट' पदमावत के पीछे की रचना है।[४] "जायसी की प्रस्तुत चौपाई के 'प्रेम कहानी' का पदमावत से संबन्ध जोड़ना बादरायण सम्बन्ध से भी महान् आकाश कुसुमत्व की बात है। वस्तुतः 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' का सम्बन्ध और अर्थ इन्हीं पंक्तियों के पूर्व और पश्चात् मिल जाता है। यह 'प्रेम कहानी' तो वहीं पर दी गई है—

तसमा दुइ एक साथ, मुहम्मद एको जानिए।।
कहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी।।
चेलैं समुझि गुरू सो पूछा। देखहु निरखि भरा औ छूंछा।।
कैसे आपु बीच सो मेटे। कैसे आप हेराइ सो भेटै।।

१—सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, १३५—१३६।
२—पदुमावती, भूमिका, पृ० ५।
३— जा०ग्र०, ना० प्र० सभा, ।
४—सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव, पृ० १३६

जौ लहि आपु न जीयत मरई। हंसै दूरि सौं बात न करई ॥
सो तौ आपु हेरान है, तन मन जीवन खोइ।
चेला पूछै गुरू कहं तेहि कस अगरे होइ ॥"
नव रस गुरु पहं भीज, गुरु परसाद सो पिउ मिलै ॥४६॥

वस्तुत: 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' की बात वहीं पर और स्पष्ट कर दी गई है—

कहा न अहै अकथ भा रहई। बिना विचार समुझि का परई ॥
सो हं सो हं बसि जो करई। जो बूझै सो धीरज धरई ॥
कहै प्रेम कै बरनि कहानी। जो बूझै को सिद्ध गियानी ॥[1]

स्पष्ट है कि 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' का अर्थ 'सोहं' वाली कहानी से है, जीव और ब्रह्म के प्रेम-विरह की कहानी से है जिसे ऊपर उद्धृत पंक्तियों में जायसी ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है।

प्रो० सैयद हसन अस्करी[2] को मनेर शरीफ से कई ग्रन्थों के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। इन प्रतियों के विषय में लिखते हुए उन्होंने अखरावट के रचनाकाल का भी उल्लेख किया है। 'अखरावट' की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका में 'जुम्मा ८ जुल्काद, ९११ हिजरी' का उल्लेख है। विद्वानों का विचार है कि सम्भवत: जिस मूल प्रति से इस प्रति की नकल की गई थी, उसकी पुष्पिका में यह तिथि लिखी हुई थी और जिसे प्रतिलिपिकार ने ज्यों का त्यों उतार दिया है। इससे अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी या इसके आसपास प्रमाणित होता है।[3] अखरावट जायसी की प्रारम्भिक या प्रथम रचना है। "जिस भूकम्प का उल्लेख जायसी ने 'आखिरी कलाम' में किया है और जिसे अनेक विद्वानों ने जायसी के जन्म-समय-घटित मान लिया है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय जायसी का कवि-जीवन प्रारम्भ हुआ था, उसी समय वह भूचाल आया होगा। अखरावट की पुष्पिका में लिखित ९११ हि० और ९१०–११ में घटित भूकम्प के उल्लेख में अद्भुत साम्य है और यह आकस्मिक नहीं प्रतीत होता। जायसी के इस वर्णन से यह बात प्रमाणित होती है कि अखरावट ९११ हिजरी में लिखा गया।[4]

१–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, अखरावट, पृ० ३३८, ५३।५-६-७।
२–जे० बी० आर० एस०, भाग ३९। ३–वही।
४–क–'जायसी की जन्म-तिथि, अध्याय १।
ख–मुतखबुत्तवारीख (अल्बदायूनी) रेंकिंग कृत अनुवाद, भा० १, पृ० ४२१ (३ सफर ९११ हिजरी को भूकम्प हुआ था)।
ग–बाबरनामा–इलियट, भा० ४, पृ० २१८।

कथावस्तु

अखरावट का प्रारम्भ जायसी ने सृष्टि की आदि शून्यावस्था से किया है, जब न गगन था और न धरती, न सूर्य था और न चन्द्र। ऐसे अन्धकूप में करतार ने सर्वप्रथम मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति उत्पन्न की।[१] उसी आदि गोसाई ने ही समस्त संसार की सृष्टि लीलार्थ की है।[२] इस लीला-ज्ञान की कथा को कवि ने 'ककहरा' रूप में कहा है। कवि ने अपनी अपार नम्रता भी प्रदर्शित की है–"पंडित पढ़ अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि ॥" जब सर्वत्र शून्य-शून्य था, नाम, स्थान, सुर, शब्द, पाप, पुण्यादि कुछ नहीं था, ईश्वर की कलाएं उसमें ही लीन थीं, सृष्टि रूप में उनका विस्तार नहीं हुआ था–एक अल्लाह तत्व स्वयं में समाया हुआ था–इस संसार रूपी वृक्ष का वज्र के समान स्थिर बीज मात्र था, परन्तु उस बीज का न रंग था और न रूप।[३] तब ईश्वर में मुहम्मद साहब की प्रीति के कारण सृष्टि की सर्जना की। स्वर्ग पिता हुआ, धरती माता हुई। आरम्भ में ही दो विभाग (द्वन्द्व) हुए और सृष्टि का क्रम आगे बढ़ चला। पुन: उसने इबलीस (शैतान) को बनाया। एक आत्मतत्व या परमात्म तत्व अठारह सहस्र योनियों में प्रकट हुआ। पहिले ही उसने चार फिरिश्ते रचे। इन चारो ने चार तत्वों को ईश्वर की आज्ञानुसार मिलाकर शरीर बनाया। उसमें पंच भूतात्मक इन्द्रियां रख दीं। उस शरीर में नव द्वार बनाया और दशम द्वार को मूँद कर कपाट दे दिया। अभी तक आदम और करतार में अभिन्नता थी जैसे माता के गर्भ में बच्चा रहता है, किन्तु उसे जग में मृत्यु ने ला दिया। इसी से तो प्रियतम से बिछुड़ते ही, इस संसार में आते ही, बच्चा रोने लगता है। स्वर्ग में ही आदम की उत्पत्ति हुई। आज्ञा हुई कि सब लोग मिलकर प्रणाम करो, पूजा भी करो। नारद (शैतान) के अतिरिक्त सबों ने नमन किया। ईश्वर ने नारद को अनन्य भक्त समझ कर दशम द्वार का रक्षक नियत किया। पश्चात् आदम-हौवा की सर्जना हुई। उन्हें स्वर्ग में भेजा गया। शैतान के बहकावे में आकर आदम ने गेहूँ खा लिया—ईश्वर ने इसे खाने का निषेध किया था, अत: वे स्वर्ग से निकाल दिये गए। वे दोनों बिछोह में तड़पते रहे। अन्तत: ईश्वर की कृपा से दोनों मिले। उनसे सन्तानों की उत्पत्ति हुई। अपने-अपने धर्म वाले हिन्दू और तुरुक दोनों हुए।

दो पक्षों से युक्त शरीर की रचना, शरीर में ही 'पुले सरात', स्वर्ग-नरक,

---

१–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०२, दोहा १।

२–जा०, ग्रं० ना० प्र० सभा, पृ० ३०२, १।१ चौपाई।

३–वही, अखरावट।

सूर्य-चन्द्र आदि की रचना, 'जो कछु पिंडे सोइ ब्रह्मण्डे' की बात, मन की चंचलता का वर्णन, 'देखहु परम हंस परछाहीं' की बात, 'काया-नगरी' के अगम पंथों और चारि बसरे' का भेद, उसी के सात खण्डों में सात ग्रहों की परिकल्पना, अपनी ही भाँति सृष्टि की सर्जना करने वाले बड़े ठाकुर की प्रशस्ति, संसार की असारता और तप-साधना की बात, 'हम कहाँ से आये हैं और हमें कहाँ जाना है ?' के बाद गुरु की महत्ता की बात, इस्लाम की श्रेष्ठता, अपने गुरु मोहदी और उनकी परम्परा का गुणगान, हंस रूपक, शून्य निरूपण, घृत-रूपक एवं दीपक-रूपक के वर्णन, कबीर की प्रशंसा, 'गुरु-शिष्य संवाद-'रूप में अहंकार-विनाश, प्रेम-घृणा, तत्वों की स्थिति के प्रश्न एवं गुरु द्वारा स्पष्टीकरण, गुरु द्वारा ईश्वर के गौरव का गान इत्यादि के पश्चात् कवि कहता है कि यह गूढ़ बात बिना चिन्तन के समझ में नहीं आ सकती। जीव को चाहिये कि इस मिट्टी के शरीर को लेकर प्रेम का खेल खेल डाले, क्योंकि प्रेम-प्रभु प्रेम से ही प्राप्त होता है।

अखरावट के दार्शनिक : आध्यात्मिक विन्दु

१-सृष्टि-जायसी ने अखरावट के प्रारम्भ में सृष्टि के उद्भव और विकास की जो कथा दी है वह मूलतः इसलामी धर्मग्रन्थों और विश्वासों के आधार पर आधारित है। सृष्टि के आदि में जो महाशून्य था उसी से वर्तमान सृष्टि की रचना हुई। सर्वत्र शून्य-शून्य था, नाम, स्थान, सुर, शब्द, पाप-पुण्य आदि कुछ भी नहीं था। ईश्वर की भी कलायें ईश्वर में ही लीन थीं।[१] उस समय गगन, धरती, सुर्य, चन्द्र आदि कुछ भी नहीं था। ऐसे शून्य अन्धकार में ईश्वर ने सबसे पहले मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति उत्पन्न की—

> "गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
> ऐसइ अंधकूप महं रचत मुहम्मद नूर ॥"[२]

कुरान शरीफ एवं इस्लामी रवायतों (कथाओं) में यह कथा है कि जब कुछ नहीं था, तो केवल 'अल्लाह' था। सर्वत्र घोर अन्धकार था। उसने कहा— 'कुन्' (प्रकाश हो) और कहने के साथ ही प्रकाश हो गया। इस सृष्टि के मूल में आदि गोसाई की क्रीड़ा[३] (खेल) है। पुनः उसने ही अठारह सहस्र योनियों की रचना की। इस प्रकार उस आदि गोसाई की सत्ता इन अठारह सहस्र जीवकोटियों में प्रकट हुई है।[४] भारतीय साहित्य में भी इस संसार की कल्पना 'अश्वत्थ' के रूप

१-जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, अखरावट), पृ० ३०४।१।

२-वही, पृ० ३०३।

३-जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, पृ० ३०३, १।१।

४-वही-"रहा जो एक जल गुपुत समुन्दा। बरसा सहस अठारह बुन्दा ॥"

से की गई है। 'श्रीमद्भगवद्गीता[1]' और 'रामचरितमानस'[2] में भी सृष्टि-प्रसंग इसी रूप में वर्णित है। सो उस 'ठाकुर' ने एक बार ऐसा किया, पहले उसने नाम-रूप में मोहम्मद को रचा। उनकी ही प्रीति के कारण दुनिया पैदा की गई। उसी प्रेम-बीज से दो अंकुर निकले, एक श्वेत और दूसरा श्याम। श्वेत अंकुर से निकला पात धरती बना और श्यामांकुर वाला पात आकाश बन गया। पश्चात् इसी द्वैत के आधार पर सूरज-चांद, दिन-रात, पाप-पुण्य, सुख-दुख, आनन्द-संताप, नरक-बैकुण्ठ अच्छे-बुरे, झूठ-सत्य आदि की सृष्टि हुई[3]।

इवलीस : आदम : हौवा : फिरिश्ते : हिन्दू : तुर्क – इसके बाद उसने इबलीस[4] की रचना की, आदम[5] का निर्माण किया। चार फरिश्तों को बनाया, चार तत्व और पंचभूतात्मक इन्द्रियों से 'काया' की रचना की, उसमें नव द्वारों को बनाया, दसवें द्वार को मूंद करके कपाट दे दिया और फरिश्तों से कहा कि इसका सिजदा (नमन) करो। फरिश्तों ने नमन किये, किन्तु इबलीस ने नमन नहीं किया। अतः वह स्वर्ग से निकाल दिया गया। करतार ने इबलीस को दशम-द्वार का रक्षक बनाया[6]। इस प्रकार जिस इवलीस ने धर्म मार्ग से हटाकर पापी कर दिया, उसका और आदम का साथ हो गया। इसके बाद हौवा की रचना की गई और आदम-हौवा को स्वर्ग में विहार करने के लिये भेज दिया गया। इवलीस के बहकावे में आकर आदम ने गेहूँ खा लिया, जिसके खाने का निषेध ईश्वर ने कर रखा था और इस अपराध के कारण उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया गया[7]। वे बहुत पछताए, रोए और अन्त में उन्होंने मिलकर सृष्टि चलाई। हिन्दू-तुर्क उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं।[8] जो

१–श्रीमद्भगवद्गीता, बालगंगाधर तिलक, अध्याय १५ –

"उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेदस वेदवित ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतस्तस्य शाखा गुण प्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्चमूला संततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्य लोके।

२– अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षटकंध शाखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥ – रामचरितमानस।

३–जा० ग्र० ना० प्र० सभा, पृ० ३०४–५।

४–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०५ (पुनि इबलीस संचारेउ)।

५–वही, पृ० ३०६। ६–वही, पृ० ३०७।

७–वही, पृ० ३०८। ८ –वही पृ० ३०८

ब्रह्माण्ड सो पिण्ड है' – उपनिषदों में ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा की एकता को बार-बार समझाया गया है। अर्थात् जो 'पिण्ड' में है वही ब्रह्माण्ड में हैं। वस्तुत: पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अर्थ है, अनंत और अंत की परस्पर अन्योन्नाश्रितता। इस तथ्य को लेकर साधना के क्षेत्र में एक विलक्षण रहस्यवाद की उत्पत्ति हुई, जिसकी प्रेरणा से योग में पिण्ड या घट के भीतर ही ब्रह्म का एक विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट हुआ और उसके पास तक पहुँचने की कल्पना की गई। जायसी ने स्पष्ट कहा है –

"सातौ दीप नवौ खंड आठौ दिसा जों आहिं।
जो बरह्मण्ड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं ।।[1]

एक पूरा रूपक बांधकर जायसी ने 'जो कछु पिंडे ब्रह्माण्डे' का प्रतिपादन किया है –

टा टुक झांकहु सातौ खंडा। खंड खंड लखहु बरह्मण्डा ।।

— — — — — —

सातवं सोम कपार महं कहा जो दसवं दुवार।
जो वह पवंरि उघारै, सो बड़ सिद्ध अपार ।।[2]

इन पंक्तियों में कवि ने मनुष्य शरीर के पैर, गुह्येन्द्रिय, नाभि, स्तन, कंठ, भौहों के बीच के स्थान और कपाल प्रदेशों में क्रमश: शनि, वृहस्पति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुध और सोम की स्थिति का निरूपण किया है। यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि कवि द्वारा दी गई यह ग्रह-स्थिति सूर्य-सिद्धांत प्रभृति ग्रन्थों के ही अनुकूल है। ब्रह्म अपने व्यापक रूप में मानव देह में भी समाया हुआ है–

माथ सरग धर धरती भयऊ। मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गयऊ ।।
माटी मांसु, रकत भा नीरू। नसैं नदी, हिय समुद गंभीरू ।।

— — — — — —

सातौं दीप, नवौ खंड आठौ दिशा जो आहिं।
जो बरह्मण्ड सो पिंड है हेरत अंत न जाहिं ।।
आगि, बाउ, जल, धूरि चारि मेरइ भांड़ा गढ़ा।
आपु रहा भरि पूरि, मुहमद आपुहिं आपु महं ।।[3]

इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि को भी कवि ने शरीर में ही प्रदर्शित किया है।

१–वही, पृ० ३०९।
२–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३१५–३१६।
३–वही, पृ० ३०९।

इस शरीर को ही जगत मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी में अनुस्यूत हैं। मस्तक मक्का है, हृदय मदीना है जिसमें नवी या पैगम्बर का नाम सदा रहता है, श्रवण आंख, नाक और मुख को क्रमश: जिबराईल, मैकाईल, इसराफील और इज-राईल समझना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को शरीर में ही गिनाते हुए कवि ने कहा है–

"नाभि कंवल तर नारद लिए पांच कोतवार।
नवौ दुवारि फिरै निति दसई कर रखवार॥[१]"

अर्थात् नाभि-कमल (कुंडलनी) के पास कोतवाल के रूप में शैतान का पहरा है। वह नबो द्वार पर नित प्रति घूमता है और दशम द्वार (ब्रह्म-रन्ध्र) की रक्षा बड़ी मुस्तैदी से करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने विश्वव्यापी ईश्वर तत्व को घट-घट में समाया हुआ माना है। उसकी मान्यता है कि वाह्य सृष्टि मानव शरीर में भी विनिर्मित है। ब्रह्म की साधना के लिए तीर्थादि में जाने की आवश्यकता नहीं है, सब कुछ 'काया-नगरी' में ही स्थित है 'जो कछु पिंडे सो ब्रह्मंडे।"

२–जीव-ब्रह्म – जायसी का कथन है कि ब्रह्म से ही यह समस्त सृष्टि आपूरित है – 'चौदह भुवन पूरि सब रहा[२]'। 'उसने ही इस समस्त सृष्टि की सर्जना की है[३]'। वस्तुत: जीव बीज रूप में ब्रह्म में ही था। ब्रह्म से ही अठारह सहस्र जीव-योनियों की उत्पत्ति हुई है[४]। वस्तुत: वही सब कुछ कर्ता है, जीव कुछ करता-धरता नहीं –

वै सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परिछाहीं॥
परगट गुपुत विचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा॥[५]

जीव पहले ईश्वर में अभिन्न था, बाद में उनका विछोह हो गया। जीव में ब्रह्म में मिलने की जो पीर और तड़पन है उसका कारण यही विछोह है –

"हुता जो एकहि संग, हौं तुम्ह काहे बीछुरा ?
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ कछु॥"[६]

ईश्वर का कुछ अंश घट-घट में समाया है –

"सोई अंस घटै घट मेला। जौ सोइ बरन-बरन होइ खेला॥"

१–जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, पृ० ३१०। २–वही, पृ० ३०३।
३–वही, ('जेइ सब खेल रचा दुनियाई')।
४–वही, (एक अकेल न दुसर जाती। उपजे सहस अठारह भांती॥)
५–वही, पृ० ३०३।
६–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३०५ (सोरठा ३)।

नोइ निवृत्ति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब क्षमां जुड़ावै । घृत सम जावुन देह जमावै ॥
मुदितां मथै बिचारि मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । विमल बिराग सुमन सुपुनीता ॥
जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥[१]

(२) दीपक–रूपक :

दीपक जैस बरत हिय आरे । सब घर उजियर तेहि उजियारे ॥
तेहि महं अंस समानेउ आई । सुन्न सहज मिलि आवै जाई ॥
तहां उठै धुनि आयंकारा । अनहद सबद होइ झनकारा ॥
— — —
सुनहु बचन एक मोर, दीपक जस आरे बरै ।
सब घर होइ अंजोर, मुहमद तस जिउ हीय महं ॥[२]
— — —
एहि बिधि लेसें दीप, तेज रासि विग्यान मय ।
जातहि जासु समीप जरसि मदादिक सलभ सब ॥
सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब ओइ बुद्धि पाइ उँजियारा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ॥
–रामचरितमानस, उतरकांड ।

और (३) जोलाहा–रूपक :

प्रेम-तन्तु नित ताना तनई । जप तप साधि सैकरा भरई ॥
दरब गरब सब देइ विथारी । गनि साथी सब लेहिं संभारी ॥–
सूत–सूत सौ कया मंजाई । सीझा काम बिनत सिधि पाई ॥
— — —
भरै सांस जब नावै नरी । निसरै छूंछी, पैठै भरी ।
खाइ–लाइ कै नरी चढ़ाई । इललिलाह कै दारि चढ़ाई ॥[३]

१–रामचरितमानस : गो० तुलसीदास, (उत्तरकांड), दोहा ।
२–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२५ ।
३–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३३२ (४३।४४) ।

"हम घर सूत तनहिं नित ताना॥"
'इंगला पिंगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया॥
झीनी झीनी बीनी चदरिया।'

—कबीरदास।

इन उदाहरणों के प्रकाश में स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुगीन भक्तों के भावों में एक अद्भुत साम्य है, और यह वैचारिक एकता आश्चर्यजनक नहीं है। यह उस समय के विद्वानों, साधकों, योगियों और संतों में समान रूप से पाई जाती है। इन साधकों ने धर्म और जाति से बहुत ऊपर उठकर परम सत्ता के साक्षात्कार की बातें स्पष्ट की हैं। इन बातों में अनन्त शान्ति और शाश्वत सत्य का निर्देश मिलता है।

'अखरावट' के आधार पर जायसी के आध्यात्मिक विचारों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) सृष्टि के आदिकाल में एक 'गोसाईं' था, उसे चित्सत्ता, नूर, सुन्न भी कहा जा सकता है। उसने ही यह द्विधायुक्त सृष्टि उत्पन्न की है।

(२) जीव और ब्रह्म में अभेद था, किन्तु नारद के बहकाने के कारण जीव की अभेदता समाप्त हो गई, वह स्वर्ग से बहिष्कृत हुआ और ईश्वर के 'जमाल-जलाल' से वंचित हुआ। वस्तुतः जीव में जो प्रेम-विरह की तड़पन है वह इसी विश्लेष के ही कारण है। वह इसी तड़पन और प्रेम-पीर की साधना से पुनः ईश्वर के 'जमाल-जलाल' की अवाप्ति चाहता है। जीव जब अल्लाह को पुनः पा लेगा, तो यह अभेदता मिट जायगी।

(३) मन का परिष्कार इसके लिए एक मुख्य साधन है। मात्र मन के परिष्कार से ही सब कुछ नहीं होता। साधक को कतिपय विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जायसी 'विधिना' के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं, फिर भी इस्लाम को सर्वोपरि मानते हैं। यद्यपि उन्होंने इस्लाम पंथ पर सूफी साधना का रंग चढ़ा दिया है।

जायसी का सूफी-पंथ सूफी मत को उनकी अपनी देन है। इसमें न केवल शास्त्रीय सूफी सिद्धान्त हैं और न भावनात्मक रहस्यवादिता। नमाज, तरीकत, मारिफत, हकीकत और शरीअत इस्लामी साधना के विधि-विधान हैं। जायसी ने इनकी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। जायसी योगियों की ही भांति कायानिष्ठ ब्रह्म की साधना को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं—'जो कछु पिंडे सो ब्रह्मण्डे' उनकी साधना का एक मूल मन्त्र है। त्रिकुटी, चक्रभेद, इला, पिंगला, सुषम्ना, नौपौरी, दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र प्रभृति यौगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त किया जा

सकता है। हृदय मन की शुद्धता के साथ ही साधक को नैतिक आचरण की भी आवश्यकता है। साधक के लिए सर्वश्रेष्ठ साधना है प्रेम पीर की साधना—वस्तुतः इसी के माध्यम से जीव ब्रह्म की परमज्योति साक्षात्कार करता है।

(४) यह सर्वविदित है कि जायसी ने 'प्रेम की पीर' को सर्वाधिक महत्व दिया है। सूफी साधक एकमात्र प्रेम को ही मानता है। पदमावत में तो 'प्रेमपीर' ही काव्य का विषय है—पदमावत की कहानी प्रेमपीर की ही कहानी है।

इस साधना के क्षेत्र में गुरु का बड़ा महत्व है। वही विरह को प्रदीप्त करता है। उस 'चिनगी' को सुलगाने का काम तो चेला का है। इस दुर्गम पंथ पर साधक को अकेले ही चलना पड़ता है—

'कठिन खेल औ मारग संकरा। बहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा॥
मरन खेल देखा जो हंसा। होइ पतंग दीपक महं धंसा॥
तन पतंग भिरिंग कै नाईं। सिद्ध होइ सो जुग-जुग ताईं॥
बिनु जिउ दिए न पावै कोई। जो मरजिया अमर भा सोई॥

जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका से प्रेम-पंथ के साधक का एक अत्यन्त जीवंत चित्र दिया है—

प्रेम तन्तु तस लाग रहु, करहु ध्यान चित बांधि।
पारधि जैस अहेर कहं, काम रहै सर साधि॥

"यह प्रेम की एक लक्ष्य साधना ही रूपक रूप में रत्नसेन की पदमावती प्राप्ति की कहानी बन गई है।

(५) जायसी दर्शन के क्षेत्र में जीव, ब्रह्म और प्रकृति को तत्वतः एक मानते हैं। जहां-कहीं वे प्रकृति को 'उसकी' छाया कहते हैं, वहां प्रतिबिम्बवाद की झलक आ गई है। जो अन्तर है, वह माया के कारण नहीं है, शैतान की करनी है। शैतान के ही भुलावे में आकर जीव अपने जलाल और जमाल को भूल गया है। इसी से उसके, अल्लाह के और प्रकृति के बीच में परदा पड़ गया है।

जायसी ने मूलतः अद्वैतवाद के आधार पर ही अपने अध्यात्म जगत का निर्माण किया है—

'अस वह निरमल धरति अकासा। जैसे मिली फूल महं बासा॥
सबै ठांव औस सब परकारा। ना वह मिला, न रहै निनारा॥
ओहि जोति परछाहीं, नवौ खण्ड उजियार।
सूरुज चांद कै जोती, उदित अहै संसार॥[१]

जायसी जीव और ब्रह्म के बीच में माया की संस्थिति को स्वीकार नहीं करते। अखरावट में एक स्थान पर माया का उल्लेख अवश्य है, परन्तु शंकर अद्वैत के

१—जा० ग्रं० ना० प्र० सैभा, १४६।

अर्थों में नहीं। सूफियों के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। इस दृश्यमान अनेकत्व के बीच उसी का ही आभास मिलता है। यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत उसीं एक मत की बाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इन्ही नामों और गुणों के द्वारा हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है –

'दीन्ह रतन विधि चार, नैन, बैन, सरवन्न मुख।
पुनि जब मेटिहि मारि, मुहमद तब पछिताब मैं ॥"

इस परम सत्ता के दो स्वरूप हैं – नित्यत्व और अनंतत्व, दो गुण हैं – जनकत्व और जन्यत्व। शुद्ध सत्ता में न तो नाम है, न गुण। जब वह निर्विशेषत्व या निर्गुणत्व से क्रमशः अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आती है तब उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इन्हीं नाम–रूपों और गुणों की समष्टि का नाम जगत् है। सत्ता और गुण दोनों मूल में जाकर एक ही हैं। दृश्यजगत भ्रम नहीं है, उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या अपर रूप में उसका अस्तित्व है। वेदान्त की भाषा में वह ब्रह्म का ही 'कनिष्ट स्वरूप है। हल्लाज के मत की अपेक्षा यह मत वेदान्त के अद्वैत के अधिक निकट है। 'मूर्त–अमूर्त सबको उस ब्रह्म का व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप मानने वाले जायसी यदि उस ब्रह्म की भावना अनन्त सौंदर्य और अनन्त गुणों से सम्पन्न प्रियतम के रूप में करें, तो उनके सिद्धान्त में कोई विरोध नहीं आ सकता। उपनिषदों में भी उपासना के लिए ब्रह्म की सगुण भावना की गई है। 'जायसी सूफियों के अद्वैतवाद तक ही नहीं रहे हैं, वेदान्त के अद्वैतवाद तक भी पहुँचे हैं। भारतीय मत-मतांतरों की उनमें अधिक झलक है।"[१]

सूफी साधक भी 'अहं ब्रह्मास्मि' की ही भांति 'अनलहक' का प्रतिपादन करते हैं और इस प्रकार वे ब्रह्म की एकता और अपरिच्छन्नता का भी प्रतिपादन करते हैं। जीव और ब्रह्म की अद्वैत स्थिति का एक बड़ा बाधक तत्व 'अहंकार' है। अहंकार के कुहासे के फटते–छूटते ही इस ज्ञान का उदय हो जाता है कि सब मैं हीं हूं 'मुझसे अलग कुछ नहीं है। जायसी 'सोऽहम्' की अनुभूति को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं –

(अहंकार)

'हौं – हौं कहत सबै मति खेई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई ॥
आपुहि गुरु सौ आपुहि चेला। आपुहि सब और आपु अकेला ॥

(सोऽहम्)

सोहं सोहं बसि जो करई। जो बूझै सो धीरज धरई ॥

जीव ईश्वर की एकता के साथ ही जायसी जगत को ब्रह्म से अलग नहीं

१—जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, भूमिका, पृ० १४४–४५।

मानते। जगत की जो सत्ता प्रतीत हो रही है यह तो अवभास या छाया मात्र है, पारमार्थिक नहीं –

'जब चीन्हा तब और न कोई। तन, मन, जिउ, जीवन सब सोई।।
हौं – हौं कहत धोख इतराहीं। जब भा सिद्ध कहां परछाहीं ?

स्पष्ट है कि जो नाम रूपात्मक दृश्यमान जगत है 'वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है और न ब्रह्म का कार्य या परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रान्तिज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्व ब्रह्म एक ही है।[1]

'प्रतिबिम्बवाद' की ओर जायसी ने पदमावत में बड़े ही अनूठे ढंग से संकेत किया है –

सरग आइ धरती महं छावा। रहा धरति पै धरत न आवा।।

'स्वर्गीय अमृत-तत्व धरती में ही छाया हुआ है, पर पकड़ में नहीं आता। इस भाव को कवि ने 'अखरावट' में अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट किया है –

आपुहि आप जो देखे चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा।।
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा।।
आपुहि बन और आपु पखेरू। आपुहि सौजा आप अहेरू।।
आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहि भंवर बास रस भूलै।।
आपुहि घट-घट महं मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै।।
दरपन बालक हाथ, मुख देखै, दूसर गनै।
तस भा दुइ एक माथ, मुहमद एकै जानिए।।

'आपुहि दरपन आपुहि देखा' से दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है। इसी अर्थ को लेकर वेदान्त में यह कहा जाता है कि कि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है। 'आपुहि आप जो देखै चहा' का मतलब यह है कि जब अपनी ही शक्ति का लीला-विस्तार देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है। ब्रह्म से पृथक उसका कोई अस्तित्व नहीं। 'आपुहि घट-घट महं मुख चाहै।' अर्थात् प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौन्दर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है। किस प्रकार एक ही अखण्ड सत्ता के अलग-अलग अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं –

''गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै।।
सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब महं देखिए।।[2]

१–जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, भूमिका, पृ० १४७।

२–जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, पृ० १४७–४८

'अखरावट' में जायसी ने उदारतापूर्वक इस्लामी भावनाओं के साथ भारतीय हिन्दू भावनाओं के सामञ्जस्य का प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि वे इस्लाम पर पूर्ण आस्था रखते हैं, किन्तु उनकी यह इस्लाम भावना सूफी मत की नवीन व्याख्याओं से संवलित हैं, योगमत के योगाचार-विधानों से मण्डित है और हिन्दू-मुस्लिम दोनों एक ब्रह्म की ही संतान हैं, की भावना से अलंकृत है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के उल्लेख[१], प्रसंग वश 'अल्लिफ एक अल्ला बड़ मोई'[२] केवल एक स्थल पर 'अल्लाह' का नामोल्लेख, कुरान[३] के लिये 'कुरान' और 'पुरान' के नामोल्लेख, स्वर्ग या विहिश्त के लिए सर्वत्र 'कैलाश'[४] या 'कबिलास' के प्रयोग, 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'अनलहक' के लिये 'सो हं'[५] का प्रयोग, इब्लीस या शैतान के स्थान पर 'नारद'[६] का उल्लेख, योग साधना के विविध वर्णन प्रभृति बातें इस बात की ओर इंगित करती हैं कि जायसी हिन्दू-मुस्लिम-भावनाओं में एकत्व को दृष्टि में रखते हुए समन्वय एवं सामञ्जस्य का प्रयत्न करते हैं। महात्मा कबीर ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था। कबीर ने बड़ी ही लापरवाही और अक्खड़ता से इसी सामञ्जस्य भावना की ओर इंगित किया था 'जौ तू तुरुक तुरुकनी जाया। आन बाट होइ काहे न आया।।' (कबीर) और जायसी ने भी हिन्दू-मुसलमानों की एकता के विषय में अत्यंत नम्रता पूर्वक कहा–

"तिन्ह संतति उपराजा, भांतिन्ह भांति कुलीन।।
हिन्दू तुरुक दुवौ भए, अपने अपने दीन।।"[७]
मातु कै रक्त पिता कै बिन्दू। अपने दुवौ तुरुक औ हिन्दू।।[८]

जायसी की यह सामाञ्जस्य भावना उनके उदार मानवतावादी दृष्टकोण की परिचायिका है–

आखिरी कलाम

हस्तलिखित प्रतियाँ और सम्पादन

सर्वप्रथम 'आखिरी कलाम' का प्रकाशन फारसी लिपि में हुआ था। यह बहुत पुरानी छपी हुई थी"[९] सैयद कल्बे मुस्तफा साहब के परिश्रम के परिणाम स्वरूप

१–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा (अखरावट) पृ० ३०४।
२–वही, पृ० ३३०। ३–वही, पृ० ३२१,३३०।
४–वही, पृ० ३०७। ५–वही, पृ० ३१२, ३२८।
६–वही, पृ० ३०५–३२० (इबलीस), ३३१ (ना-नारद तब रोइ पुकारा)।
७–वही, पृ० ३०८। ८–वही, पृ० ३१३।
९–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा (वक्तव्य द्वितीय संस्करण, पृ० १)।

शेख नियामतुल्लाह साहब की कृपा से यह पुस्तक प्राप्त हुई और 'जायसी ग्रन्थावली के द्वितीय संस्करण में (१६३५ ई०) प्रकाशित होकर हिन्दी जगत के समक्ष आई।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'जायसी ग्रन्थावली' के वक्तव्य में लिखा है कि उन्होंने अपने सम्पादन में 'आखिरी कलाम' का भी पाठ शुक्लजी के संस्करण का ही रखा है। "उसकी एक लीथो प्रति लखनऊ के श्री सैयद कल्बे मुस्तफा जायसी से मिल गई। श्री कल्बे मुस्तफा जायसी का कथन था कि इसी प्रति से शुक्लजी ने भी उसका पाठ अपने संस्करण में दिया था। शुक्लजी के पाठ को इस प्रति के पाठ से मिलाने पर यह बात ठीक ज्ञात हुई, किन्तु इस प्रति में प्राय: प्रत्येक पंक्ति में एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किए गये संशोधन भी हैं जिनका आधार संशोधकों की कल्पना के अतिरिक्त कदाचित और कुछ नहीं है। शुक्लजी ने अधिकतर संशोधनों को स्वीकार करते हुए और अपनी ओर से भी कुछ संशोधन करते हुए रचना का पाठ अपने संकरण में दिया है।[1]"

निर्माण काल

जायसी तीस वर्ष की आयु में काव्य-रचना करने लगे थे। 'आखिरी कलाम' का निर्माण उन्होंने १५३२ ई० (६३६ हि०) में किया। उससे पहिले बादशाह बाबर दिल्ली की गद्दी पर बैठ चुके थे जिसका उल्लेख कवि ने किया है—

बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहं विधि साजा॥
मुलुक सुलेमा कर ओहि दीन्हा। अदल दुनी ऊमर जस कीन्हा॥
अली केर जस कीन्हेसि खांडा। लीन्हेसि जगत समुद भरि डांड़ा॥
बल हम जाकर जैस संभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा॥
पहलवान नाए सब आदी। रहा न कतहुं बाद कर बादी॥[2]

जायसी ने 'शाहेतख्त' बाबर की जो प्रशंसा की है, वह यथार्थ है। बाबर ने २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त करके दिल्ली और आगरे पर अधिकार प्राप्त किया था[3]। १५३० ई० तक बाबर ने सभी प्रतिद्वंदियों को परास्त कर दिया था।[4]

कुछ लोगों का यह अनुमान है कि सम्भवत: : जायसी बाबरी दरबार में सम्मिलित हुए हों, क्योंकि उस समय तक मुगल राज्य जायस तक नहीं फैला

१–जायसी-ग्रन्थावली (हि० एकेडेमी) पृ० ३।

२–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३४१–४२।

३–ऐन एम्पायर बिल्डर आफ सिक्सटीन्थ सेन्चुरी–विलियम रशब्रुक, पृ० १३३–३५

४–दि मुगल एम्पायर फ्राम बाबर टू औरंगजेब : श्री ऐस० एम० जफर, पृ० २१।

था[1]। आखिरी कलाम की पंक्ति 'जायस नगर मोर अस्थानू' प्रकट है कि जायसी इस पंक्ति की रचना के समय जायस से भिन्न स्थान पर निवास कर रहे थे और वह स्थान सम्भवतया शाही दरबार था जिसकी प्रशंसा उन्होंने मुक्तकण्ठ से की है तथा जिस राजा की दान-वीरता को जी खोलकर सराहा है।[2]

मसनबी-पद्धति के अनुसार यह शाहेतख्त की प्रशस्ति है । किन्तु किसी सुदृढ़ प्रमाण के अभाव में यह मानना कठिन है कि वे 'बाबरी दरबार में' निवास कर रहे थे । आखिरी कलाम में ही जायसी ने निर्माण-तिथि भी दी है–

"नौ सैं बरस छतीस जो भए । तब एहि कथा क आखर कहे ।।[3]

अर्थात् यह काव्य ९३६ हिजरी में लिखा गया।

आखिरी कलाम की कथा

जायसी ने इस काव्य के प्रारम्भ में मसनवी-शैली के अनुसार ईश्वर-स्तुति की है। अपने 'नौ सदी' में अवतार धारण करने का उल्लेख करके उन्होंने भूकम्प और सूर्य-ग्रहण के भी उल्लेख किए हैं। मुहम्मद-स्तुति, शाहेतख्त बाबरशाह की प्रशस्ति और सैयद अशरफ की वन्दना, जायस नगर का परिचय, ९३६ हिजरी में इस काव्य के प्रणयन के उल्लेखों के पश्चात् कवि ने अत्यन्त हुलसित भाव से प्रलय-काल का वर्णन किया है। धरती को आज्ञा हुई और उसने द्रव्य उगलना शुरू किया। माजरिी के सूंघने मात्र से ही लोग मरने लगे। पुन: मैकाइल को अनुमति मिली। उन्होंने अग्नि की घोर वर्षा की। सारी पृथ्वी जलने लगी। शत-शत मन की शिलाएं बरसीं-टूटीं। यह क्रम चालीस दिनों तक चला। संसार के समस्त जीव-जन्तु इसमें मर गए। जिबर ईल ने इस दृश्य को देखा और ईश्वर से निवेदन किया कि चलकर देख लीजिए संसार में कोई भी जीवित नहीं बचा है। मुर्दों के आधिक्य के कारण धरती की मिट्टी तक नहीं दिखाई देती।

पुन: मकाईल नामक फिरिश्ते को बुलाकर पृथ्वी पर जल बरसाने की आज्ञा दी गई। चालीस दिनों तक धारासार जल-वृष्टि होती रही। संपूर्ण संसार जलमग्न हो गया।

तत्पश्चात् इसराफील को आज्ञा दी गई। उन्होंने 'सूर' (तूर्य) नाद से सारे

१–सुल्तान पुर गजेटियर : भाग ३६, १९०३ पृ० १३४ (दी मुगल टू इन देयर फर्स्ट इनवेशन डू नाट सी टू हैव टूबुल्ड सुलतानपुर)।

२–आखिरी कलाम – दोहा ८, ३४१–४२।

३–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ३४३ (१३।१) डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'तब एहि कबिता आखर कहे ।'पाठ दिया है – जा० ग्रं०, हि० ए० पृ० ६९१ (१३।१)।

संसार को उड़ा दिया, पृथ्वी एवं आकाश कांपने लगे, चौदहो भुवन झूले की तरह झूलने लगे। उनकी प्रथम फूंक से नदी–नाले समतल हो गए। दूसरी फूंक पर पहाड़ और समुद्र एक हो गए। चांद, सूर्य, तारे सब टूट-टूट कर गिर गए।

इसके पश्चात् अजराईल को• आज्ञा हुई कि समस्त जीवों को ले आए। अजराइल ने एक-एक करके जिबराईल, मकाईल और इसराफील को मार डाला। तब ईश्वर ने उस यम–'अजराईल'–से पूछा–"अब तो कोई नहीं बचा।" उसने कहा-"अब मेरे और आपके सिवा कोई नहीं वचा। ईश्वर ने अजराईल के भी प्राण ले लिए।"

चालीस वर्षों तफ ऐकान्तिक जीवन के पश्चात् ईश्वर ने सोचा, मैंने ही यह सम्पूर्ण संसार बनाया है, किन्तु अब कोई मेरा नाम लेनेवाला भी नहीं है। मैं इन समस्त पड़े हुओं को पुन: उठाऊंगा और 'सरात' के पुल पर से चलाऊंगा, कौसर में स्नान कराके जीवों को बैकुंठ में भेजूंगा।

सर्वप्रथम चारो फिरिश्ते जीवित किए गए। जिवराइल ने पृथ्वी पर आकर मुहम्मद को पुकारा। लाखों स्वरों ने समवेत भाव से उत्तर दिया। उन्होंने घबड़ा कर ईश्वर के पास जाकर निवेदन किया, "हे गुसाई, मैं उन्हें कहां पाऊं ? धरती पर मेरी पुकार के उत्तर में लाखों स्वर एक साथ सुनाई पड़ते हैं। मैं किसे यहां लाऊं ?"

पुन: जिबराईल को भेजा गया, उन्होंने मुहम्मद को ढूंढ निकाला। वे अपने अनुयायियों के साथ उठे। वे सब नंगे थे। उन सब के तालू में आंखें थीं। सब स्वर्ग की ओर देख रहे थे। एक ओर मुहम्मद, दूसरी ओर जिबराईल और बीच में वे सब-सब के सब तीस सहस्र कोस लम्बे 'पुले सरात' के अत्यन्त संकरे पथ पर चले। पापी पुल के नीचे 'पीप' के सागर में गिर पड़े।

ईश्वर की आज्ञा से सूर्य फिर से देदीप्यमान हुआ। उसी आलोक में समस्त खड़े जीवों का लेखा-जोखा होने लगा। सूर्य लगातार छ: महीने तक चमकता ही रहा और वहां प्रकाश ही प्रकाश–दिन ही दिन रहा। कुछ ताप से व्याकुल जल रहे थे, कुछ पिपासा से पीड़ित हुए और जो धर्मी थे उनके सिर पर छांह थी–उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। सवा लाख पैगंबर भी वहां थे। मुहम्मद साहब को आज्ञा दी गई कि वे अपने अनुयाइयों को सामने लाएं। मुहम्मद ने निवेदन किया कि यदि आपकी आज्ञा हो, तो धर्मी जनों को पहले ले आऊं। ईश्वर ने कहा कि मैं पहले पापियों को दंड देना चाहता हूं। अत: उन्हें ही ले आओ। पश्चात् मुहम्मद साहब ने आदम, ईसा, इब्राहीम, नूह आदि को एक-एक पैगंबर के पास जाकर उनकी ओर से ईश्वर से बिनती करने को कहा। परंतु कोई प्रस्तुत न हुआ। आदम ने कहा, "मैं तो स्वयं दु:ख में हूं, गेहूं खाकर झंझट में फंस गया हूं।" मूसा ने कहा,

'हे रसूल, मैं फरऊं बादशाह से झगड़ा करके स्वयं विपत्ति में फंसा हूं । जब किसी ने साथ नहीं दिया, तो रसूल ने ईश्वर से आकर स्वयं प्रार्थना की । ईश्वर ने क्रोधित होकर फातिमा बीबी को बुलवाया । सब ने आखें बन्द कर लीं । फातिमा बीबी ने हसन हुसेन को ईश्वर के यहां प्रस्तुत करते हुए न्याय की याचना की । उन्होंने कहा कि यदि मेरा न्याय न किया गया तो शाप दूंगी और सारा आसमान जल जायगा । ईश्वर ने मुहम्मद से कहा कि यदि वे अपनी बेटी को शान्त न करेंगे, तो उनके सब अनुयायी नरक में डाल दिए जाएंगे । फातिमा ने जब देखा कि अन्य पैगम्बर तो अहं में हैं और उसके पिता (मुहम्मद) धूप में अपने अनुयायियों के सुख के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं, तो मुहम्मद और उनके अनुयायियों के संकट को देखकर बीबी फातिमा का हृदय पानी-पानी हो गया । ईश्वर मुहम्मद साहब पर प्रसन्न हो गए । हसन-हुसैन को मारने वाले यजीद को ईश्वर ने नरक में डाल दिया । ईश्वर ने मुहम्मद साहब के कारण सबको क्षमा कर दिया । कौसर के पवित्र जल में सबको स्नान कराया गया । मुहम्मद साहब और उनके अनुयायियों की इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में ईश्वर ने दावत दी । भांति-भांति के स्वर्गीय भोजनों के पश्चात् सबको 'शराबुन्तहूरा' (स्वर्गीय शराब) दी गई । स्वर्ग में जाने के पहले मुहम्मद साहब की प्रार्थना पर ईश्वर ने अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन दिए । दर्शन की मूर्च्छना में सब तीन दिन तक मूर्च्छित पड़े रहे । जिबराईल ने सबको जगाया और दिव्य वस्त्र पहन कर सब स्वर्ग में गए । स्वर्ग में सबके लिए आनन्द और हूरें प्रस्तुत थीं ।

इस काव्य का अन्त जायसी ने स्वर्ग के अनंत विलास और अनन्त आनन्द के वर्णन के साथ किया है । स्वर्ग में न नींद है, न मृत्यु, न दुःख है न व्याधि, सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है–

''नित पिरीत नित नित नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनेहू ।।

तहां न मीचु, न नींद दुख, रह न देह महं रोग ।

सदा अनन्द मुहम्मद, सब सुख मानें भोग ।।

–ज० ग्रं०, पृ० ३६१, दोहा ६० ।

नाम

जब कि जायसी ने इस ग्रंथ के प्रारम्भ में शाहेतख्त बाबर शाह की प्रशस्ति की है, 'सन नवसै छतीस जब भए । तब एहि कथा क आखर कहे ।।' प्रभृति पंक्तियां लिखी हैं । तब भी हिन्दी के नामी-गरामी कई लोगों ने आलोचक बनने के जोश में यह मान ही लिया है कि यह जायसी का 'आखिरी कलाम' है अर्थात् 'अंतिम रचना' है ।

वस्तुतः ऐसा कहने का इन विद्वानों के पास कोई आधार नहीं हैं । कई लोगों ने तो 'आखिरनामा' य 'आखरियत नामा' को ही 'अधिक समीचीन' नाम माना है और

कहा है कि "लेखक की असावधानी से किंवा जनश्रुति के आधार पर परिवर्तित नाम 'आखिरी कलाम' प्रसिद्ध हो गया हो। ग्रन्थ के वर्ण्य विषय के विचार से भी 'आखिरनामा' बहुत ही उपयुक्त जंचता है।"[१] कुछ लोगों को 'आखिरी कलाम' का शब्दिक अर्थ ठीक बैठता दिखाई नहीं देता"[२] कौन-सा नाम अधिक समीचीन है कौन सा नाम किसी आलोचक को अधिक जंचता है और लेखक (जायसी या प्रतिलिपिकार) की असावधानी से नाम 'आखिरी कलाम' हो गया हो, ऐसी कल्पनाएं उचित नहीं हैं। वस्तुत: यह प्रलय (आखिरी समय) के वर्णन से सम्बद्ध जायसी का 'कलाम' है।[३] यह कहना कि 'जायसी के अन्य काव्यों के अनुकरण पर इसका भी नाम 'आखिरीनामा' होना 'चाहिए,[४] यह प्रस्ताव ही असंगत है। स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में सृष्टि के अन्तिम दृश्य का वर्णन होने से अन्तिम वर्णन का काव्य अर्थात् 'आखिरी कलाम' नाम देना ही जायसी ने उचित समझा था। यह कहना कि 'यह नाम निस्संदेह नाम की शिथिलता, अपरिपक्व विचारधारा आदि का द्योतक है', कवि के प्रति अन्याय है। क्योंकि आज तक के प्राप्त उल्लेखों, परंपराओं, ग्रन्थनामों और हस्तलेखों में सर्वत्र 'आखिरी कलाम' ही नाम मिलता है और इस नाम में कोई भी अपरिपक्वता नहीं है। इस नाम में वर्ण्य-वस्तु का पूर्ण इंगित है, यह नाम पूर्णत: कलात्मक और कवित्वपूर्ण है, अर्थवत्ता और व्यंजकता भी इस नाम में दर्शनीय हैं और इस नाम में एक दर्शन का कमाल भी है।

कलाम से व्युत्पन्न 'कलाम पाक', 'कलाम-मजीद', 'कलामुल्ला' प्रभृति शब्दों का विशिष्ठ अर्थ कुरान से लगाया जाता है। कुरान को इस्लाम में 'आखिरी कलाम' भी कहा जाता है। कुरान में अन्तिम रसूल पर अल्लाह की कृपाओं और नियामतों का उल्लेख है। प्रलयकाल का पूर्ण विवरण भी दिया हुआ है। जायसी ने अपने 'आखिरी- कलाम' को इस्लाम के 'आखिरी कलाम' (कुरान) के ही अनुकरण पर बनाया है। प्रलय और अंतिम न्याय के दृश्य पूर्णत: इस्लाम-सम्मत हैं। यह अवश्य है कि प्रस्तुत काव्य में मुहम्मद साहब की महत्ता का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। कुरान और प्रस्तुत ग्रन्थ 'आखिरी कलाम' दोनों के प्रलय वर्णन आदि एक से हैं। इस्लाम मजहब के अनुयायियों के लिए जायसी ने मुहम्मद साहब के प्रति

१—सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, पृ० ६२-६३।

२—म० मु० जायसी : डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० ४९।

३—आदर्श हिन्दी शब्दकोश : रामचन्द्र पाठक, पृ० १८९ (कलाम-वचन कथन, वक्तव्य बातचीत) तथा हिन्दुस्तानी-इंगलिश डिक्शनरी (कलाम-वक्तृता साहित्यिक कृति अथवा आपत्ति)।

४—सूफी महाकवि जायसी : डा० जयदेव, पृ० ६४।

जिस भक्ति और आस्था विश्वास का प्रतिफल न प्रस्तुत काव्य में किया है वह उन्हें 'आखिरी कलाम के समकक्ष ही प्रतीत हुआ था और यही कारण है कि जनता के विश्वास और मुहम्मद साहब के प्रति आस्था को दृढ़तर करने के लिए जायसी ने 'आखिरी कलाम नाम ही अत्यन्त उपयुक्त समझा था।

पीर महिमा

'आखिरी कलाम' से लगता है कि कवि 'बिन गुरु ज्ञान मिलत नाहीं' का समर्थक हो चुका है। पीर की महत्ता पर उसकी पूर्ण आस्था है। सैयद अशरफ उसके प्यारे पीर हैं। पीर के द्वार की सेवा (मुरीदी) से ही मनवांछित फल की प्राप्ति हो सकती है –

"मानिक एक पाएउं उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा ।।
जहाँगीर चिस्ती निरमरा। कुल जग महं दीपक विधि धरा ।।
समुद माहं जो बाहति फिरई। लेतैं नावं सौहं होइ तरई ।।
तिन्ह घर हौं मुरीद सो पीरू। संवरत बिनु गुरु लावत तीरू ।।
जो अस पुरुषहिं मन चित लावै। इच्छा पूजै, आस तुलावै ।।
जौ चालिस दिन सेवैं, बार बुहारै कोइ।
दरसन होइ 'मुहम्मद', पाप जाइ सब धोइ ।।"[१]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'जो अस – – तुलावै' विशेष द्रष्टव्य है। अनेक लोग सैयद अशरफ जहांगीर को भी जायसी का गुरु मानते हैं। 'गुरु-परम्परा' के सिलसिले में स्पष्ट किया जा चुका है कि जायसी के जन्म के बहुत पहले ही सैयद अशरफ की मृत्यु हो चुकी थी। वे तो स्पष्ट रूप से जायसी के पूज्य पीर थे जिनका 'मनचित से ध्यान लाने मात्र से ही इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

'आखिरी कलाम' में कुल मिलाकर ४२० अर्द्धालियां और ६० दोहे हैं। वास्तव में 'आखिरी कलाम' कवि की अप्रौढ़ रचना है। कवि ने कुरान में 'आखिरी दिन' का जो वर्णन पढ़ा था, उसे स्वान्तः सुखाय और बहुजन हिताय 'आखिरी कलाम' में दोहे चौपाई और सहज अवधी भाषा के माध्यम से कह दिया है। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान–दोनों के लिए 'आखिरी कलाम, सुलभ हो गया।

शिया विचारधारा

कहा जा चुका है कि प्रलय (कयामत) के दिन का वर्णन कुरान-सम्मत है। सूफी मत विशेष रूप से शिया मुसलमानों में प्रिय रहा है। यहां पर फातिमा–पुत्र

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा, ३४२ (दोहा सं० ६)

हसन-हुसेन की मृत्यु के लिए मुहम्मद साहब के अनुयायियों को गुनहगार ठहराया गया है। रसूल के आग्रह पर और बीबी फातिमा की कृपा पर उन्हें क्षमा मिल गई है। यजीद को सजा मिली है। मूलत: यह शिया-शेखों की विचारधारा है। इसीलिए लगता है कि जायसी शिया थे या शिया सम्प्रदाय की ओर उनका झुकाव था।

इस्लामी धर्म-दर्शन

आखिरी कलाम की कथा ही 'इस्लामी मजहब' के हश्र (प्रलय) दिन की कथा है। प्राय: सभी सामी मतों में ईश्वर को एक कठोर शासक के रूप में माना गया है। सर्वत्र उसके आतंक और प्रकोप की ही प्रधानता है। इस काव्य में जायसी ने लिखा है, जब सूर्य, चन्द्र प्रभृति सेवकों को ग्रहणादि का त्रास मिलता है, तो जन सामान्य की क्या बात ?–

"ताकहं अैसा तरासै, जो सेवक अस निंत।
अबहुं न डरसि मुहम्मद, काह रहसि निहचिंत ॥

जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३४०।

उसने ही धरती, गिरि, मेरु पहाड़, स्वर्ग, सूर्य चांद, तारे और अठारह सहस्र योनियों को बनाया है, जो जीवन में उसका नाम नहीं लेता उसे वह नर्क में डाल देता है–

"सहस अठारह दुनिया सिरैं। आवत जात जातना करैं ॥
जेइ नहिं लीन्ह जनम महं नाऊं। तेहि अहं कीन्ह नरक महं ठाऊं ॥
सो अस दैउ न राखा, जेइ कारन सब कीन्ह।
दहुँ तुम काह 'मुहम्मद एहि पृथवी चित दीन्ह ॥"[1]

ईश्वर को उसकी आज्ञा का उल्लंघन पूर्णत: असह्य है–

"आयसु इबलीसहुँ जौ टारा। नारद होइ नरक महं पारा ॥"[2]

उसने 'फरऊँ' बादशाह को घोर नरक दिया है। शदाद ने बिहिश्त के नमूने पर अपना स्वर्ग बनवाया था। ईश्वर ने उसे द्वार के अन्दर पैठते ही मार डाला–

"जौ शदाद बैंकुण्ठ संवारा। पैठत पौर बीच गहि मारा।
जो ठाकुर अस दारुन, सेवक तइं निरदोख।
माया करैं मुदम्मद, तौ पै होइहि मोख ॥"[3]

इबलीस ने ईश्वर से प्रतिद्वंद्विता की। उसने आदम को बहका कर गेहूँ खिला

१–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३४१ (७)।
२–वही। ३– वही।

दिया ।[१] ईश्वर संसार का कर्त्ता[२] पालक और संहारक है–

"भंजन, गढ़न, सवारन, जिन खेला सब खेल ।
सब कहं टारि मुहम्मद अब होइ रहा अकेल ।।"[३]

उसने संपूर्ण सृष्टि का उद्भव और विकास मुहम्मद साहब की प्रीति के लिए ही किया है–

"जेहि हित सिरजा सात समुन्दा । सातहु दीप भए एक बुन्दा ।
तर पर चौदह भुवन उसारे । बिच-बिच खंड-बिखंड संवारे ।।
सो अस दैउ न राखा, जेहि कारन सब कीन्ह ।"[४]
"तुम तहं एता सिरजा, आप कै अंतर हेद ।
देखहु दरस मुहम्मद आपनि उमत समेत ।।"[५]

जायसी ने 'पुले–सिलवात' एवं 'कौसर'–स्नान का उल्लेख किया है–

पुल सिलवात पुनि होइ अमेरा । लेखा ले अंब (उमत ?) सबकेरा ।।"[६]

आखिरी कलाम में अन्तिम दिन के न्याय का चित्रण कवि का प्रतिपाद्य है । ईश्वर के चार फिरिश्तों और उनके कार्यों के भी उल्लेख इसमें मिलते हैं ।

जायसी के मानस में बिहिश्त के लुत्फ, शराबुन्तहूरा[७] हूरें, गिल्में, विलास एवं परमानन्द–भोग[८] आदि झूल रहे थे । आखिरी कलाम के अन्त में इन सब के उल्लसित वर्णन मिलते हैं–

"चालिस चालिस हूरें सोई । औ संगलागि बियाही जोई ।।"
"औ सेवा कहं अछरिन्ह केरी । एक एक जनि कहं सौ-सौ चेरी ।।"[९]
"पैठि बिहिस्त जौ नौ निधि पैहै । अपने अपने मंदिर सिधैहैं ।।"[१०]
"नित पिरीत नित नव-नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनेहू ।।"
नित्तइ नित्त जो बारि बियाहै । बीसौ बीस अधिक ओहि चाहै ।।
तहां न मीचु न नींद दुख, रह न देह महं रोग ।।
सदा अनन्द मुहम्मद, सब सुख मानैं भोग ।।[११]

१–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, भूमिका, पृ० ३४१–४२ ।
२–वही, पृ० ३३९ (दोहा १-२)
३–वही, पृ० ३५७ ।
४–वही पृ० ३४१ ।
५–वही पृ० ३५७ (दोहा ५०) ।
६–वही ।
७–वही पृ० ३५७ (दोहा ५०) ।
८–वही पृ० ३५९ (दोहा ५६-५७) ।
९–वही पृ० ३५८ (दोहा ५३ । ६–७) ।
१०–वही पृ० ३५९ (दोहा ५७।१) ।
११–वही पृ० ३६१ (दोहा ६०) ।

जीव–सृष्टि–ब्रह्म

जायसी ने कुरान एवं अन्यान्य इस्लामी धर्म-ग्रन्थों को ही आधार मानकर 'आखिरी कलाम' की रचना की है। जायसी मुसलमानी एकेश्वरवाद पर विश्वास रखते थे। इस ग्रन्थ में 'सूफी'–सिद्धान्तों और मतों का प्रतिपादन नाम मात्र का ही है। वस्तुतः इसमें मुहम्मद साहब की प्रशस्ति का गान ही मुख्य विषय रहा है।

इस काव्य के अध्ययन से लगता है कि जायसी पर अद्वैतवाद का जादू पूर्णतः चढ़ा हुआ था–

अद्वैतवादी के अनुसार–'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः'
अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त संसार मिथ्या है–

"सांचा सोइ और सब झूठे। ठांव न कतहुँ ओहि के रूठे।।"[१]

यह संसार मिथ्या किंवा असार स्वप्नवत है–

यह संसार सपनकर लेखा [२]

इस दृश्य जगत में जो कुछ है सब में ईश्वर का प्रतिबिम्ब है–

"सबै जगत दरपन कै लेखा। आपन दरसन आपुहि देखा।।[३]

ईश्वर या ब्रह्म अकेला था। उसने अपने कौतुक [४] के लिए सम्पूर्ण संसार को बनाया सजाया है–

"अपने कौतुक कारन, मीर पयारिन हाट"[५]

अठारह सहस्र योनियों का 'करतार' भी वही है। सब में उसी का प्रतिबिम्ब दर्शनीय है। वही इन समस्त जीवों का निर्माण करता है, पालन-रक्षण करता है और संहार करने के पश्चात् अकेला रहता है–

"भंजन गढ़न, संवारन जिन खेला सब खेल।
सब कह टारि, मुहम्मद, अब होइ रहा अकेल।।"[६]

'आखिरी कलाम' में आए हुए जीव ब्रह्म एवं सृष्टि से संबद्ध ये वे सांकेतिक बिन्दु हैं जिनका विकास 'पदमावत' में हुआ है।

'आखिरी कलाम' मूलतः एक कथा प्रधान रचना है। इसमें इस्लाम धर्म के अनुसार अन्तिम दिन की कथा कही गई है। इसकी भाषा साधारण है। अलंकृति

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४० (४)। २–वही '
३–वही पृ० ३४२ (दोहा १०।७)।
४–"स एकाकी न रमते तस्मातेतत् द्वितीयम ऐच्छत।" एको हं बहुस्याम की इच्छा से ही ब्रह्म ने लीलार्थ सृष्टि की है।
५–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४२। ६–वही पृ० ३४७।

और रसमयता का इसमें प्राय: अभाव है। वर्णनात्मकता का ही सर्वत्र प्राधान्य है। इस ग्रन्थ की अवधी में फारसी, अरबी और कुरान के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

चित्ररेखा

चित्ररेखा की प्रतियां

चित्ररेखा के संपादन[१] में दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। हैदराबाद के सालार – ए – जंग संग्रहालय वाली प्रति का नाम सुविधा के लिए 'प्रति क' और अहमदाबाद वाली प्रति का नाम 'प्रति ख' रख लिया गया है। अहमदाबाद वाली प्रति के अंतिम पृष्ठ गायब हैं, कुछ स्थल दीमकों के शिकार हो चुके हैं, फिर भी उसके पाठ शुद्ध हैं और लिखावट सुन्दर है।

चित्ररेखा की एक हस्तलिखित प्रति 'उस्मानियां विश्वविद्यालय' के पुस्तकालय[२] में है, सुना है यह प्रति पूर्ण और सुन्दर है। 'चित्ररेखा' का रचना – काल अज्ञात है, पर इतना अवश्य है कि इसकी रचना के समय कवि वृद्ध हो चला था—

"जेवं जेवं बूढ़ा तेवं तेवं नवा"

प्रतिलिपिकाल

सालार – ए – जंग संग्रहालय वाली प्रति में उसके लिपिक ने अंत में लिखा है।

'तम्मत तमाम शुद पोथी चित्ररेखा, सिन तसनीफ मलिक मुहम्मद जायसी, दर अहद मुहम्मद शाह बादशाह गाजी, बतारीख दो आज दहम, सहर, रजब, मुआफिक ११२७ फसली मुताबिक ११३३ हिजरी बरोज मंगरवार, बवक्त दोपहरी अजखत कमतरीन दयाराम भटनागर, बातमाम रसीद।'

इस प्रकार इसका प्रतिलिपिकाल ११२७ हि० है।

चित्ररेखा की कथा

जायसी ने पदमावत की ही भाँति 'चित्ररेखा' का प्रारम्भ भी इस समस्त जगत् के 'एक' सर्जनकर्ता की वन्दना के साथ किया है। उस एक करतार राजा ने ही 'चौदह भुवनों को साजा है, अठारह सहस्र योनियां उसी ने रची हैं, उसी ने स्वर्ग बनाकर धरती को रचा है, उसी ने चाँद, सूर्य, तारे वन, समुद्र और पहाड़ सर्जन किये हैं, उसी ने वर्ण-वर्ण की सृष्टि उत्पन्न की है। उसने ही जीवों की

१—चित्ररेखा : हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, निवेदन—भूमिका।

२—उस्मानियां यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी हस्तलिखित प्रति।

चौरासी लाख योनियां बनाई हैं, उसने सबके लिए भुगुति (भोजन) और निवास भी दिये हैं, उसने मनुष्य रचा और उसे वड़प्पन देते हुए सर्वश्रेष्ठ बना दिया[१]। समस्त सृष्टि – सूरज, चांद, तारे, धरती, गगन, विद्युत, मेघ – मानों एक डोर से बांधे हुए हैं और ये सब डोर में नाथे हुये काठ की भांति नर्तन करते रहते हैं[२]। पहले सर्वत्र शून्य था, पुन: स्थूल रूप में उसने जगत का निर्माण किया। उस घोर अन्ध-कूप में ज्योति हुई, ज्योति से एक मोती की निष्पत्ति हुई, मोती से अपार जल हुआ, फेन-राशि उठी और आकाश उठ गया –

"दूसरे फेन उहै जल जामा। मैं धरती उपजइ सवनामा।।"

एक वृक्ष की दो डालें हुई उन दोनों से अन्य-अन्य प्रकार प्रादुर्भूत हुए। वह तरुवर फलता है, झरता है लोग फूल भी कहते हैं, संसार की अठारह सहस्त्र शाखायें (योनियां) हैं और वह (ईश्वर) स्वयं रसमूल है[३]।

इसके बाद जायसी ने सृष्टि के उद्भव की कहानी कहते हुए 'करतार' की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके बाद मुहम्मद साहब और उनके चार यारों का वर्णन करके पूरे दो दोहों में जायसी ने अपनी गुरु–परम्परा का उल्लेख किया हैं। सर्वप्रथम कवि ने अपने प्यारे पीर सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती को अपना पीर कहकर स्वयं को उनके द्वार का मुरीद कहा है।

"कालपी के शेख बुरहान महदीं गुरु हैं, उन्होंने ही मुझे प्रेम–प्याला पंथ" दिखाया है[४]। इसके पश्चात् कवि ने अपने विषय में एक विनम्रोक्ति दी है —

'मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। नाउं बड़ेरा दरसन थोरा[५]।।" आदि।

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ कवि ने चित्ररेखा की कथा प्रारम्भ की है। चन्द्रपुर नामक एक अत्यन्त सुन्दर नगर था। वहां के राजा का नाम चन्द्रभानु था। यह नगर गोमती के तट पर सुशोभित था। वहां के सभी मन्दिर मणि-खचित थे – चाहे वे राजा के हों या रंक के। उन प्रासादों के कलश सोने के ढले हुये थे। वहां की स्त्रियां तो साक्षात् स्वर्ग की अप्सराओं के समान थीं। राजमन्दिरों में ७०० रानियां थीं। उनमें प्रधान पट्टरानी थीं – रूपरेखा – वह अत्यन्त लावण्यमयी थी। उसके गर्भ के बालिका का जन्म हुआ, आनन्द – बधाये बजे। ज्योतिषी और गणक आये। उन्होंने उसका नाम चित्ररेखा रखा और कहा कि यह निष्कलंक चांद के समान अवतरित हुई है, रूप, गुण एवं शील में यह अन्यतम होगी। आज इसका जन्म तो चन्द्रपुर में हुआ है, किन्तु यह कन्नौज की रानी होगी। धीरे-धीरे चांद की

१–चित्ररेखा : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, सं० – पं० शिवसहायक पाठक।

२–वही, पृ० ६६। ३–वही, पृ० ६७।

४–चित्ररेखा – शिवसहाय पाठक, पृ० ७४। ५– वही, पृ० ७५।

कला के समान वह बढ़ती ही गई। दसएं वर्ष के आते – ही पूनम के चांद जैसा उसका वदन प्रकाशमान हो उठा, भौंरे, सर्प और शेष नाग जैसे उसके केश हो गए। उस गोरी की ज्योति शरद-पूनम की ज्योति थी। उस खंजन-नयन की भौंहें धनुष के समान, बरुनी बाणों के समान और पलकें तलवार के समान हो गईं।

सावन में वह सखियों के साथ हिंडोला झूलती थी। जब वह सयानी हुई, तो राजा चन्द्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे ढूंढते–ढूंढते सिंहद देश के राजा सिंघनदेव के यहां पहुँचे और उसके कुबड़े बेटे के साथ सम्बन्ध तै कर दिया।

कन्नौज के राजा थे कल्यानसिंह। उनके पास अपार जन धन एवं पदाति, हस्ति आदि सेनायें थीं। सर्व सम्पन्न होने पर भी एक पुत्ररत्न के अभाव में वे बड़े दुःखी थे। घोर तप के उपरान्त उनके यहां एक राजकुमार का जन्म हुआ। पंडित और सामुद्रिक आए। उन्होंने कहा कि इस बालक का जन्म उत्तम घरी में हुआ है, उसका नाम प्रीतम कुँवर रखा और कहा कि यह भाग्यवान अल्पायु है, उसकी आयु केवल बीस वर्ष की है। जब उसे इस बात का पता चला और उसकी आयु के केवल अढ़ाई दिन शेष रह गये, तो वह राज-पाट छोड़कर घोड़े पर सवार होकर काशी में अन्त गति लेने के लिए चल पढ़ा। उधर राजा सिंघनदेव अपने कुबड़े बेटे का विवाह राजकुमारी चित्ररेखा के साथ करने के लिए आए। राजा उसी बाग में आकर उतरे, जंहां कन्नौज का राजकुमार धूप और यात्रा के श्रम से विकल होकर एक पेड़ की सुखद छाया-तले सो रहा था। राजकुमार उठा, तो सिंघन देव ने उसके पैर पकड़ लिए और उसकी पुरी और नाम पूछा और विनती की कि हम इस नगर में ब्याहने आये हैं। हमारा वर कुबड़ा है, तुम आज़ रात विवाह कराकर कल चले जाना।

सिंघनदेव ने उसे बीरा दिया, उसे वर के रूप में सजाया गया। उसने सोचा कि कहाँ हम काशी-गति के लिए चले थे और कहां बीच में ही विवाह होने लगा। राजा चन्द्रभानु के अगुआ लोगों ने दूल्हे को देखा, तो वे फूले नहीं समाये। बारात चन्द्रभान के द्वार पर पहुँची। सखियों ने दूल्हे को देखकर चित्ररेखा से बड़ी-बड़ी बातें कीं। बड़े ठाट–बाट से विवाह हुआ। धौरहरे के सातवें खण्ड में उन दोनों को सुलाया गया। प्रीतमसिंह के हृदय में अपनी आसन्न मृत्यु का स्मरण करके बड़ी विकलता हुई। उसे चैन कहाँ ? वह पीठ देकर लेटा रहा। पिछला प्रहर होने लगा। राजकुमारी के अंचल पट पर प्रीतम सिंह ने लिखा–'मैं कन्नौज के राजा का पुत्र हूँ। जो विधाता ने लिख दिया है वह अमिट है। मेरी मात्र २० वर्ष की आयु थी। वह पूर्ण हो गई, अब वह पुनः लाई नहीं जा सकती। कल दोपहर के पूर्व मैं काशी में मोक्ष-गति प्राप्त करूंगा। मैं तो सहज ही काशी जा रहा था कि सिंघनदेव ने

आकर मेरा तुम्हारे साथ विवाह करा दिया। तुम्हारे लिये यह झंखना हुआ और मुझे यह दोष लगा। यह लिखकर वह घोड़े पर बैठकर काशी को चल पड़ा। प्रात:काल जब तारे डूबने लगे तो सखियां आईं। उन्होंने देखा कि धन्या सोई हुई है–उसके सब साज-सिंगार अछूते हैं। उन्होंने उसे जगाते हुए कहा कि उठो प्रात: काल हो गया। तुम्हारा कान्त किधर है? तुम्हारी सेज पर फूल वैसे ही हैं जैसे हमने बिछाए थे। तुम्हारे अंग भी अछूते–अनालिंगित हैं। तुमने किस अवगुण के कारण पति की सेज को स्वीकार नहीं किया। चित्ररेखा ने कहा–'मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। मुझे उसका दर्शन नहीं मिला। केवल पीठ ही देखी।' यह कहते समय उसकी दृष्टि अंचल-पट के लेख पर पड़ी और उलने कहा–'कुँवर तो सहज स्वभाव से काशी चले गये। अब मैं अप्सरा बनकर उनकी सेवा करूंगी और चिता में जल कर स्वर्ग में उनसे मिलूंगी।' इतना कहकर उसने अपना सिंधोरा मंगवाया और माँग में सिंदूर भरकर एवं पति के पठ के अंचल में गाँठ जोड़कर वह चिता में बैठ गई। उसने कहा–प्रियतम ने यह 'फेंटा' देकर मेरा सम्मान किया है। अब इसी फेंट को गृहीत करके मैं स्वर्ग में जाऊंगी। प्रिय, तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया, पर मैं नारी हूँ। मैं स्वयं को जलाकर तुमसे मिलूंगी।'

प्रीतम कुंवर ने काशी में आकर मरण के लिए चिता बनाई। मरने से पहले खूब दान देना शुरू किया। बड़े-बड़े सिद्ध महात्माओं ने आकर उसे घेर लिया। उन्हीं में व्यास जी भी आये। सबको दान देने के पश्चात् राजकुमार ने कहा 'गुसाई, आप भी लीजिये।' उसने 'भर मूठी' दान दिया। व्यास जी के मन में प्रेम उमड़ आया और उन्होंने 'चिरंजीव तुम होहु' का आशीष दे ही दिया। राजकुमार ने साश्चर्य कहा–'मैं तो जल मरने को प्रस्तुत हूँ। हे गुसाईं, यह 'चिरंजीव' कैसा। यदि जीवन मोल मिल सकता, तो किसी को भी देते हुए न खटकता। पर वह कहीं नहीं मिलता। फिर भी तुमने मरते हुए मुझे जीवन का आशीष दिया है। अत: लगता है कि तुम कोई बड़े पिता हो, पालक हो–जिनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। "व्यास जी ने भी इस बात को मन में समझ लिया और उन्होंने कहा कि जो मुख से निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। मैं व्यास हूँ और विधाता ने मेरे मुख से वह बात कहवा कर तुम्हारे जीवन की अवधि को बढ़ाया है। हे कुँवर, घर जाओ। तुम्हारा नया जन्म हो गया है।"

व्यास जी के चरणों का स्पर्श करके वह घोड़े पर चढ़कर चन्द्रपुर की ओर चला। इधर चित्ररेखा के लिये चिता सजाई जा चुकी थी। वह उस पर बैठ चुकी थी, केवल आग लगाने भर की देर थी। चित्ररेखा अंचल पर लिखे हुए लेख को पढ़कर सोच रही है–'प्रियतम के मरण की घड़ी आ जाय तो मैं भी चिता में आग देकर उसके साथ ही जल जाऊं।' जैसे वह घड़ी पूर्ण होने को आई और यह इच्छा

कर रही थी कि आग लेकर चिता में लगा दूँ, ठीक इसी समय प्रीतमसिंह का आग-मन हुआ। उन दोनों की आंखें मिलीं। उसके हाथ की अग्नि हाथ में ही रह गई। उसने लज्जावश अपना सिर ढंक लिया। वह चिता से उतर कर मन्दिर की ओर चली। राजकुमार के चिरंजीवी होने की बात चारो ओर फैल गई। बाजे बजने लगे। दैव ने आज शोक के मध्य सुख और भोग की निष्पत्ति की। जिनके हृदय में सच्चा वियोग होता है वे वियोगी अश्वमेव मिलते हैं।

सखियों ने चित्ररेखा को पुनः जड़ाऊ हार आदि से खूब अलंकृत किया और कहा—'आज तुम्हारे कान्त तुम्हें भेंटना चाहते हैं। समस्त संताप आज मिट जायेंगे। प्रियतम की सेवा में जिसका मन लगा है, उसका सोहाग दिन पर दिन बढ़ता ही रहता है। जो सेवा करते हैं वे दसवीं दशा तक पहुँच जाते हैं और जो खेलते रहते हैं वे पीछे पछताते हैं।

चित्ररेखा के कुछ विशिष्ट आकर्षण

'आदि एक बरनौ सो राजा' मसनवी-पद्धति एवं मंगलाचरण-विधान के अनुसार जायसी ने चित्ररेखा के प्रारम्भ में 'करतार' राजा की वन्दना की है—

आदि एक बरनों सो राजा।
जाकर सबै जगत यह साजा॥

वह सर्वव्यापी है—

चौदह भुवन पूर कै साजू। सहस अठारह भूंजइ राजू॥
सरग साजि कै धरती साजी। बरन बरन सिष्टी उपराजी॥[१]

स्पष्ट है कि उसी करतार राजा ने ही समस्त जगत को साजा है, चौदह भुवन उसी ने साजा है, अठारह सहस्र योनियां उसी ने रची हैं—

साजे चांद सुरुज औ तारा। साजे बन कहं समुद पहारा॥
जीया जोनि लाख चौरासी। जल थल माहं कीन्ह सब बासी॥
सब कहं दीन्हेउ भुगुति निवासू। जो जिन्ह थान सो ताकर बासू॥
सब पर मानुस सरा गोसाईं। सबै सरा मानुष कै ताईं॥[२]

यह द्रष्टव्य है कि जायसी ने इस्लाम के अनुसार 'सहस अठारह' और हिन्दुत्व के अनुसार 'जीया जोनि लाख चौरासी' दोनों की बातें कह दी हैं। इस संसार में ईश्वर ने जितनी वस्तुयें बनाई हैं, सब अस्थिर हैं। उसने इस सृष्टि के पीछे एक 'ताजन' (कोड़ा) लगा रखा है—

"तिन्ह ताजन डर जाए न बोला। सरग फिरइ जौ धरती डोला॥[३]

१—चित्ररेखा – शिवसहाय पाठक, पृ० ६५।
२—वही,। ३—वही, पृ० ६६। ११–१२

चांद, सूर्य, मेघ, विद्युत, धरती, स्वर्ग – सभी उसी के इंगित से परिचालित हैं–

"नाथे डोर काठ जस नाचा। खेल खेलाइ फेरि गहि खांचा।।[1]

सृष्टि का उद्भव – (जगत)

जायसी ने लिखा है कि आदि में सर्वत्र महाशून्य था–

औ सुन भा जौ अहा अचीन्हा। फुन अस्थूल भएउ जग कीन्हा।।[2]

उस निराकार ब्रह्म (अचीन्हा) ने स्थूल (व्यक्त सत्ता) होते हुए जगत की रचना की। उस अन्धकूप (महाशून्य) में उसने ज्योति को आलोकित किया[3]। उस ज्योति से एक मोती की निष्पत्ति हुई। उस मोती से अपार जल-राशि हुई। फेन उठा और मेघ या आकाश भी उठ गया। वही फेन जम कर धरती के रूप में परिणित हो गया। जब ब्रह्म ने इस सम्पूर्ण जगत का निर्माण किया, तो उसे नमूने या अभ्यास की आवश्यकता न हुई।[4]

वह आदि सत्ता इन अठारह सहस्र जीव कोटियों में व्यक्त हुई हैं।[5]। यह जगत उसने द्विधामूलक बनाया है–

"जौवैं चित तें चरइ औ चलैं। होइ दो पाइ मन्दइ औ गलै।।
सुख दुख पाप पून व्यवहारू। होइ दोइ चलै चलेउ संसारू।।
सेत स्याम रचना औ रंगा। जहां पेड़ छांह तिन संगा।।
धरती सरग देवस औ राती। दुहुन डार साखा सब भांती।।[6]

एक वृक्ष की दो शाखायें हुईं, उन दोनों से अन्यान्य शाखायें हुईं।[7] उसने जगत को द्वैतमूलक बनाया। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, श्वेत-श्याम, धरती-स्वर्ग, दिन-रात-इसी द्वैत के आधार पर संसार चलता है।[8]

जीव, ब्रह्म और जगत की एकता के विषय में जायसी की आस्था है। स्वर्गीय अमृत तत्व इसी जगत में परिव्याप्त है, पर पकड़ में नहीं आता–

आपु आप चाहेसि जौ देखा। जगत सानि दरपन कै लेखा।।
घट-घट जस दरपन परछाहीं। नान्हे मिला दूर फुनि नाहीं।।

१–वही, पृ० ६६। ११–१२।
२–चित्ररेखा, शिवसहाय पाठक, ६७। ३–४।
३–कुरानशरीफ। ४–चित्ररेखा, शिवसहाय पाठक, पृ० ६७।
५–वही, पृ० ६७ (सहस अठारह साखा, आपु भएउ रस मूलु)।
६–वही, पृ० ६८। ७–वही, पृ० ६७।
८–वही, पृ० ६८।६।

हौं तो दोउ बीच की काई। जब छूटी तब एक होइ जाई ॥
हिय कर दरपन मन कर मंजन। देखु आपु महं आपु निरंजन ॥[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता एक दूसरे से अभिन्न हैं। 'आपु आप चाहेसि जब देखा' अर्थात् जब ब्रह्म ने अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार देखना चाहा। वह प्रत्येक 'घट' में 'दरपन-परछाई' की भांति व्याप्त है। उस निरञ्जन-निराकार को 'अपने' में देखा जा सकता है।

उस ईश्वर की सत्ता काष्ठ में, अग्नि और दूध में घी के सदृश अनुस्यूत है, जो मनसा मंथन करता है वही उसे पाता है। जो भौंर के समान केतकी के कांटे से अपना हृदय प्रेम की पीर से छेद-बेध लेता है वही दुःख सहने के पश्चात् उसे पाता है, जैसे चींटा गुड़ को –

अगिन काठ घिव खीर सों कथा। सो जानी जो मन दइ मथा।
भंवर भयउ जस केतकि कांटा। सो रस पाइ होइ गुरु चांटा ॥[2]

प्रेम की सर्वोच्चता

विरह-प्रेम की निष्पत्ति एवं बाह्याडम्बर तथा निष्प्रेम साधना की निस्सारता –

जायसी प्रेम-पंथ के एक महान् साधक – संत थे। प्रेम-पंथ में उन्होंने प्रेम पीर की महत्ता का प्रतिपादन किया है। व्यर्थ की तपस्या काय-कलेश एवं बाह्याडम्बर को वे महत्वहीन मानते थे। वे प्रेमप्रभु की प्राप्ति के लिये 'हृदय में विरह' का होना अत्यंत आवश्यक मानते थे –

का भा परगट कया पखारें। का भा भगति भुइं सिर मारें ॥
का भा जटा भभूत चढ़ाए। का भा गेरू कापरि लाए ॥
का भा भेस दिगंबर छांटे। का भा आपु उलटि गए कांटे ॥
जो भेखहि तजि मौन तू गहा। ना बग रहैं भगत बे चहा ॥
पानिहिं रहइं मंछि औ दादुर। टागे नितहिं रहहिं फुनि गादुर ॥
पसु पंछी नांगे सब खरे। भसम कुम्हार रहइं नित भरे ॥
बर पीपर सिर जटा न थोरे। अइस भेस की पावसि भोरे ॥
जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप–करम–धरम–सत नेम ॥[3]

जायसी ने अपने समय में कृच्छ-काय-क्लेश और नाना विध बाह्याडम्बर

१–चित्ररेखा – शिवसहाय पाठक, पृ० ६९।
२–वही, पृ० ६६। ३–चित्ररेखा, शिवसहाय पाठक पृ० ७०।

वाली साधनाओं को देखा था, उन्हें लक्ष्य करके वे कहते हैं कि "प्रकट भाव से काया प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बढ़ाने-चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। गैरिक वसन धारण करने से क्या होता है? दिगंबर योगियों का-सा रहना भी बेकार है। कांटे पर उत्तान सोना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश-त्याग कर मौन व्रती होना भी व्यर्थ है, कहीं बगुला भी मौनी बनकर भगत होते हैं? पानी में ही तो मछली और मेढक भी रहते हैं (अत: जल में लगातार रहना और साधक होने का दम भरना निस्सार है), चमगादड़ पंछी भी तो अपने को टांगे रहता है (अत: पैर ऊपर करके सिर नीचे करने वालों की शीर्षासनी साधना से भी कुछ नहीं होता)। पशु पक्षी नंगे वदन रहते हैं (अत: मनुष्य की नंगे वदन रहने वाली दिगम्बरी साधना से भी कुछ नहीं होता) कुम्हार भी तो मस्म से नित्य प्रति सना रहता है (अत: भसम रमाने से क्या होता है?) क्या बट और पीपल में कुछ कम जटायें हैं? अरे भोले ऐसे केश-वेश से कहीं ईश्वर मिलता है? जब तक विरह नहीं होता – हृदय में प्रेम की निष्पत्ति नहीं हो सकती। बिना प्रेम के तप, कर्म, धर्म और सत नेम की सच्चे अर्थों में प्राप्ति नहीं होती। स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रेम-विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ साधना मानते हैं।

चित्ररेखा का मार्मिक संदेश

चित्ररेखा मूलत: एक छोटी-सी प्रेम-कथा है। दैव की कृपा से कभी-कभी शोक के भीतर से सुख और भोग का अद्भुत संयोग उत्पन्न हो जाता है। वे विछोही प्रेमी अवश्यमेव मिलते हैं जिनके हृदय में सच्चा वियोग होता है अर्थात् सच्चे प्रेमियों का विछोह मिलनजन्य आनन्द में बदल ही जाता है–

'दई आन उपराजा, सोग माहं सुख भोग।
अवस ते मिलै बिछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग ।।'[१]

दु:ख में सुख का भोग उत्पन्न होना, तो भगवान् की ही कृपा का परिणाम है। यह वह कृपा है जो सच्चे प्रेमी की प्रेम-परीक्षा के पश्चात् अनायास सुलभ होती है।

इस द्विधामूलक सृष्टि के विषय में लिखते हुए उन्होंने प्रेम के विषय में लिखा है–

'दुहुंन जो बार एक दिसि राखे। सो फल प्रेम प्रीति-रस चाख ।।'[२]

१–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक, पृ० १११।
२–वही, पृ० ६८।११–१२।

वस्तुत: ईश्वर की सत्ता काष्ठ में अग्नि और दूध में घी के समान है, जो मन देकर उसका मंथन करता है वह उसे जानता है। इसके लिए जो साधक भौंर के सदृश केतकी के कांटे से अपना हृदय प्रेम की पीर से छेद-बेध लेता है वही दु:ख सहने के पश्चात् उस रस का आस्वाद पाता है।

'अगिन काठ घिव खीर सोक था। सो जानी जो मन देइ मथा।।
भंवर भएउ जस केतकि कांटा। सो रस पाइ होइ गुर चाँटा।।"[1]

जो प्रेम-प्रभु आज प्रकट रूप में मिला हो, उससे क्यों न मिल लिया जाय? कल मिलने की आशा लिए हुए पुन: अवधि रखने का क्या प्रयोजन?[2]

जायसी ने जगत-निर्माण की बात लिखते हुए कहा है–

'प्रेम पिरीति पुरुख एक लिया। नाउं मुहम्मद दुहुं जग दिया।।
अंधकूप भा अहा निरासा। ओनकै प्रीति जोति परकासा।।"[3]

अर्थात् ईश्वर ने प्रेमपूर्वक मुहम्मद को बनाया और उस महाशून्य में उन्हीं की प्रीति के कारण ज्योति प्रकाशित की। अपने महदीं गुरु शेख बुरहान की प्रशस्ति करते हुए उन्होंने प्रेम के विषय में कहा है कि उन्होंने ही मुझे प्रेम-प्याला-पंथ 'लखाया' है—इस झूठे जग के धंधे को तजकर जिसने सच्चा प्रेम-पंथ पा लिया, जिसने प्रेम-प्याला पी लिया और प्रेम में चित्त को बांध दिया वही सच्चा प्रेमी और साधक है।[4]

अपने विषय में कवि ने कहा है कि "मैं प्रेम मधु भोरो हूं। हाथ में प्याला और साथ में सुराही है–प्रेम प्रीति का पूर्णत: (बहुत दूर तक) निर्वाह कर रहा हूं।"[5] "वे स्वयं प्रेम पंथ के पथिक हैं, घर में ही उदास हैं उस प्रेम प्रभु का वे कभी मन से स्मरण करते हैं और 'कबहुं टपक' उबास रहते हैं।"[6]

सावन और हिंडोले का वर्णन करते हुए जायसी ने 'प्रेम के खेल' की महत्ता स्पष्ट की है–"जब तक यह नैहर है, तभी तक यह प्रेम का खेल है अत: जबतक यहां हो–खूब खेल लो।"[7] "सभी रानियां नवल प्रेम-रस-रांची और प्रेम प्यारी थीं, वे सब की सब प्रेम रंग-रांची अभय भाव से नाच रही थीं।"[8]

कनौज में कल्यान सिंह नामक राजा के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम भी प्रेम और प्रीति से ही सम्बद्ध 'प्रीतम कुंवर' रखा गया। जब प्रीतमकुंवर

१–वही पृ० ६६। ११–१४।
२–चित्र रेखा–शिवसहाय पाठक, पृ० ९, १५–१६।
३–वही, पृ० ७१।१–४।
४–वही, पृ० ७४।७ से १६ तक।
५–वही, पृ० ७५।
६–वही, पृ० ७६। १५–१६।
७–वही, पृ० ८४।
८–वही, पृ० ८३।

काशी-पति के लिए रानी चित्ररेखा को सोता छोड़कर चला गया, तो रानी ने कहा कि "हे प्रियतम, जो तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया है, तो मैं भी सच्ची पतिव्रता कहलाऊँगी, जब अपने आपको जलाकर तुम से मिलूँगी। यहाँ पर रानी चित्ररेखा की प्रीति का उज्ज्वल पातिव्रत्य रूप प्रस्तुत किया गया है :

"जौ तुम पिउ हौं अइस बिसारी। आपुहि जारि मिलौं तो नारी ॥"[1]

'चित्ररेखा' प्रसादांत या प्रेमान्त कथा-काव्य है जायसी ने इस कथा का अन्त अवध-भोजपुर जनपद में लोक-ख्यातिलब्ध और प्रेम-महत्ता की प्रतिपादिका उक्ति से ही किया है–

"कोटिक पोथी पढ़ि मरे, पंडित भा नहिं कोइ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होइ ॥"

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्ररेखा में आदि से लेकर अंत तक प्रेम की ही महत्ता का गुणगान किया गया है।

मुहम्मद साहब और उनके चार मीत

सृष्टि के आदि में ईश्वर ने एक पुरुष रचा, उसका नाम मुहम्मद रखा। उन्हीं की प्रीति के कारण उसने उस अंधकूप (महाशून्य) में ज्योति को प्रकाशित किया। वे स्वतः अपनी ज्योति से प्रदीप्त थे, उन्हीं की ज्योति से अन्य सब प्रकाशित हैं। यह एक सूक्ष्म बात है कि उनसे ही यह संपूर्ण संसार हुआ है, वें हजरत नबी रसूल सब के अगुआ हैं–

"प्रेम पिरीति पुरुष एक किया। नाउं मुहम्मद दुहुं जग दिया।
अंधकूप भा अहा निरासा। ओनकै प्रीति जोति परकासा ॥
उनतें भा संसार सपूरन, सुनहु बैन अस्थूल।
वे ही सब के अगुआ, हजरत नबी रसूल ॥"[2]

हजरत मुहम्मद के चार मीत (चार यार या चार खलीफा) उत्तराधिकारी हुए। उन चारो को दोनों लोकों में प्रतिष्ठा दी। उनमें प्रथम अबूबकर सिद्दीक थे, उन्होंने इस्लाम में सत्य की प्रतिष्ठापना की है, दूसरे हैं उमर अदल, वे जब दीन में आए, तो जगत में न्याय (अदल) फैला उन्होंने अन्याय की बात सुनकर अपने पुत्र को मरवा डाला। तीसरे खरीफा मित्र हैं उसमान। ये बड़े विद्वान और गुणी थें। उन्होंने सुन्दर पुराण कुरान लिखकर सुनाया। और चौथे हुए रणगाजी अली जो सिंह की तरह शक्तिसंपन्न थे।[3] जायसी ने इन 'चार मीतों' की प्रशस्ति में

१–चित्ररेखा–शिव सहाय पाठक पृ० १०१।१५–१६–१०७ तथा पृ० १०७,६–११।
२–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक, पृ० ७१। ३–वही पृ० ७२।

लिखा है–

चारिहूँ चहूँ खण्ड भुइं गहै। दौलत अहै जो अस्थिर रहै ॥
पापन रहा मारि सब काढ़ा। भा उजियार धरम जग बाढ़ा ॥
हुए मीत अस चारों, जौ मति करहिं न डोल।
पढ़हिं सारे अरथा वहीं चारि अरथ एक बोल ॥[१]

पीर परम्परा का उल्लेख

जायसी ने पदमावत–अखरावट की ही भांति चित्ररेखा में भी पीर (संत) परम्परा का विशद उल्लेख किया है –सैयद अशरफ अत्यन्त प्यारे पीर हैं, मैं उनके द्वार का मुरीद हूँ। वे जहांगीर चिश्ती वंश के थे, संसार-सागर के बीच उनका धर्म का यान सजा है। हाजी अहमद, शेख कमाल-जलाल और शेख मुबारक का जायसी ने प्रशस्तिपूर्ण उल्लेख किया है–

सैयद असरफ पीर पियारा। हौं मुरीद सेवौं तिन बारा।
जहांगीर चिस्ती वै राजै। समुद माहिं बोहित किन साजै ॥
उलंघि पार दरियावै गहे। भए सो पार करी जिन गहे ॥

– – –

हाजी अहमद हाजी पीरू। दीन्ह बांह जिन समुद गंभीरू ॥
शेख कमाल जलाल दुन्यारा। दुऔ सो गुनन बहुत बहु बारा ॥
असमखदूम बोहित लाइन, धरम करम कर चाल।
करिआ सेख मुबारक, खेवट सेख जमाल ॥[२]

जायसी ने यहाँ पर सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती की पीर-परम्परा का उल्लेख किया है। ये फैजाबाद जिले के कछौछा के चिश्ती-संप्रदाय के सूफी संत थे, जो आठवीं शती हिजरी के अन्त और नवमीं शती के आरम्भ में जायसी से बहुत पहले हुए थे। जायसी उनके घराने के बड़े भक्त थे।"[३]

जायसी जायस में रहते थे। सैयद अशरफ साहब की दरगाह वहां अब तक विद्यमान है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने सैयद अशरफ को जायसी का दीक्षा गुरु माना है। शुक्लजी के अनेक नकलची विद्वानों ने भी शुक्लजी के वाक्य को अपना बना लिया है, पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। जायसी सैयद अशरफ को अत्यन्त प्रिय पीर मानते थे। सैयद अशरफ की मृत्यु जायसी के जन्म से काफी पहले ८०८ हिजरी

१–वही, पृ० ७२।
२–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक, पृ० ७३।
३–पदमावत–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३८।

में हो चुकी थी। कुछ लोग उनकी मृत्यु तिथि ८४० हि० मानते हैं।[1] अतः वे जायसी के दीक्षा गुरु नहीं हैं। हां, यह सच है कि जायसी अशरफी परम्परा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं।"[2]

गुरु–परम्परा

जायसी ने पदमावत[3] एवं अखरावट के अतिरिक्त चित्ररेखा में भी अपनी गुरु–शिष्य–परम्परा का वर्णन किया है। उन्हों ने लिखा है–

> महदीं गुरू सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिंक अस्थानू।।
> मक्कंइ चौथहि कहं जस त्यागा। जिन्ह वैं छुए पापतिन्ह भागा।।
> सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला।।
> पेम पियाला पंथ लखावा। आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा।।
> सो मधु चढ़ा न उतरइ कावा। परेउं माति पाएउं फेरि आवा।।
> माता धरती सो भइ पीठी। लागी रहइ सरग सो दीठी।।

सैयद राजे हामिद शाह मानिकपुर के बहुत बड़े सूफी संत थे, एवं उनके शिष्य दानियाल खिज्री थे, एवं उनके शिष्य सैयद मोहम्मद महदी हुए। इनका १५०४ ई० में देहान्त हुआ था। इनके शिष्य अलहदाद हुए और उनके शिष्य शेख बुरहान कालपी वाले हुए, जो महदी की परम्परा में होने के कारण स्वयं भी 'महदी गुरु' कहलाए। 'महदी गुरु शेख बुरहानू' ने पदमावत की निम्नलिखित पंक्तियां द्योतित हो उठती हैं–

> गुरु महदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिन्हकर खेवा।।
> अगुआ भएउ शेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहिं दीन गियानू।।"[5]

इस प्रकार चित्ररेखा के प्रकाशन से यह सिद्ध हो जाता है कि कालपी नगर के शेख बुरहानू के पश्चात् कोई मेहदी या महदी नामक संत जायसी के गुरु नहीं थे; बल्कि शेख बुरहानू के दादा गुरु और शेख अलहदाद के गुरु सैयद मोहम्मद महदी के विरुद के अनुसार स्वयं शेख बुरहान की महदी गुरु के विरुद से प्रसिद्ध हो गए थे।[6]

१–अखबार उल अख्यार–धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक–डा० रामखेलावन पाण्डेय।
२–जा० ग्रं०, : सं० डा० माताप्रसाद गुप्त (पदमावत) १३१–३२।
३–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, (पदमावत) पृ० ८ (दोहा २०)
४–वही, (अखरावट), पृ० ३२२ (दोहा २७)।
५–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, पृ० ८ (दोहा २०।१२)
६–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक, भूमिका, पृ० १४–१५

कवि का अपने विषय में कथन

सर्वप्रथम जायसी ने अपने विषय में लिखा है कि 'सैयद अशरफ प्यारे पीर हैं और मैं उनके द्वार का मुरीद हूँ।[1]' पश्चात् शेख बुरहान महदीं गुरु का स्तवन करते हुए उन्होंने कहा है—

'सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला। धोवा पाप पानिसिर मेला।
पेम पियाला पंथ लखावा। आपु चाखि मोहिं बूँद चखावा॥
जो मधु चढ़ा न उतरइ कावा। परेउं माति पाएउं फेरि आवा॥[2]

इसके पश्चात् तो उन्होंने बड़े ही विनम्र ढंग से अपने विषय में लिखा है—

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। नाउं बड़ेरा दरपन थोरा॥
जेवं-जेवं बूढ़ा तेवं-तेवं नवा। खूदी कई खयाल न कवा॥
हाथ पियाला साथ सुराही। पेम पीतिलइ ओर निबाही॥
बुधि खोई और लाज गंवाई। अजहूँ अइस धरी लरिकाई॥
पता न राखा दुहवइ आंता। मता कलालिन के रस मांता॥
दूध पियावइ तैंस उधारा। बालक होइ परालिन्ह बारा॥
रोवउं लोटउं चाहउं खेला। भएउ अजान चार सिर मेला॥
पेम कटोरी नाइकै मता पियावइ दूध।
बालक पीया चाहइ, क्या मंगर क्या बूध॥[3]

इन पंक्तियों से लगता है कि ये प्रेम-मधु के भ्रमर थे (प्रेम-मधु-माते थे), उनका नाम तो बहुत बड़ा था, पर वे 'दरसन-थोरा' थे। ज्यों-ज्यों वृद्धावस्था आ रही थी, त्यों-त्यों उनमें अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था। 'अजहूं अइस धरी लरिकाईं।' से स्पष्ट है कि इनकी अवस्था अधिक हो चली थी, और 'चित्ररेखा' इनकी वृद्धावस्था की रचना है। संसार की 'अस्थिरता' का वर्णन करते हुए जायसी ने एक अन्य स्थल पर भी इसी प्रकार का इंगित किया है—

'यह संसार झूठ थिर नाहीं। तरुवर पंखि तार परछाहीं॥
मोर मोर कइ रहा न कोई। जोरे उवा जग अथवा सोई॥
समुद तरंग उठै अंध कूपा। औ बिलाहिं सब होइ होइ रूपा॥
पानी जइस बुलबुला होई। फूट बिलाहिं मिलइं जल सोई॥
मलिक मुहम्मद पंथी, घर ही माहिं उदास।
कबहूं संवरहि मन कै, कबहूं टपक उबास॥[4]

१—चित्ररेखा—शिवसहायक पाठक, भूमिका, पृ० ७३।
२—चित्ररेखा : शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।
३—वहीं, पृ० ७५। ४—वही पृ० ७६

यद्यपि इन पंक्तियों में संसार की अस्थिरता (जन्म-मृत्यु) एवं वैराग्य विषयक बातें कही गई हैं, बुल्ले, तरंग आदि प्रतीकों के माध्यम से जन्म के पश्चात् 'विलाने' (विलीन होने) की बातें स्पष्ट की गई हैं, तो भी 'जोरे उवा जग अथवा सोई' के द्वारा कवि ने अपनी वृद्धावस्था की ओर इंगित कर ही दिया है, क्योंकि वे गत जीवन का मानो सर्वेक्षण करते हुए कह रहे हैं—'जो जग नीक होत अवतारा। होतहिं जनम न रोवत बारा ॥'

चित्ररेखा में उन्होंने अन्यत्र भी अपने विषय में लिखा है—

मुहमद सायर दीन दुनि, मुख अंब्रित बैनान।
बदन जइस जग चन्द सपूरन, सूक जइस नैनान ॥[१]

स्पष्ट है कि उनका बदन तो सम्पूर्ण चन्द्र के सदृश था, पर नेत्र शुक्राचार्य जैसे ही थे।

दोहा-चौपाई

'चित्ररेखा' की कथा मसनवी शैली में लिखी गई है। 'दोहे—चौपाई' वाली छन्द परम्परा को ही जायसी ने यहां भी गृहीत किया है। सम्भवत: जायसी ने सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान किया था, किन्तु जिन दो प्रतियों के आधार पर 'चित्ररेखा' का सम्पादन हुआ है, उनमें इस क्रम का निर्वाह सर्वत्र नहीं है।

मुझे प्रो० राजकिशोर जी पाण्डेय से ज्ञात हुआ है कि उस्मानिया विश्वविद्यालय वाली हस्तलिखित प्रति पूर्ण है और उसमें सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान आद्यन्त मिलता है। 'चित्ररेखा' की प्रतियां फारसी अक्षरों में हैं, कुछ तो प्रतिलिपिकार के अधिक गच-पच और कुछ पुरानी लिखाई और इन सबने मिलाकर कहीं-कहीं मात्रा-सम्बन्धी कमी-वेशी का दोष उपस्थित कर दिया है। यों डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि पदमावत आदि में जायसी ने दोहे—चौपाई का स्वतन्त्र प्रयोग किया है। फिर भी 'चित्ररेखा' में जहां भी यह दोहा था, प्रस्तुत विद्यार्थी ने विचार-विमर्श किया है। स्वयं डा० माताप्रसाद जी गुप्त[२] ने एक पत्र भेजकर कुछ स्थलों के स्थान पर अपना प्रस्तावित पाठ भेजा है।

कहरानामा

'कहरानामा' की एक हस्तलिखित प्रति 'कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस,

१—चित्ररेखा : शिवसहाय पाठक, पृ० ७७।

२—डा० माताप्रसाद गुप्त का पत्र, दिनांक १७।६।६०।

लन्दन' में सुरक्षित हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त[1] ने इसे नाम के अभाव में 'महरी बाईसी' नाम से संपादित किया है। वस्तुत: इसका नाम 'कहरानामा' है।

लन्दन वाली प्रति में पदमावत और कहरानामा दो ग्रंथ हैं। इसमें कुल १८० पृष्ठ हैं। इस कहरानामा में बाईस छन्द हैं। इस प्रति का रचना-काल ११११४ हि० है।

'कहरानामा की एक अत्यन्त सुन्दर हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट, पुस्तकालय[2] में हैं। इस प्रति में भी 'पदमावत' और 'कहरानामा' ग्रन्थ सुरक्षित हैं। कहरानामा की इस प्रति में कुल २५ पृष्ठ हैं। इसमें रचनाकाल ९४७ हि० दिया गया है।

११ जुल–हिजाव हि० १०८५ (२६ फरवरी १६७५ ई०) को लेखक ने इसकी प्रतिलिपि शुरू की थी और १ मुहर्रम १०८६ हि० (१८ मार्च १६७५ ई०) अर्थात् २० दिन में समाप्त किया था। यह फारसी लिपि में लिखी गई प्रति है। इसमें जबर, जेर, पेश आदि सर्वत्र दिए गए हैं। शब्दों के नीचे उनका फारसी में अर्थ भी दिया गया है। इसके लिखने वाले हैं मुहम्मद शाकिर।

इसकी[3] एक प्रति बिहार के मनेरशरीफ खानकाह से श्री सैयद हसन अस्करी को प्राप्त हुई है। इसकी लिपि उर्दू है। यह यद्यपि पूर्ण नहीं है, पर सुलिखित है। मेरे पास इसकी एक फोटोस्टेट प्रति है। इसमें कुल ८ पत्र हैं। इसके अन्त में इसका प्रतिलिपि काल दिया हुआ है। 'कहरानामा' की एक प्रति आनन्दभवन पुस्तकालय बिसवाँ, जि० सीतापुर में है। इसमें १२ पत्र हैं। प्रत्येक पृष्ठ में ३६ पंक्ति हैं। लिपि नागरी हैं। लिपिकाल १७७० (सं० १८२७) है।[4]

इस प्रति के आरम्भ में 'अथ' कहरानामा 'लिख्यते' दिया गया है। अन्त में लिखा है–

कहरानामा भाषा कीन्हा जो गावै सो तरिहै रे।
राम नाम परमारथ महिमा रामै पार उतरि है रे॥

१–जा० ग्रं० (महरी बाईसी पृ० ७११–७२१), सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० १०४।

२–बम्बई विश्वविद्यालय के लाइब्रेरियन श्री मार्शल जी ने इस प्रति की माइको–फिल्म कापी मंगा कर मुझे उपकृत किया है। यह प्रति आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

३–इसकी दो प्रतियां जायस में मिली हैं, देखिए ना० प्र० पत्रिका, २०१७ अंक १।

४–ना० प्र० सभा हस्तलिखित हिन्दी ग्रथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९२६–२८, पृ० ४३१।

'नामा' उत्तरपद फारसी का है। इसी कारण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का अनुमान है कि 'इस ग्रन्थ का पूर्व पद भी हिन्दी से इतर भाषा का होना चाहिए, जैसे कूजानामा, रजनामा इत्यादि। उनके अनुसार इसका नाम 'कहरनामा' चाहिए।'[1]

वस्तुत: मध्ययुग में फारसी के अनुकरण पर 'नामा' उत्तरपद वाले बहुत से ग्रन्थ लिखे गये। हिन्दी में भी इस प्रकार के कुछ प्रयत्न हुए हैं। कहरानामा का कहरा मूलत: वही शब्द मालूम होता है जो कबीर में भी आया है। बिरहुली, चौंतीसी आदि के साथ कबीर ने कहरा भी लिखा है। कहरा और कहरवा संभव है एक हों। कहरवा अवधी का एक गीत है।[2]

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी[3] की सम्मति है कि यह काव्यरूप वही है जिसे कबीर ने भी लिखा है। यह काव्य रूप और भी संत कवियों में मिलना चाहिए। कबीर ने बीजक ग्रंथ के अन्तर्गत १२ पदों का कहरा लिखा है जिसमें दूसरे पद के अन्त की दो बानियां इस प्रकार हैं –

प्रेम बान इक सतगुरु दीन्हा गाढ़ो तीर कमाना हो।
दास कबीर कीन्ह यह कहरा महरा माहिं समाना हो॥

बीजक के टीकाकार महाराज राघवदास ने यहां कहरा का अर्थ जनम-मरण रूप कहर या 'दुख' ही किया है।

डा० वासुदेवशरण का कथन है कि नाम के सम्बन्ध में यह प्रश्न बना रहता है कि कहरानामा में कहरा शब्द का सम्बन्ध कहरा से है या 'कहर' से[4]।

वस्तुत: 'कहरवा' या कहार गीत उत्तर प्रदेश की एक 'लोक-धुनि' है। जायसी समर्थ कवि थे यदि वे कहार और कहर का श्लेष किए हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह अवश्य है कि 'नामा' उत्तरपद फारसी का है और कहार कहार जाति और गीत की ओर इंगित करता है। कहार डोली ले जाने का काम आज भी करते हैं और कहरानामा में संसार से डोली जाने की बात लिखी गई है–

भा भिनुसारा चलै कहारा होतहि पाछिल पहरा रे।
सबद सुनावा, सखियन्ह भावा, हंस कै बोला महरा रे॥[5]

फारसी, उर्दू आदि में नाना उत्तरपद वाले अनेक ग्रंथ मिलते हैं। जायसी ने हिंदी में एक लोक धुनि के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की है। इस प्रकार 'कहरानामा' में

१–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, सं० २०१०, पृ० ४७७।
२–वही, श्री पुरुषोत्तमलाल का मत।
३–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, सं० २०१०, पृ० ४७८।
४–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८ अंक ४, सं० २०१०, पृ० ४७८।
५–मनेरशरीफ वाली प्रति से उद्धृत।

कहरा का अर्थ कहार (जाति विशेष), कष्ट—दु:ख या कहर और गीत विशेष है । 'कहारों' के गीतों में बहुत से गीत 'निरगुन' कहलाते हैं । भक्त कहार कह उठते हैं 'अच्छा अब कोई निरगुन कहंरवा सुनाओ' । इस प्रकार कहरवा गीत में निर्गुण ब्रह्म का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेमपरक गीत गाना हमारे देश की एक अत्यन्त प्राचीन लोक-परम्परा है । जायसी कबीर आदि ने उसे गृहीत करके काव्य रूप में निबद्ध किया है ।

महरी बाईसी का प्रकाशन

सन् १९५१ ई० में डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रन्थावली का संपादन किया था । उसमें उन्होंने 'महरी बाईसी' नामक जायसी की एक अनुपलब्ध प्रति को भी छापा था । उन्हें इस ग्रंथ की एक प्रति कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन से प्राप्त हुई थी । उन्होंने लिखा है – 'महरी बाईसी नाम मेरा दिया हुआ है। स्पष्ट नामोल्लेख कृति में नहीं है । केवल महरी गाने का उल्लेख कृति में जहां-तहां हुआ है, और इस कृति में कुल बाईस गीत हैं, इसलिए यह नाम दे दिया गया है । सम्भव ही नहीं, आशा भी है कि आगे की खोजों में इस कृति का ठीक नाम ज्ञात हो जावेगा ।'

'यह कृति केवल सन् ११९४ हिजरी की एक प्रति के आधार पर सम्पादित हुई है । लिखावट प्राय: शिकस्त है, और दिया हुआ पाठ अत्यन्त कठिनतापूर्वक उससे प्राप्त किया गया है ।[१]

डा० गुप्त का कथन है कि इस प्रति में अनेक स्थलों पर शब्द और पंक्तियां भी छूटी हुई हैं ।[२]

वस्तुत: इस ग्रंथ का नाम 'कहरानामा' या 'कहारानामा' है । यह नाम इस ग्रन्थ की अनेक प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों में मिला है । 'रामपुर स्टेट लाइब्रेरी' में पदमावत के प्रति के अन्त में कहरानामा की भी एक पूर्ण और सुलिखित प्रति मिली है । 'यह प्रति १०८६ हिजरी (१६७५ ई०) में लिखी गई थी ।[३] 'मनेरशरीफ के खान का पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखित प्रति में 'पदमावत', 'अखरावट' और कहारानामा' की प्रतियां मिली हैं । यह प्रति काफी उच्च श्रेणी की और सुलिखित है । यह सत्रहवीं शताब्दी में शाहजहां के समय में लिखी गई थी ।[४]

१—जा० ग्रं० (भूमिका –) डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १०४ ।

२—वही, पृ० १०४ ।

३—पदमावत — डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० १० ।

४—जे० बी० आर० एस० (प्रो० हसरत अस्करी का लेख), भाग ३९, १९५३, पृ० १०–४ (अवधी ग्रन्थों की एक नई हस्तलिखित प्रति ।

मनेरशरीफ वाली प्रति, रामपुर वाली प्रति और कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस वाली प्रति, इन प्रतियों को देखने पर ज्ञात हुआ कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने जो पाठ दिया है वह संतोषजनक नहीं है। इसका पुनः सम्पादन आवश्यक है।

कहरानामा की कथा

'कहरानामा' तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इसे 'निर्गुण–प्रेम कथा' भी कह सकते हैं। भूल से इसका नाम 'महरीबाईसी' रखा गया है। इसमें बाईस छंद नहीं हैं – तीस छंद हैं। संसार एक सागर के समान है। इसमें धर्म की नौका पड़ी हुई है। केवट एक ही है। नैहर से महराई कैसे आई ? कौन केवट है ? कौन कहरा है ? कौन गुण लाकर पंथ को सिर पर रखता है ? कौन गुन (रस्सी) से नौका को तट पर खींचता है ? कोई इस पंथ को तलवार की धार कहता है तो कोई सूत जैसा। मैंने नरक का फन्द नहीं देखा है, जाल में उलझ गया हूँ। कोई इस सागर में पैरते–तैरते हार गया है, और बीच में खड़ा है, कोई मध्य सागर में डूबता है और सीप ले आता है, कोई टकटोर करके छूंछे ही लौटता है, कोई हाथ झार कर पछपाता है, मुहम्मद कहते हैं कि संभाले रहो टोई-टोई पांव उतारो, नहीं तो खाले में पड़ोगे।

जायसी गुरु की आज्ञा पालन करने की बात लिखते हैं कि साधना पंथ पर गतिमान होने वाले साधक के लिए गुरु की आज्ञा या गुरु का साथ होना आवश्यक है। अन्त में तो एक ही आश्रय रह जाता है ईश्वर। कहरानामा में कई बार इस अन्तिम आश्रय की ओर संकेत किया गया है।

जो नाव पर चढ़ता है, वह पार उतरता है और नाव चली जाने पर जो बाहं उठाकर पुकारता है और केवट लौटता नहीं, तो पछताता है, लोग उसे 'मूर्ख–अनाड़ी' कहते हैं। वहुत दूर जाना है, रोने पर कौन सुनता है ? जो गँठ पूरे हैं, जो दानी हैं, उनसे हाथ पकड़ कर केवट नाव पर चढ़ा लेता है, वहां कोई भाई, बन्धु और संघाती नहीं। मन अकेले विसूरता है मुहम्मद कहते हैं। इस मार्ग पर चलो, मझधार में न डूबो। साधक को इस संसार–सागर में पैर संभाल कर रखना चाहिए अन्यथा पदभ्रंश होने का भय है।

वर्षाऋतु में नदी के पाट को देखकर मन आतंकित हो जाता है, पवन द्वारा उद्वेलित लहरें हृदय को प्रकंपित कर देती हैं। सूस, मगर, गोह, घरियार पद–पद पर उछलते-उतराते हैं, संकट पड़ने पर केवट को बहुत से लोग पुकारते हैं, परन्तु वह सबको नहीं मिलता, ऐसे भीषण प्रवाह में केवट के बिना नाव का पार लगना बड़ा मुश्किल है। जायसी ने योग युक्ति, मन की चंचलता को दूर करने, भोगों से दूर रहने और प्रेम-प्रभु में मन रमाने की बातें कही हैं। जायसी ने महरी-महरा

के विवाह के बहाने आत्मा-परमात्मा के विवाह का वर्णन किया है। आत्मा का श्रृंगार-वर्णन वैसा ही है जैसा सूर सागर में राधा का श्रृंगार–

साजइ माग झारि दुइ पाटी चतुरि न चीर संबारहु रे
बेनी गूँथहु इंगुर लावहु रचि-रचि-सेंदुर सारहु रे ।

जायसी ने भी यहाँ वे ही उपमायें दी हैं जो सूरदास ने, वे ही आभूषण हैं जो राधा के। आत्मा रूपी प्रिया अपने प्रिय परमात्मा को गम्भीर गुणों से संयुक्त और महनीयरूप में अनुभव करती है। यह प्रिय पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, सभी दिशाओं में गतिमान है। इसकी प्राप्ति तभी होती है जब अपने आपको समाप्त कर दिया जाता है।

अन्त में कवि ईश्वर के प्रेम का निरूपण करते हुए कहता है कि जिसे वह अपना सेवक समझता है उसे दरिद्र और भिखारी बना देता है। उसकी सृष्टि की विपरीतता भी दर्शनीय है—जिसे वह अपना सेवक जानता है उसे भीख मंगाता है, कवि और पंडित दुःख और 'दरद'[1] में जीते हैं और 'वह' मूरख को राजभोग दे देता है। जहाँ चन्दन है वहाँ नाग हैं, जहाँ फूल हैं वहाँ काँटे भी हैं, जहाँ मधु है वहाँ माखी भी हैं और जहाँ गुर है वहां चींटा भी हैं–

'जो सेवक आपुन कै जाने, तेहि धरि भीख मंगावै रे।
कबिता, पंडित दुक्ख–दरद महं, मुरुख के राज करावै रे ।।
चन्दन जहाँ नाग है तहवाँ, जहाँ फूल तहं कांटा रे।
मधु जहवां है माखी तहवा, गुर जहवाँ तहं चांटा रे ।।

विशेष

'कहरानामा' में कहारों के जीवन और वैवाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

आत्मा और परमात्मा के मिलन–बिवाहों की बात को कवि ने कहार जीवन के विवाह के बहाने स्पष्ट किया है–

'भा भिनुसारा चलै कंहारा, होतहि पाछिल पहरा रे।
सखी जी गावहिं हुडुक बजावहिं, हंसि के बोला महरा रे ।।
हुडुक तबर औ झांझ मजीरा, बांसुरि महुअर बाजै रे।
सबद सुनावा सखियन्ह गावा, घर घर महरीं साजै रे ।।
पूजा पानी दुलहिन आनी, चूलह भा असबारा रे ।
बाजन बाजै केवट साजै, भा बसन्त संसारा रे ।।

१–मनेर शरीफ वाली हस्तलिखित प्रति से।

मंगलचारा होइ झंकारा औ संग सेन सेहली रे ।
जनु फुलवारी फूली वारी, जिन्ह कर नहिं रस केली रे ।।
सेंदुर लै-लै मारहिं धै-धै, राति मांति सुभ डोली रे ।
भा सुभ मेंसू फूला टेसू, जनहु फाग होइ होरी रे ।।
कहै मुहम्मद जे दिन अनन्दा, सो दिन आगे आवे रे ।
है आगैं नग रैनि सबहि जग, दिनहि सोहाग को पावै रे ।।

इस पद्य में हुडुक तबर, झांझ, मजीरा, बाँसुरी, महवर, महरा, महरी, फाग खेलना' टेसू, सेंदुर मंगलाचार, आदि के द्वारा कवि ने फागुन में कहारों के विवाह और ईश्वरीय अर्थों में आत्मा का परमात्मा के रंग में रंग जाने का वर्णन बड़े ही ललित रूप में प्रस्तुत किया है। कहरानामा के सभी पद गेय, ललित और आध्यात्मिक अर्थों की व्जंजना से संबलित हैं। अनुप्रास और श्लेष के सौंदर्य प्राय: सर्वत्र दर्शनीय हैं। जैसे क़बीर कहते हैं कि 'दुलहिन ! गावहु मंगलाचार। आजु घर आए राजा राम भरतार'। वैसे ही जायसी ने भी इस छोटे से ग्रन्थ में निर्गुण ब्रह्म को प्रियतम और भक्त या आत्मा को प्रियतमा मान कर दोनों के चिर मिलन का बड़ा ही मनोमय वर्णन किया है।

मसला[1]

नागरी प्रचारिणी सभा में जायसी कृत 'अखरावती' की एक हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति के लिखने वाले हैं सीतलदास। 'अखरावती' की पुष्पिका में उन्होंने लिखा है–

'लिषा है सीतलदास महंमद कृत अखरावती ग्रंथकेर एह नाम औ मसला आगे लिखब।'[2]

'अखरावती' की पुष्पिका के पश्चात् 'सीतलदास' जी ने जायसीकृत 'मसला'[3] को लिखा है। नागरीप्रचारिणी सभा में 'मसला' के केवल तीन पृष्ठ ही मिले हैं। एक तो प्राचीन लिखाई, दूसरे पढ़ने की कठिनाई तीसरे 'लिपिक' की असावधानी और चौथे खण्डित प्रति–इन सभी कारणों से इस कृति की पूर्णरूपरेखा स्पष्ट नहीं हो पाती। इतना स्पष्ट है कि 'मसला' में अवध जनपद के मुहावरे, लोकोक्तियां, कहावतें आदि सुन्दर रूप से प्रयुक्त हैं।

१–ना० प्र० सभा, खोज रिपोर्ट, १९ ७।

२–नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय की 'जायसीकृत अखरावती और मसला' की प्रतियां, पृ० २५।

३–'महंतगुरुचरन प्रसाददास के पास जायसी की कई हस्तलिखित प्रतियों के साथ 'मसला' भी है।

प्रस्तुत 'खंडित प्रति' नागरी अक्षरों में है। (परिशिष्ट में 'मसला' या 'मसलानामा' को दिया गया है)।

वर्ण्य और उसका वैशिष्ट्य

'मसला' की कथा अज्ञात है। किसी अन्य प्रति के प्राप्त होने पर ही निश्चय पूर्वक कुछ कहा जा सकता हैं। फिर भी प्राप्त 'खंडित प्रति' के आधार पर कहा जा सकता हैं कि इस ग्रन्थ में जायसी ने 'मसला' (–मसले या मसलों) के सुन्दर प्रयोग किये हैं। अवधी भाषा और अवध जनप्रद में प्रयुक्त 'मसलों' को जायसी ने अत्यंत जीवन्त रूप में उपस्थित किया है। इन प्राप्त मसलों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि 'मसला' की प्रति से मुहावरे, लोकोक्तियों और कहावतों के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ है। प्रारम्भ में कवि ने अल्लाह से मन लगाने की बात कही है–

यह तन अलह मियां सों लाई। जिहि की षाई तिहि की गाई॥[२]

यहां यह कह देना समीचीन है कि प्राप्त प्रति की प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई कहावत या लोकोक्ति अवश्य प्रयुक्त है। इन कहावतों के कतिपय प्रयोग अत्यन्त भव्य, जीवन्त और लोक जीवन के प्रतिनिधि हैं। ज्ञान का सागर अथाह और अनन्त है–इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है—इतनी बड़ी सेना में एक व्यक्ति का क्या विस्तार–भला जिस घर में सासु ही तरुणी हो उस घर में बहुओं का कौन 'सिंगार' ?

"बुधि विद्या के कटक मो हौं मन का विस्तार।
जेहि घर सासु तरुणि है, बहुअन कौन सिंगार॥[३]

जो जिस को पाना चाहता है पाकर ही रहता है। अनाज छोड़कर लोग 'घुन' को पकड़ ही लेते हैं–

जासों प्रेम सो धै धै परै। नाज छांड़ि घुन बिनिया करै॥

बहुत सी बातें बनाकर कही जाती हैं, किन्तु क्या उन 'बहुत बनाकर कही गई बातों में कुछ सार अंश भी होता है ? 'छूंछ पछोरते समय उड़ उड़ जाता है–

"बात बहूतै कहै बनाई। छूंछ पछोरै उड़ि-उड़ि जाई॥"

इस पंक्ति में 'बात बहुत बनाकर कहना' और छूंछ पछोरै उड़ि उड़ि जाय' इन दो

१–'मसला' की दो हस्तलिखित प्रतियां 'जायस' से प्राप्त हुई हैं। देखिए ना० प्र० पत्रिका, २०१७ अंक १ जनवरी–मार्च।

२–मसला (हस्तलिखित प्रति) पृ० २४।

३–वही पृ० ३।

कहावतों के सुन्दर एवं दृष्टांतमूलक प्रयोग दर्शनीय हैं। संसार में जीवन अल्पकाल का है और उपहास बहुत है–'जीवन थोर बहुत उपहांसू।''

यदि निष्प्रेम भाव से जीवन-निर्वाह किया जाय, तो वह व्यर्थ है 'जिस हृदय में प्रेम नहीं वहां (ईश्वर या अन्य) **कोई** किस प्रकार आ सकता है? भला सूने गांव में कोई जाता है–

बिना प्रेम जो जीव निबाहा। सूने गांउ म आवै काहा।।

कुछ लोग प्रियतम और प्रेम में प्रार्थक्य बतलाते हैं, किन्तु क्या ये दोनों पृथक हैं? धान के खेतों के होने की पुष्टि 'पयार' (पुआल) से ही हो जाती है–

प्रीतम प्रेम कोइ कहै आना। धान क षेत पयारहि जाना।।

यहां 'प्रियतम और प्रेम की एकता' 'कोई कहै आना' (अन्य कहना)' और धान के खेत पयारहिं जाना, लोकोक्तियों के प्रयोग दर्शनीय हैं।

जहां 'पांच भूत' हैं वहां सुमति कहां? चाहे फिर ये पांच भूत हो या पांच भूत (इन्द्रियां)–

पांच भूत कोइ सुमति न करै।

खेत को अधिक गहराई पर खोदने और गहराई में बीज डालने से अनाज सहज ही जल भुन जाता है–अंकुरित भी नहीं होता–

सहजै नाज जाइ सब जरै। अधिकै षेत जौ नीवैं षनै?

यदि तूने अंत (परिणाम) को नहीं समझा, तो व्यर्थ बैठे रहने का क्या प्रयोजन? अरे, अभी तो तुम कल साधारण से बनिया थे और आज बड़े धन्ना सेठ हो गए–

अंत न समुझु करसि का बैठ। काल्हिहिं बनियां आजुहि सेठ।।

'अन्त न समझना', हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और 'कल के बनियाँ और आज के सेठ 'मुहावरे' यहां प्रयुक्त हुए हैं। 'वैसे ही रहना', 'करनी करना' और जिसकी लाठी उसकी भैंस मुहावरों का प्रयोग–

''करनी करहु रहहु का बैस। जिसकी लाठी तिसकी भैंस।''

'पुण्य–पाप एक रूप न जानना,' 'दूध का दूध पाती का पानी 'मुहावरों के प्रयोग–

पुन्य पाप एक रूप न जानी। दूध क दूध पानी क पानी।'

कवि 'साई से नेह करने' की बात कहता है और इंगित करता कि जब कालक्षण (अंतिम क्षण) आ जायेगा, तो क्या हो सकता है?

अब साई सो नेह करु, फेरि न यह संयोग।
काल्हि (?) ते (जो?) षनी उतरी, भई वै लही जोग।।[1]

साधक कवि कहता है कि अवश्य ही मैंने 'पतनुकवा' आम की तरह तुम्हारे रूप को

१–द्रष्टव्य–१''कोल्हू ते खरि ऊतरी भई बैल ही जोग'' (अधिक शुद्ध पाठांतर)

'हरे' लिया है, अब या तो आम आएगा या लबेदा अंटक जाएगा—

निश्चै तोर रूप मैं हेरा। आवै अंब कि जाइ पवेरा ॥

बिना स्वामी के और कुछ सुहाता नहीं। धन्या रूखा-सूखा ही खाती है—

बिनु साई नहि और सोहाई। धनै जिउ (हौं तो) रूषा षाई ॥

यदि कर सको तो कुछ 'नेकी कर लो'—

सकहु कछू नेकी ले साथा। षावा भात उड़ावा पाता।

'नेकी साथ लेकर चलना' और 'भात खा कर पात उड़ा देना' मुहावरों के प्रयोग यहां दर्शनीय हैं।

स्वयं देखकर दूसरों को दिखाना ही बुद्धिमानी है—

आपु देखि और सो सिषावै।

'आज जो करना है कर लो, अन्यथा यह सांसारिक धंधा छोड़ कर तो मरना ही है—

करि ले आजु अहै जो करना। धंधा छांड़ि आखिर है मरना।

तू ईश्वर—परम रूपमय—को छोड़कर इस माया मोह के जाल में लुब्ध हुआ है

"रूप निरंजन छांड़ि कै माया देखि लोभान।"[१]

प्राप्त हस्तलिखित प्रति की ये ही उपलब्धियां है। १६ वीं शती की अवधी भाषा, भाषा की व्यंजकता, 'पुण्य-पाप एक रूप न जानी' दूध का दूध पानी का पानी', 'जा सों प्रेम सो धै-धै परै,' 'बिना प्रेम जो जीव निबाहा,' 'बुधि विद्या के कटक में हौ मन का विस्तार जेहि घर सासुहि तरुणि है, बहुवन कौन सिंगार', 'प्रीतम प्रेम कोइ कहे आना', 'अब साई सो नेह करु फेरि न यह संयोग', 'निश्चै तोर रूप मैं हेरा', 'बिन साई नहि और सोहाई' 'आपु देखि सो और सिखावै' प्रभृति तथ्यों के प्रकाश में कहा जा सकता है कि यह कृति सर्वथा जायसी की भाषा के साँचे में ढली हुई है और है अत्यन्त मनोरंजक।

घाघ और भडुरी की कहावतें हिन्दी में प्रख्यात हैं, फिर भी दृष्टान्तों, लोकोक्तियों, मुहावरों एवं कहावतों की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। कहावतों के आधार पर इस प्रकार उपदेशमूलक दृष्टान्तों के उपस्थापन से सम्बद्ध संभवत: यह हिन्दी का अपने ढंग का प्रथम अनमोल ग्रन्थ है।[२]

१—इसके आगे की पंक्ति (हस्तलिखित प्रति में) नहीं है।

२—द्रष्टव्य—'मसला' या 'मसलानामा'।

४

कथावस्तु का संघटन : मूल स्रोत और अन्य उपकरण

(हस्तलिखित प्रतियां, रचनाकाल और लिपि)

पदमावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियां

हिन्दी साहित्य के विद्वानों के अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि जायसीकृत पदमावत की हस्तलिखित प्रामाणिक प्रतियाँ पर्याप्त संख्या में मिली हैं। और शोध करने पर और भी अनेक प्रतियों के उपलब्ध होने की संभावना है। गार्साँ द तासी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रो० अस्करी प्रभृति विद्वानों की शोधों के परिणामस्वरूप पदमावत की अनेक बहुमूल्य प्रतियों का पता चला है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने पदमावत का सम्पादन करते हुए चार मुद्रित प्रतियों और एक कैथी लिपि में लिखित हस्तलिखित प्रति का सहारा लिया था, किन्तु उन्होंने इस प्रति का कोई विवरण नहीं दिया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रंथावली के संपादन में सोलह प्रतियों के आधार पर पाठ-संशोधन का कार्य किया है। इनमें पांच प्रतियां बहुत ही अच्छी थीं। उनमें से चार प्रतियां लन्दन के कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस में हैं।

(१) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति—यह २१८ पत्रों में है और पूर्ण है। इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। इसके प्रतिलिपिकार (इबादुल्लाह अहमद) खान मुहम्मद गोरखपुर के थे। इन्होंने शव्वाल, ११०७ हि० में किन्हीं दीनानाथ के लिए यह पुस्तक लिखी थी।

(३) महाराज काशीनरेश के सरस्वती-भवन (पुस्तकालय) की प्रति—इसमें कुल २१६ पत्र हैं। यह प्रति भी पूर्ण है। यह नागराक्षरों में है। यह फाल्गुन

सं० १८१८ की लिखी हुई है ।

(३) एडिनबरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की प्रति–इसमें कुल ३३८ पत्र हैं। यह प्रति भी पूर्ण है । प्रतिलिपिकाल सन् ११४२ हि० है । डा० गुप्त का कथन है कि यह प्रति अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है ।

(४) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति–इसमें कुल १८० पत्र हैं। प्रति पूर्ण है और फारसी अक्षरों में अत्यन्त सुलिखित है। प्रतिलिपिकाल १११४ हि० है।

(५) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति–इसमें कुल १८४ पत्र हैं। प्रति पूर्ण है । अक्षर फारसी हैं, और लेख अत्यन्त सुन्दर हैं। लिपिकार रहीम-दांद खां, शाहजहांपुर । प्रतिलिपिकाल ११०६ हि० है।

(६) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रति–यह प्रति लीथो प्रेस द्वारा छापी हुई है । इसमें कुल ६३६ पृष्ठ हैं। प्रति फारसी अक्षरों में है। अहमद अली मुन्शी द्वारा उर्दू में किया हुआ अनुवाद भी इसी में है । इसका प्रकाशन कानपुर से शेख मुहम्मद अजीमुल्लाह, पुस्तक-विक्रेता द्वारा १३२३ हि० में हुआ था। इसकी एक प्रति श्री सैयद कल्बे मुस्तफा जायसी के पास भी है। विश्वविद्यालय की प्रति में ७३ से १०४ तक के पृष्ठ नहीं हैं। मुस्तफा साहब की प्रति में ये पृष्ठ हैं ।

(७) मुन्शी नवलकिशोर की लीथो प्रति–इसमें ३५३ पृष्ठ हैं। लिपि फारसी है। हाशिए में उर्दू भावार्थ भी दिया गया है। टीकाकार हैं श्री हसनअली। प्रकाशन-तिथि १८७० ई० है। प्रथम संस्करण १८६५ में छपा था। यद्यपि यह प्रति मुद्रित है, किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि इसका पाठ भी मूलत: किसी एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

(८) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (किंग्स कालेज) की प्रति–यह प्रति भी पूर्ण और फारसी अक्षरों में सावधानी के साथ लिखी हुई है । संभवत: यह प्रति ११५३ हि० की है।

(९) रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की प्रति–इसमें कुल १६७ पत्र हैं। प्रथम पत्र गायब है। शेष प्रति पूर्ण है। प्रति कैथी अक्षरों में लिखी हुई है। लिपिकार हैं झब्बूलाल कायस्थ, मौजा शरीतारा सलेमपुर आसपुर सरकार, सूबा बिहार, मुकाम–अजीमाबाद महले–सुलतानगंज। प्रतिलिपि की तिथि ११९८ हि०, सं० १८४२ जेठ बदी दो, मंगलवार है।

(१०) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति–इसमें कुल २१३ पत्र हैं। प्रति फारसी अक्षरों में सुलिखित है। प्रति पूर्ण है। संभवत: यह प्रति

लगभग २०० वर्ष प्राचीन है।[1]

(११) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति–इसमें २११ पत्र हैं। प्रति फारसी लिपि में हैं। लिपिकाल नहीं दिया गया है। संभवतः वह १७वीं या १८वीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

(१२) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति– इसमें कुल ३४० पत्र हैं। प्रति नागराक्षरों में सुलिखित और पूर्ण है। यह सचित्र प्रति है। इसमें ३४० पृष्ठ मूल पदमावत के हैं और ३४० चित्रों के पृष्ठ हैं। चित्र अत्यन्त कलापूर्ण हैं। लिपिकार हैं थान कायथ, मिर्जापुर।

(१३) श्री गोपलचन्द्र सिंह की प्रति (उत्तरप्रदेश सरकार, आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी, सेक्रेटेरियट, लखनऊ)–इसमें पृष्ठसंख्या नहीं दी गई है। प्रति फारसी अक्षरों में अत्यन्त सुलिखित और पूर्ण है। लिपिकार ईश्वरप्रसाद, निवास स्थान—गंगा गौरौनी है। लिपिकाल ११९५ हि० और लिपिस्थान करतारपुर बिजनौर है।

(१४) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति—फारसी अक्षरों में सुलिखित है और पूर्ण है। लिपिकाल सन् ३६ (?) दिया हुआ है। लिपिकार का नाम तो नहीं 'पर पता दिया गया है—मुहम्मद नगर, परगना सिधौरा, सरकार लखनऊ।

(१५) महन्त गुरुप्रसाद की प्रति–प्रति नागराक्षरों में और पूर्ण है। लिपिकाल सं० १८५८ है। यह प्रति हर गांव के, डा० जगेसरगंज, जिला सुल्तानपुर के महन्त गुरुप्रसाद के पास है।

(१६) सैयद कल्बे मुस्तफा की प्रति–प्रति खंडित है। खंडित अंशों को मुस्तफा साहब ने किसी अन्य प्रति से पूर्ण करा लिया है।[2]

(१७) मनेर शरीफ की प्रति–यह प्रति फारसी अक्षरों में है। इसमें पदमावत अखरावट और कहारानामा नामक ग्रन्थ हैं। अखरावट की पुष्पिका में ९११ हि० दिया हुआ है। प्रो० हसन अस्करी का विचार है कि यह प्रति शाहजहां के काल में १७वीं शती में लिखी गई थी। इस प्रति के पाठ अत्यन्त उच्च कोटि के हैं।[3] पटना विश्वविद्यालय ने इसकी एक प्रति कराई है।[4]

१—जा० ग्रं०, डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ५ (भूमिका)।

२–जा० ग्रं०, डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ७।

३–प्रस्तुत प्रति के 'अखरावट और कहारानामा' वाले अंश की फोटो लिपि मेरे पास भी हैं। पाठ की दृष्टि से ये प्रतियां अत्यन्त शुद्ध हैं।

४–जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग २९, १९५३, पृ० १०-४०। प्रो० अस्करी का लेख 'अवधी ग्रंथों की एक नई हस्तलिखित प्रति'।

(१८) बिहार शरीफ की प्रति – यह प्रति फारसी लिपि में है। यह ११३६ हि० (सन् १७२४) में मुहम्मदशाह बादशाह के राज्य-संवत् के पांचवें वर्ष में लिखी गई थी। यह प्रति भी सम्पूर्ण है, सुलिखित है और पाठ की दृष्टि से भी मूल्यवान है। यह प्रति अस्करी, पटना विश्वविद्यालय के पास है।

(१९) रामपुर राज्य पुस्तकालय की प्रति – यह प्रति अत्यन्त सुन्दर प्रामाणिक और सुलिखित है। लिपि फारसी है। अरबी के जबर, जेर, पेश आदि के उपयोग से अवधी भाषा के दोहे-चौपाई अत्यन्त सावधानी के साथ लिखे गये हैं। इसमें कुल ६५९ दोहे हैं। चौपाइयों के नीचे प्रत्येक शब्द का फारसी में पर्याय भी दिया गया है। इस प्रति के अन्त में कहरानामा की एक सम्पूर्ण प्रति है।[1]

(२०) पेरिस की प्रति[2] फ्रान्स (पेरिस) के राजकीय पुस्तकालय में भी नागरी अक्षरों में लिखित एक प्रति है।

(२१) लीड की प्रति[3] – लीड के पुस्तकालय में कैथी नागरी अक्षरों में भी एक प्रति सुरक्षित है, जो बिलमेट पर आधारित है।

(२२) ईस्ट इण्डिया हाउस, पुस्तकालय की प्रति – अपने पृष्ठों की प्रत्येक पीठ पर चमकीले चित्रों से सुसज्जित यह ७४० फोलियो पृष्ठों की एक सुन्दर पुस्तक है। यह नागरी अक्षरों में लिखी गई है।[4]

(२३) उदयपुर वाली प्रति – महाराज उदयपुर, पुस्तकालय में भी पदमावत की एक पूर्ण और सुलिखित प्रति है। इसका लिपिकाल १८३८ ई० है।

(२४) बिहार रिसर्च सोसाइटी पटना की प्रति – यह प्रति प्रो० अस्करी को मिली थी और इस सोसाइटी के पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह उर्दू लिपि में लिखी गई है। इसके लिपिकार हैं पटना के भोलानाथ। यह १८वीं शती में लिखी गई थी।

(२५) बसी नकवी की प्रति – जायस के श्री वसी नकवी के पास पदमावत की एक सुलिखित और पूर्ण प्रति है। इसकी लिपि नागरी है। ग्रन्थावली

१–रजा लाइब्रेरी रामपुर स्टेट की प्रति – इसमें कहरानामा की प्रति भी है। बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष की कृपा से मुझे इसकी एक माइक्रोफिल्म कापी प्राप्त हुई है।

२–जाती संग्रह नं०३१ (गार्सादतासी ने अपने इस्त्वार दी ल तितरैत्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी मूल के द्वितीय संस्करण में इसे फारसी अक्षरों में लिखी गयी कहा है। (देखिए – हिंदुई साहित्य का इतिहास – गार्सादतासी, पृष्ठ ८४)।

३–लीड के पुस्तकालय के सूची पत्र की संख्या १३४–१३५।

४–इस्त्वार द ला लितैरैत्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी, वा० १ जायसी।

के रूप में इसमें पदमावत, अखरावट, कहरानामा और मसलानामा नामक ग्रन्थ संगृहीत हैं। इसमें लिपिकाल नहीं दिया गया है।

(२६) श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी की प्रति – जायस क्षेत्र के सेमरौता जू० हा० स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास भी 'पदमावत' की एक सुलिखित प्रति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में ३३० पृष्ठ हैं। इसमें पदमावत, कहरानामा, मसलानामा एवं अखरावट क्रम से संग्रहीत हैं। लिपिकार हैं मदनदास जी।

(२७) उदयपुर स्टेट लाइब्रेरी में पदमावत की एक हस्तलिपि प्रति है। यह कैथी लिपि में है। ग्रियर्सन ने अपने सम्पादन में इसका उपयोग किया था।

(२८) महंत गुरुचरण प्रसाद दास, स्थान डाक्टर बछरावां, जिला रायबरेली के पास 'पदमावत' की एक सुलिखित प्रति है।

(२९) ना० प्र० सभा, खोज-रिपोर्ट १९४७, २८७ क : पदमावत की एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया हुआ है। सभा की खोज रिपोर्टों में पदमावत के हस्तलेखों की सूची इस प्रकार है–

२० : १०९
२३ : २८४ ए० बी०
२६ : २८९ बी०
२९ : २२५
४२ : ५३७
४७ : २८७ ख''

एक नए हस्तलेख का विवरण १९४७–४८ वाली खोज रिपोर्ट में है। इसका प्रतिलिपिकाल १९३५ वि० है। यह फारसी लिपि से नागरी में लिखा गया है। लेखक पं० रामदीन द्विज (खो० रि० ४८–४९–५० ई०)।

३०–३१–३२ कैथी लिपि की तीन प्रतियों का उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा[1] ने किया है जिसमें प्रति न० १ का प्रतिलिपिकाल १७५५ ई० है। बैतालगढ़ की (अपूर्ण) प्रति का लिपिकाल १७०१ ई० है और प्रति न० २ का लिपिकाल १८२२ है। इनके विषय में डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'ये प्रतियां बहुत अशुद्ध हैं और इनमें पाठान्तर भी अनेक हैं।

(३३) भारत कला भवन, काशी वाली प्रति – यह प्रति कैथी लिपि में है।

इधर शोध के सिलसिले में पदमावत की और भी कई हस्तलिखित प्रतियों का पता चला है।

१–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०९।

पदमावत का रचनाकाल

जायसी ने पदमावत के रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है—

सन् नौ सै सैंतालिस अहै । कथा अरम्भ बैन कवि कहै ।"[१]

नौ सै सैंतालिस हिजरी (१५४० ई०)[२] में शेरशाह दिल्लीपति हुमायूं को परास्त करके दिल्ली का सम्राट बन चुका था । इस समय तक वह दिल्ली का सम्राट ही बना था । उसका राज्याभिषेक ७, शव्वाल, ९४८ हि० (अर्थात् २५–२६ जनवरी १५४२ ई०) को हुआ था ।[३] जायसी ने शाहे वख्त के रूप में दिल्ली के सुल्तान शेरशाह के वैभव का अत्यन्त वैभववन्त उल्लेख किया है—

सेरसाहि दिल्ली सुल्तानू । चारिउ खण्ड तपइ जस भानू ।।[४]

९४७ के अनेक पाठान्तर पदमावत की प्रकाशित-अप्रकाशित अनेक प्रतियों में मिलते हैं ।

(१) ग्रियर्सन तथा सुधाकर द्विवेदी ने ९४७ हि० पाठ ही स्वीकार किया है ।

'सन् नौ सै सैंतालिस अहा । कथा अरम्भ बैन कवि कहा ।।[५]

(२) जायसी ने ९४७ हि० (१५४०–४१ ई०) में अपने 'पदमावती' काव्य की रचना की थी ।[६] मिश्र बंधुओं ने ९२७ पाठ माना है ।[७]

(३) पं० रामचन्द्र शुक्ल ने जा० ग्रं० के प्रथम संस्करण में सैंतालिस पाठ दिया था, किन्तु द्वितीय संस्करण में उन्होंने 'नव सै सत्ताइस' पाठ को ही स्वीकार किया और लिखा कि 'पहले संस्करण में दिये हुए सन् को शेरशाह के समय में लाने के लिए, 'नव सै सैंतालिस' पाठ माना गया था । फारसी लिपि में 'सत्ताइस और 'सैतालिश' में भ्रम हो सकता है । इस पदमावत का एक पुराना बंगला अनुवाद है उसमें भी 'नव सै सत्ताइस' पाठ माना गया है ।

"शेख मुहम्मद जाति जखन रचित ग्रंथ संख्या सप्तविंशनवशत ।"

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने सन् १६५० ई० के आसपास आलो-उजालो नामक एक कवि से कराया था ।[८]

१—जा० ग्रं०, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृ० १३५ (२४।१) ।

२—एलिमेंट्स आफ न्यूइश ऐण्ड मोहमडन कैलैंडर्स, पृ० ४९१ ।

३—ना० प्र० पत्रिका, भाग १२, पृ० १४२ (पदमावत की तिथि और रचनाकाल) ।

४—पदमावत (स्तुति खण्ड) १३।१ से आगे ।

५—पदुमावति, ग्रियसर्न तथा सुधाकर द्विवेदी, पृ० ३५ ।

६—हिंदुई साहित्य का इतिहास, गार्सां द तासी, पृ० ८६ ।

७—मिश्र बंधुविनोद, भाग १, पृ० २९० (प्र० सं०) ।

८—जा० ग्रं०, पं० रामचन्द्र शुक्ल (भूमिका), पृ० ६ ।

डा० माताप्रसाद गुप्त को भी कुछ प्रतियों (द्वि० ५, तृ० २, पं० १) में नौ सै सत्ताइस पाठ मिला है, किन्तु जा० ग्रं० में उन्होंने 'नौ सै सैंतालिस' पाठ को ही मूल पाठ माना है।[1] डा० गुप्त को दो प्रतियों में (द्वि० ७ और ३) पैंतालिश पाठ मिला है।[2]

(५) पं० चन्द्रबली पाण्ड़ेय ने भी ९२७ हि० को पदमावत का रचनाकाल माना है।[3]

(६) ए० जी० शिरेफ[4] और डा० रामकुमार वर्मा[5] ने भी नौ सै सैंतालिस पाठ उपयुक्त माना है।

(७) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[6] पं० परशुराम चतुर्वेदी,[7] डा० कमलकुल श्रेष्ठ[8] प्रभृति विद्वानों ने ९२७ हि० को ही पदमावत का रचनाकाल माना है।

गोपालचन्द्र जी[9] की प्रति में 'नौ सै सत्ताइस' पाठ है। भारत कलाभवन, काशी की कैथी प्रति में ९३६ हि० (१५३०) पाठ मिलता है।

"सन् नौ सै छत्तीस जब रहा। कथा उरेहि बएन कवि कहा।"[10]

बिहार शरीफ[11] की प्रति में ९४८ हि० पाठ मिलता है। रामपुर स्टेट, पुस्ताकलय[12] की प्रति में ९४७ हि० पाठ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रतियों के माध्यम से पदमावत की रचना तिथि से सम्बद्ध पांच तिथियाँ – ९२७ हि०, ९३६ हि०, ९४५ हि० ९४७ हि० और ९४८ हि० में हमारे समक्ष विद्यमान हैं। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत विशेष उल्लेखनीय है।

१–जा० ग्रं०, डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १३५।
२–वही (पाद टिप्पणी)।
३–ना० प्र० प०, भाग १२, पृ० १४२।
४–पदुमावति, ए० जी० शिरेफ, भूमिका, ।
५–हि० सा०, का आ० इ०, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २३—२४।
६–हिन्दी साहित्य, आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४०—४१।
७–सूफी काव्य-संग्रह, पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १०४।
८–हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य (पृ० ४१—४२) और 'म० मु० जायसी', डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० २४—२५।
९–पदमावत (प्राक्कथन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३।
१०–भारत कला भवन की कैथी प्रति।
११–जे० बी० एस० आर, भाग ३९, ।
१२–पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३।

'९२७ हि० पाठ के पक्ष में एक तर्क यह भी है कि अपेक्षाकृत क्लिष्ठ पाठ है। विपक्ष में यही युक्ति है कि शेरशाह के राज्यकाल से इसका मेल नहीं बैठता। मैंने अर्थ करते समय शेरशाह वाली युक्ति पर ध्यान देकर ९४७ पाठ को समीचीन लिखा था, किन्तु अब प्रतियों की बहुल सम्मति और क्लिष्ट पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि ९२७ मूल पाठ था और जायसी ने पदमावत का आरम्भ इसी तिथि में अर्थात् १५२१ ई० में कर दिया था। ग्रंथ की समाप्ति कब हुई कहना कठिन है, किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्वयं देखा था। बाबर के राज्यकाल का तो स्पष्ट उल्लेख है ही (आखिरी कलाम ८।१)। उसके बाद हुमायूं का राज्यारोहण, चौसा में शेरशाह द्वारा उसकी हार (९४५ हि०), कन्नौज में शेरशाह की उस पर पूर्ण विजय (९४७ हि०), फिर शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर राज्याभिषेक (९४८ हि०) ये घटनायें उनके जीवन-काल में घटीं। मेरे मित्र श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा ने मुझे एक बुद्धिपूर्ण सुझाव दिया है कि पदमावत के विविध हस्तलेखों की तिथियां इन घटनाओं से मेल खाती हैं। हि० ९२७ ई० में आरम्भ करके अपना काव्य कवि ने कुछ वर्षों में समाप्त कर लिया होगा। उसके बाद उसकी हस्तलिखित प्रतियां समय-समय पर बनी रहीं। भिन्न तिथियों वाले सब संस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चालू किये गये। ९२७ वाली कवि लिखित प्रति मूल प्रति थी। ९३६ वाली प्रति २ की मूल प्रति हुमायूं को राज्यारोहण की स्मृति रूप में चालू की गई-हि० ९४५ वाली प्रति जिसका माताप्रसाद जी गुप्त ने पाठान्तर में उल्लेख किया है। शेरशाह की चौसा-युद्ध में हुमायूं पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त चालू की गई। ९४७ वाली चौथी प्रति शेरशाह की हुमायूं पर कन्नौज-विजय की स्मृति का संकेत देती है। पांचवीं या अन्तिम प्रति ९४८ हि० की है, जब शेरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठकर राज्य करने लगा था। मूल ग्रंथ जैसे का तैसा रहा। केवल शाहे वख्त वाहा अंश उस समय जोड़ा गया। पदमावत जैसे महाकाव्य की रचना के लिए चार-पांच वर्षों का समय लगा होगा। (और शेरशाह को आशीर्वाद देनेवाली) घटना के पश्चात् ही शाहे वक्त की प्रशँसा वाला अंश शुरू में जोड़ा गया होगा।'[1]

इस विषय में निवेदन है कि जब जायसी ने 'मसनवीशैली' में और 'चार-पांच वर्षों' के समय में पदमावत की रचना की थी, और समय की आवश्यकता के अनुसार पांच प्रतियां चालू की गईं, तो स्पष्ट है कि पदमावत की एक नहीं अपितु पांच प्रतियां प्रामाणिक हैं और जब कि इन प्रतियों में पर्याप्त पाठभेद भी मिलता है, तो यह भी स्पष्ट है कि ये अंश प्रक्षिप्त नहीं है – ऐसी स्थिति में हिन्दी में एक

१-पदमावत (प्राक्कथन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३-३४।

नहीं, अपितु जायसी कृत पांच 'पदमावत' हो जाते हैं, डा० माताप्रसाद गुप्त या किसी अन्य विद्वान् के पदमावत के वैज्ञानिक सम्पादन का पुनः क्या अर्थ। दूसरा ज्वलन्त प्रश्न है शाहेवक्त का। मसनवी पद्धति के अनुसार प्रायः सूफी कवियों ने ग्रन्थ में ईश्वर गुरु आदि के स्तवन के अनन्तर शाहेवक्त का उल्लेख किया है और '९२७ हि० में आरम्भ करके जायसी के ४–५वर्षों के समय में इसे पूर्ण किया, तो अवश्य ही तत्कालीन बादशाह का उल्लेख किया होगा – किन्तु पदमावत की किसी भी प्रति में सिकन्दर लोदी या इब्राहीम लोदी (९२७ हि०), बाबर (१५२६) या हुमायूं (९३६ हि०) में से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। पुनः यदि ये संस्करण समय की आवश्यकता के अनुकल चालू किये गये', तो इन विभिन्न तिथियों वाले पदमावतों में उनके शाहेवक्त कहां हैं ? उनके वर्णन भी तो अवश्य अपेक्षित हैं ? इस कथन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जायसी एक ऐसे दरबारी कवि थे, जो अनेक युद्धों और अनेक बादशाहों की विजय या राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अपने काव्य के नये-नये संस्करण निकालते चलते थे। ९३६, ९४५ और ९४८ का समर्थन जो एक-एक प्रतियों में मिलता है – हमें किसी निश्चित परिणाम तक नहीं पहुँचाता। इसलिए स्पष्ट है कि यह मात्र प्रतिलिपिकारों का प्रमाद है।

आचार्य पं० चन्द्रबली पांडेय का कथन है कि सन् ९२७ हि० का जीवन-काल १२ दिसम्बर सन् १५२० से ३० नवम्बर १५२१ ई० तक था। यह वह समय था जब इब्राहीम लोदी और उसका सहोदर भ्राता जलाल परस्पर सिंहासन के लिए लड़ रहे थे जो सिकन्दर के नाम पर रो रहा था। अब मथुरा के हिन्दू यमुना में स्नान करने का साहस कर लेते थे, बाल बनवा सकते थे और अपनी मूर्तियों को बूचर खाने में जाने से रोक सकते थे। सिकन्दर का आतंक इब्राहीम भोग रहा था। जनता उसके प्रतिकूल पड़ती थी। अनादर अपमान एवं अन्याय में वह सिकन्दर का चचा निकला। बंगाल का हुसेनशाह कभी सत्य पीर की उपासना कर सदा के लिए सो गया था। सारांश यह कि एक भी बादशाह उस समय ऐसा न था जो जायसी का शाहेवक्त होता। सम्भव है कि जायसी ने पवित्र पदमावत को उन शासकों को बचाकर रखना ही उचित समझा हो और उनकी वन्दना में शाहेवक्त को स्थान न दिया हो।

पं० चन्द्रबली पांडेय की उपर्युक्त सम्भावना विशेष महत्व नहीं रखती। जायसी ९३६ हि० वाली प्रति में शाहेवक्त से रूप में हुमायूं का उल्लेख कर सकते थे अथवा इसके पूर्व के बादशाह बाबर का उल्लेख कर सकते थे (जब कि उन्होंने आखिरी कलाम ८।१ में 'बाबर साह छात्रपति राजा' कहकर उसका उल्लेख भी किया है।) परन्तु अभी तक प्राप्त समस्त प्रतियों में केवल शेरशाह का उल्लेख है।

दिल्ली के सुलतान-पद पर शेरशाह का अभिषेक २५ जनवरी १५४२ ई०

को (ता० ७ शव्वाल, हि० सन् ९४८) को हुआ था।[1] ९४७ हि० को पदमावत का रचना-काल मानने पर यह कठिनाई उपस्थित होती है कि जायसी ने शेरशाह को दिल्ली का सुलतान कहा है, किन्तु ९४७ हि० में शेरशाह का राजतिलक नहीं हुआ था। "पदमावत का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु में संभवत: दशहरा को ही हुआ। यदि हमारा अनुमान ठीक है, तो उस समय शेरशाह दिल्ली का सुलतान नहीं था। वह तो अगस्त के लगभग दिल्ली में पहुंचता है। अत: इस दृष्टि से ९४७ हि० को ठीक मानना उचित नहीं जान पड़ता।"[2]

आचार्य चन्द्रबली पांडेय की संभावना के अनुसार यदि पदमावत का रचना-काल ग्रीष्म ऋतु में मान भी किया जाय, तो भी ९३७ हि० को पदमावत का रचना-काल मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। कन्नौज के युद्ध में हुमायूं पर शेरशाह की विजय १७ मई १५४० ई० को (९ दिन बीते ९४७ हि०) हुई थी। अत: ९४७ हि० में शेरशाह का दिल्ली सुलतान के रूप में वैभववन्त उल्लेख असंगत नहीं है। पदमावत का निर्माणकाल कवि ने इस प्रकार दिया है–

"सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कबि कहा॥"

इस का अर्थ होता है कि पदमावत की कथा के प्रारंभिक बचन कवि ने सन् ९२७ हि० (१५२० ई० के लगभग) में कहे थे। पर ग्रंथारम्भ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार 'शाहेवक्त 'शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासन-काल का आरम्भ ९४७ हि० अर्थात् १५४० ई० से हुआ था। इस दशा में यही सम्भव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् १५२० ई० में ही बनाए थे, पर ग्रन्थ को १९ या २० वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया 'अहा' (–था) और कहा का प्रयोग किया है।[3] 'पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस संभावना' का कारण बताते हुए लिखा है–" (जा०ग्रं० के) पहले संस्करण में दिए हुए सन् को शेरशाह के समय में लाने के लिये 'नव सै सैंतालिस' पाठ माना गया था। फारसी लिपी में सत्ताइस और सैंतालीस में भ्रम हो सकता है। पर पदमावत का एक पुराना बंगला अनुवाद है उसमें भी 'नव सै सत्ताइस पाठ माना गया है–

'शेख मुहम्मद जाति जखन रचति ग्रन्थ संख्या सप्तविंश नवशत।'

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने सन् १६५० ई० के आसपास आलो-उजालो नामक एक कवि से कराया था।"[4]

१–ना० प्र० पत्रिका, भाग १२, पृ० १४२।

२–ना० प्र० पत्रिका, भाग १२, पृ० १२६।

३–जा० ग्रं०, पं० रामचंद्र शुक्ल (भूमिका), पृ० ९।

४–वही।

और 'कहा' पुकार–पुकार कर कह रहे हैं कि जायसी भूतकाल की बातें कह रहे हैं, वर्तमान की नहीं।'

पं० चन्द्रबली पाण्डे[1] ने भी इसी प्रकार की कुछ बातें कही हैं—' 'अहा'

डा० माताप्रसाद गुप्त[2] ने १६ हस्तलिखित प्रतियों के वैज्ञानिक परीक्षण के अनन्तर 'अहा' और 'कहा' के स्थान पर 'अहै' और 'कहै' पाठ स्वीकार किया है। उन्हें केवल एक प्रति (प्रति १) में अहा' और 'कहा' पाठ मिला है। इस १५ प्रतियों में प्राप्त होनेवाले 'अहै' और 'कहै' पाठ को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। अतः शुक्लजी और पांडेयजी की भूतकाल की बाधा का सहज ही समाधान हो जाता है। जहां तक आलो-उजालो 'वाले' सप्तविंश नवशत की तिथि का प्रश्न है वह अवश्यमेव महत्वपूर्ण है (इस पर हमने आगे गहन विचार प्रस्तुत किया[3] है) इसका कारण यह है कि यह अनुवाद १२५०' ई० के आसपास का है। पदमावत की अभी तक एक भी इतनी प्राचीन हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हो सकी है। यह तो सुनिश्चित है कि आलो–उजालो[4] ने पदमावत का अनुवाद किसी हस्तलिखित प्रति से ही किया होगा। फारसी लिपि की घसीट लिखावट के कारण अनुवादक ने सैंतालिस का सत्ताइस पढ़ लिया है। यह भी संभावना की जा सकती है कि ऐतिहासिक ज्ञान से अभाव के शेरशाह की प्रशंसा और ९२७ हि० वाले असामंजस्य को अनुवादक ने लक्षित नहीं किया।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने भी ९२७ हि० की डफली में अपना राग मिलाया है। उन्होंने शुक्लजी के मत का पिष्ठपेषण करते हुए बंगला अनुवाद का उल्लेख किया है, तदुपरांत वे लिखते हैं—"प्रस्तुत लेखक १५२० ई०–९२७ हि० को मानने वाले विद्वानों से मतैक्य रखते हुए एक और तर्क ९२७ हि० के पक्ष में रखता है वह यह कि जायसी ने अपना अंतिम ग्रन्थ "आखरी (?) कलाम" १५२९ ई०–९३६ हि० में लिखा था। यह अन्तर्साक्ष्य (?) से प्रमाणित एवं निर्विवाद है जब कि कवि का आखिरी कलाम अर्थात् कवि की अन्तिम रचना ९३६ हि० की है तो पद्मावती निश्चय रूप से उससे पूर्व की होगी।[5] अंत में कुलश्रेष्ठ जी मैदान छोड़कर भागते हुए (इस समस्या को छोड़कर) कह ही देते हैं, 'प्रस्तुत पुस्तक के लिए यह विवाद विशेष महत्वपूर्ण नहीं होता।"[6] जब कवि ने अंतिम रचना ९३६ हि० में बनाई,

---

१–ना० प्र० पत्रिका, भाग १२, पृ० १२५–२६।

२–जा० ग्रं० डा० ग्रं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १३५। ३–देखिए विशेष।

४–ए हिष्ट्री आफ बेंगली लैंग्वेज, दिनेशचन्द्र सेन, पृ० ६।

५–हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य : डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० ४१—४२।

६–वही, पृ० ४२।

तो ६४७ हि० में पद्मावती की कथा आरम्भ ही कैसे की होगी।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि आखिरी कलाम को कवि की 'अंतिम रचना' कहना नितान्त भ्रान्त है। 'आखिरी कलाम' तो कवि-कृत अंतिम दृश्य (प्रलय-आखिरी समय) से संम्बद्ध कलाम (क़लाम–साहित्यिक कृति) है। इस ग्रन्थ में अंतिम समय का वर्णन काव्यात्मक शैली में किया गया है।[2]

'आखिरी कलाम' की रचना–तिथि ६३६ हि० है। डा० कुलश्रेष्ठ ने ही लिखा है कि 'बाद में जब कि सारा ग्रंथ लिख डाला गया, तो शेरशाह के समय में कवि ने उसकी भूमिका लिखी। उसमें भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करते हुए प्रारंभ काल और सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा की।'[3]

इस प्रकार कुलश्रेष्ठ जी ने ६२७ हि० को ही पदमावत का रचनाकाल माना है। यहां पर प्रश्न यह उठता है कि जब जायसी कृत पदमावत जो ६२७ हि० में शुरू हुआ था, अधूरा पड़ा हुआ था। जायसी को इसे भी पूरा करना था (डा० कुलश्रेष्ठ के शब्दों में 'शेरशाह के समय में भूमिका' लिखनी थी), तो वे अपनी एक रचना का नाम अंतिम रचना क्यों रखते? यदि इसे अंतिम रचना माने भी तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि ६३६ हि० तक पदमावत की रचना पूर्ण हो चुकी थी। स्पष्ट ही कुलश्रेष्ठ जी के कथन में व्याघात एवं असंगति दोष हैं। इतना निश्चित है कि पद्मावत की समाप्ति शेरशाह के समय में ही हुई है निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आखिरी कलाम का अर्थ लगाने में कुलश्रेष्ठ जी ने भूल कर दी है, आखिरी कलाम जायसी की अंतिम रचना नहीं है। उसकी रचना के पश्चात् पदमावत और 'चित्ररेखा' की रचना हुई है। इन दोनों ग्रन्थों के वृद्धावस्था के वर्णन एवं पदमावत में आए हुए–'दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहिं जुगराज'—शेरशाह को आशीष देने के उल्लेख अवश्य ही 'बाबरसाह छत्रपति राजा (आ० क० ८। १) के परवर्ती हैं। पदमावत को ९२७ हि० की रचना मानने वाले प्रायः विद्वानों का तर्क है कि 'शाहे वक्त के रूप में शेरशाह के वैभव, पराक्रम आदि के वर्णन वाला अंश ६४७ हि० (६४८ हि० चन्द्रबली पांडेय के अनुसार) में पदमावत की समाप्ति के पश्चात् जोड़ दिया गया। पदमावत २० वर्षों में लिखा गया हो, या ४–५ वर्षों के समय में यह बात स्वीकार्य है, किन्तु काव्य की रचना के अनन्तर शेरशाह की प्रशंसावाला अंश (भूमिका की भांति) इसमें जोड़ दिया गया है—यह बात वर्तमान युगीन लेखकों के लिए उपयुक्त है, जायसी के लिए नहीं। यह बात ६२७ हि० की युक्ति की संगति

१–मलिक मुहम्मद जायसी, डा० कमल कुलश्रेष्ठ पृ० २५।

२–द्रष्टव्य-इसी प्रबंध का अध्याय ३, आखिरी कलाम।

३–मलिक मुहम्मद जायसी : डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० २५।

बैठाने के लिए कही जाती है। 'स्तुति–खंड' के अंत में लिखी गई यह बात भी समीचीन नहीं प्रतीत होती। प्रायः सूफी कवि ग्रन्थारम्भ में ही जगत के करतार की वन्दना करते हैं, गुरू का स्तवन करते हैं, शाहेवक्त का उल्लेख करते हैं। मसनवी शैली के प्रबंध काव्य के लिए ये बातें आवश्यक मानी गई हैं। अतः स्तुति-खंड निश्चित रूप से पहले ही लिखा गया था। ९२७ हि० की अपेक्षा ९४७ हि० को अधिक प्रामाणिक मानने के लिए यह भी एक अत्यन्त प्रबल तर्क है। जायसी भारतीय महाकाव्य की शैली में एवं मुख्य रूप से मसनवी शैली के (समन्वयात्मक रूप) में अपना काव्य सर्जित करने जा रहे थे। उन्होंने प्रारम्भ में ही नियमानुसार 'समस्त जगत के करतार राजा की बन्दना की है। उसी ने सृष्टि की उत्पत्ति की है, मुहम्मद साहब का पुण्य-स्मरण भी (ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ईश्वर और मुहम्मद, पीर आदि) ग्रन्थ के आरम्भ में मसनवी पद्धति के अनुसार किया है। मुहम्मद साहब, उनके चार यार तदनन्तर ४५ पंक्तियों में शेरशाह के वैभव एवं प्रताप का वर्णन, पश्चात् पीर सैयद अशरफ, गुरु महदी आदि का उल्लेख है, पश्चात् ग्रन्थ की रचना-तिथि बताई गई है।

"सन् नौ सै सैंतालिस अहै। कथा अरम्भ बैन कबि कहै।"

महात्मा तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के प्रारम्भ में बन्दनादि के पश्चात् ग्रन्थारम्भ की तिथि दी है—

संवत सोरह सै इकतीसा। करउं कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। एहि दिन रामचरित परकासा।।"[1]

'सिंघल दीप वर्णन' के प्रारम्भ में कवि ने लिखा है—

सिंघलदीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनि बरनि सुनावौं।।[2]

पंक्ति के 'अब गावौं 'औ सो पदुमिनि' पद द्रष्टव्य हैं। इन पंक्तियों के ठीक पहले कवि ने लिखा है—

"सन नौ सै सैंतालिस अहै। कथा आरम्भ बैन कवि कहै।।
सिंघलदीप पदुमिनि रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी।।"[3]

इन पंक्तियों से भी स्पष्ट है कि स्तुति-खंड समाप्त करने और सो पदुमिनि का इंगित करने के पश्चात् ही कवि ने सिंघल दीप वर्णन का आरम्भ किया। इस प्रकार यह कथन महत्वहीन हो जाता है कि 'शेरशाह' वाला अंश बाद में जोड़ा गया है और ९४६ हि० सन् में जायसी के ग्रन्थारम्भ की बात सुदृढ़ और प्रमाणित

१–रामचरित मानस, बालकाण्ड।
२–जा०ग्रं०, डा० माता प्रसादगुप्त, पृ० १३६।
३–वही, पृ १३५।

हो जाती है ।

डा० माताप्रसाद के समक्ष शुक्लजी की अपेक्षा पदमावत की हस्तलिखित प्रतियां अधिक थीं । शुक्लजी[1] ने चार मुद्रित एवं एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर पदमावत का संपादन किया था । डा० माताप्रसाद गुप्त[2] के समक्ष १६ हस्त-लिखित प्रतियां थीं । इन सोलह प्रतियों में तीन प्रतियों में 'सत्ताइस' और एक प्रति में 'अहा' और 'कहा' पाठ मिले थे, दो प्रतियों में सैंतालिस के स्थान पर 'पैंतालिस' पाठ भी मिले थे । इन समस्त प्रतियों का वैज्ञानिक ढंग से संपादन करते हुए उन्होंने 'सन नौ से सैंतालिस अहै' पाठको ही मूल पाठ माना है ।[3]

पदमावत की एक अत्यन्त सुन्दर प्रति रामपुर स्टेट के राज पुस्तकालय में सुरक्षित है । यह प्रति अत्यन्त प्रामाणिक है । इसे १६७५ ई० में मुहम्मद शाकिर नामक सूफी संत भक्त ने अपने उपयोग के लिए लिखा था । डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों से यह विलक्षण मेल खाती है । इस प्रति में रचनाकाल ६४७ हिजरी दिया हुआ है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लिपिक और लिपि के भ्रम के कारण ६४७ मूल पाठ को ६२७ पढ़ा गया और एक बड़े विवाद का जन्म हुआ । गार्सां द तासी, ग्रियर्सन तथा प्रो० हसन अस्करी की मान्यताएं रामपुर स्टेट पुस्तकालय की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रति, डा० माताप्रसाद गुप्त की ११ प्रतियों एवं उनके संपादन आदि के साक्ष्य एवं उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षत: यह स्पष्ट है कि पदमावत का प्रारम्भ ६४७ हि० में ही हुआ था और यह ग्रन्थ ६४९ हि० के पूर्व समाप्त हो चुका था ।

पदमावत की लिपि : एक सर्वेक्षण

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के समक्ष 'पदमावत' की आदि प्रति के मूल अक्षरों के विषय में एक बहुत वितंडावाद-सा खड़ा कर दिया गया है । कुछ विद्वान उसे निश्चित रूप से फारसी अक्षरों में, कुछ विद्वान नागराक्षरों में और कुछ विद्वान कैथी अक्षरों में लिखा हुआ कहते हैं ।

सबसे पहले गर्सा दतासी ने [१८३९ ई० में] लिखा कि जायसी ने ६४७ हि० (१५४०—४१ ई०) में पद्मावती काव्य की रचना की । यह रचना, जो हिन्दी में लिखी गई है, या तो फारसी अक्षरों में, या देवनागरी अक्षरों में लिखी गई

१—जा० ग्रं०, पं रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य, पृ० १ ।

२—जा० ग्रं०, डा० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० २ ।

३—वही, पृ० १३५ ।

है और जिसमें ६५०० के लगभग छंद है।''[१] फारसी या देवनागरी अक्षरों में लिखे जाने का कारण यह हैं कि उन्होंने जिन प्रतियों का उल्लेख किया है उनमें से कई फारसी अक्षरों में हैं और कई नागराक्षरों में। स्पष्ट है कि उन्होंने आदि प्रति के अक्षरों की समस्या पर गहराई से विचार नहीं किया।

डा० ग्रियर्सन[२] ने लिखा है कि मूलतः पद्मावत फारसी अक्षरों में ही लिखा गया था और इसका कारण उनका (जायसी का) धर्म था।'' ग्रियर्सन के मत से पदमावत के फारसी लिपि में लिखे जाने की बात स्वतः सिद्ध थी।

पं० रामचन्द्र शुक्ल का (सन् १९२४ ई०) मत है कि आदि प्रति की लिपि फारसी थी। झंझट का एक बड़ा कारण यह भी था कि जायसी के ग्रन्थ फारसी लिपि में लिखे गए थे। हिन्दी लिपि में उन्हें पीछे से लोगों ने उतारा है।''[३]

बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि ''पदमावत की प्रतियां अधिकतर उर्दू लिपि में मिलती हैं। संभव हैं, और अधिक संभव है कि जायसी ने स्वयं उसे उर्दू लिपि में लिखा हो। उर्दू में सत्ताईस और सैंतालीस लिखने पर उनमें अधिक अन्तर नहीं होता। थोड़े से भ्रम में सैंतालीस का सत्ताईस पढ़ा जा सकता है। उर्दू लिपि की यह कठिनाई जगतप्रसिद्ध है।''[४] इसी भूमिका में उन्होंने यह भी लिखा है कि पदमावत का एक बंगाली अनुवाद है,[५] जो लगभग सन् १६५० ई में अनुवाद हुआ था और जिसमें ९२७ पाठ हैं। उन्होंने ९२७ पाठ को फारसी या उर्दू अक्षरों के कारण विभ्रष्ट पाठ समझ कर ९४७ को अधिक पसंद किया।

पं० चन्द्रबली पांडेय ने (१९३१ ई० में) एक लेख लिखकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि जायसी ने पदमावत की रचना नागरी अक्षरों में की थी।[६] पांडेय जी का कथन है कि ग्रियर्सन, शुक्ल जी, डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखक इस बात पर सावधानी और वैज्ञानिक प्रकार से विचार किए बिना निश्चित निर्णय कर

१—गार्सां द तासी: हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृ० ८६।

२—इट इज आल सो ड्यू टू हिज रिलिजन दैट ही ओरिजिनली रोट इट इन दि परशियन कैरेक्टर'—सर जार्ज ग्रियर्सन, सटीक पदुमावती, पृ० ५।

३—पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली (वक्तव्य) पृ० ९ (प्रथम संस्करण १९२४ द्वितीय संस्करण के प्र० स० वाले वक्तव्य को परिवर्तित कर दिया गया है)। जा० ग्र० (द्वि० सं०) वक्तव्य, पृ० ८।

४—डा० श्यामसुन्दरदास, संक्षिप्त पदमावत, भूमिका, पृ० १२।

५—वही, पृ० १३।

६—चंद्रबली पांडेय का लेख : ना० प्र० पत्रिका, काशी, भाग १२, सं० १९८८, पृ० १०१–१४५।

गये हैं ।

पाण्डेय जी का मत संक्षप ने इस प्रकार है—

'जायसी के समय में उर्दू का तो नाम भी नहीं था ।'[१] 'हिन्दी भाषा को लिखने के लिए फारसी अक्षरों में आवश्यक विचार भी नहीं हुए थे ।[२]

अर्थात् पाण्डेय जी के मत से जायसी ने उर्दू अक्षरों का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि उस काल में ऐसे अक्षर वर्तमान नहीं थे ।

भले ही पाण्डेय जीं के लेख के समय (१९३१ ई०) यह बात अज्ञात रही हो, किन्तु आज तो यह स्पष्ट है कि जायसी के समय से बहुत पहले की उर्दू रचनायें हमारे समक्ष उपस्थित हैं । ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट में पदमावत की एक हस्तलिखित प्रति दर्ज की गई है । इसका प्रस्तुत हस्तलेख सं० १९३५ वि० का लिखा हुआ है । इसमें पदमावत के विषय में लिखा है—

"संवत् पंदरह सै अशी सात अधिक सम होइ ।
रच्यो जगत हित योग विधि पढ़ै ज्ञान पथ होइ ।।

खोज विवरण (२६–२८९ बी०) में भी र० का यही है—

संवत् पंदरह सै असी सात अधिक सब होइ ।
रच्यो जगत हित योग यह पढ़े ज्ञान पथ होइ ।।

इस हस्तलेख की एक विशेषता यह है कि इसमें लिखा है कि 'वितस्तातीर स्थित गढ़ नामक पुरी के नवाब मुहम्मद ने प्रस्तुत ग्रन्थ को फारसी लिपि से नागरी लिपि में करने की आज्ञा दी । राजा बहादुर कायस्थ फारसी लिपि को पढ़ते रहे और पं० रामदीन मिश्र उसे नागरी लिपि में लिखते रहे—

"इतिश्री जायस नगर वासी मलिक मोहमद कृत पदमावति भाषा पोथी सम्पूर्णम्' अथ लिखना प्रयोजन लिष्यते—

डिल्ली नगर नरेश अपारा । तिन्हकर वंश भयौ उजियारा ।
सरित वितस्ता तीर गढ़ नाऊं । पुरी विदित सबकर बल ठाऊं ।।
तहाँ नरेश महंमद नामा । सूरबीर बल सब हित धामा ।
ईछा तिन धनपतिहि समाना । सूर्य अग्नि समजात बषाना ।।
बुद्धि गुनी पंडित सब आवै । सिद्धि वीर भूपति सिर नावैं ।।
भइ अज्ञा नरपतिहि विशेषी । फारसी ते नागरि पुनि लेषी ।।
मह द्वौ कातिक मार्ग सोहाई । कायथ राजबहादुर गाई ।।
संबत् वोनईस सै पैंतीसा । रामदीन द्विज मिश्र लिषीसा ।।

१–चन्द्रवली पाण्डेय का लेख पृ० १०४ । २–वही, पृ० १२० ।

श्रवण दोस कछु मोहि इतो, जो सुनि सो लिषि दीन ।
समुझि बूझि पंडित गुनी बिगर बतावन दीन ।।

फारसी लिपि से नागरी लिपि करने में जो कठिनाई होती है, वह प्रस्तुत लेख से स्पष्ट है। सम्भवतः पदमावत के रचनाकाल को १५८७ वि० लिखने में इसके अतिरिक्त उनका 'श्रवण-दोष' भी कारण था। उन्होंने इस ग्रंथ का नाम 'पदमावती' लिखा है। उनके समक्ष पदमावत फारसी लिपि में था। यदि उर्दू लिपि तब तक आविष्कृत नहीं हुई थी, तो भी फारसी की विशुद्ध लिपि में पदमावत को लिखने में कौन सी बाधा या कठिनाई थी ? पाँडेय जी ने (शाहजहां के समय में एक ऐसी लिपि प्रचलित हुई, जिसका नाम उर्दू पड़ गया) उर्दू की उत्पत्ति का जो यह अनुमान किया है असंगत है, क्योंकि शाहजहाँ के दो-तीन सौ वर्ष पहले के उर्दू लिपि में लिखे ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं।

पाडेय जी का यह भी मत है कि जायसी का उद्देश्य हिन्दू जनता में सूफी मत का प्रचार था, इसलिये उन्होंने स्वभावतः नागरी लिपि में लिखा होगा। यदि यह मान लें कि जायसी (खालिकवारी की लाखों प्रतियां ऊटों पर लदवा कर देश में बांटी गई थीं) पदमावत को प्रकाशित करके प्रचारित करते थे, "तब तो यह बात ठीक हो सकती है, किन्तु जो प्रति जायसी ने अपने हाथ से लिखी, वह उन्हीं के पास रही होगी और जिस लिपि से जायसी अधिक परिचित थे उसी में वह लिखी गई होगी। उस आदि प्रति की कुछ अनुकृतियां की गई होंगी, वे भले ही नागरी या कैथी में लिखी गई हो, यह और बात है।"[१]

पांडेय जी का एक प्रबल तर्क यह है कि अखरावट की रचना कैथी वर्ण-माला के आधार पर हुई है। अतः जायसी को इसे कैथी लिपि में लिखना पड़ा। और चूँकि उन्होंने अखरावट को कैथी में लिखा, अतः पद्मावत को भी इसी लिपि में लिखा होगा। अखरावट कैथी लिपि में लिखी गई हो, यह सम्भव है, किन्तु इस बात से पदमावत के भी कैथी में लिखे जाने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं निकलता। यहाँ पर यह तथ्य भी द्रष्टव्य है कि कबीर कृत 'ज्ञान चौंतीसा' की ही शैली में जायसी ने अखरावट की रचना की है। अपने मत सिद्धान्त या प्रतिपाद्य के स्पष्टीकरण के लिए हमारे देश में प्राचीन काल से ही इस प्रकार की सर्जनायें की जाती रही हैं। जायसी ने भी इस पद्धति-विशेष को ग्रहीत किया है, और इसी कारण यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जायसी ने नागरी या कैथी लिपि में ही पदमावत की रचना की थी।

श्री ए० जी शिरेफ[२] का कथन है कि लिपि के सम्बन्ध में चन्द्रबली पाण्डेय

१—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सं० २००९, पृ० ३३६।
२—ए० जी शिरेफ, पदुमावति, भूमिका, पृ० ५६।

के मत उन्हें ठीक नहीं जंचते । पदमावत से पूर्व अखरावट के निर्माण की बात वे नहीं मानते । शिरेफ ने अपने मत के समर्थन में पदमावत के तीन स्थलों की चर्चा की है। उनके मत से ये स्थल फारसी लिपि के मत का पर्याप्त अंशों में समर्थन करते हैं। प्रथम स्थल में अवश्य पाठ के संदेह का एक प्रमाण है जो अवश्य ही फारसी लिपि के कारण हुआ। डा० माताप्रसाद गुप्त[1] ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उनके पास कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर वे कह सकें कि ये भूलें आदि प्रति के अनुकरण करने में हुई । ये भूलें प्रतिलिपि की किसी भी परम्परा में हुई हो सकती हैं । अत: आदि प्रति के विषय में वह प्रमाण महत्वहीन है ।

द्वितीय स्थल में पदमावत के रचनाकाल के पाठ की समस्या है । डा० माताप्रसाद गुप्त की जायसी ग्रंथावली से स्पष्ट है कि ९२७ का पाठ दो परस्पर असम्बद्ध हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है । और उसी बंगाली अनुवाद में (सन् १६५० ई० के लगभग) । इन परिस्थितियों से हम अनुमान कर सकते हैं कि यह भूल यदि आदि प्रति से अनुकरण करने में नहीं हुई, तो भी उसके बहुत उपरान्त नहीं हुई । किन्तु इस बात से भी किसी निश्चित निर्णय पर पहुंचा नहीं जा सकता ।[2]

तृतीय स्थल पर खण्ड चालीस (स्त्री-भेद वर्णन-खण्ड) के द्वितीय दोहे में (४०।२।१) कवि ने 'संखिनी' जाति की स्त्री की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । शुक्लजी के संस्करण में 'संखिनी' शब्द है । उन्होंने टिप्पणी में लिख दिया है कि "कवि ने शायद 'शंखिनी' के स्थान पर 'सिंघिनी' समझा है ।[3] 'ए० जी० शिरेफ का कथन है कि जायसी ने फारसी में लिखित पुराने ग्रन्थों का अनुकरण करते हुए इस शब्द को भ्रम से पढ़कर 'सिंघिनी' समझ और इसलिए सिंहिनी के गुण इस छन्द में भर दिए । डा० माताप्रसाद गुप्त ने बिना कोई भिन्न पाठ दिए 'सिंघिनी' शब्द दिया है । फारसी और उर्दू की प्राचीन प्रतियों को देखने वाले लोगों को ज्ञात है कि इन लिपियों में प्राय: लिखने में क और ग में भेद नहीं रखा गया है । प्राचीन हस्तलेखों की फारसी में 'सिंघिनी' औ 'संखिनी' दोनों शब्द एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं । यह सत्य है कि इस प्रसंग में जायसी ने 'उर अति सुभर खीन अति लंका' आदि पंक्तियों में ऐसी स्त्री का वर्णन किया है जो सिंह के गुणों से समन्वित है । कामशास्त्र में ऐसे गुणों का वर्णन नहीं मिलता । यहाँ प्रतिपाद्य इतना ही है कि शुक्लजी का पाठ 'संखिनी' ही प्रामाणिक पाठ है । किन्तु इस शब्द से या इस स्थल के छन्दों से जो भी अनुमान निकलते हैं उनका पदमावत की आदि प्रति से कोई सम्बन्ध नहीं

१—डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका, पृ० २५-२६ ।

२—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सं० २००६, पृ० ३३७ ।

३—जा० ग्रं० (ना० प्र० सभा काशी) दोहा २ पृ० २०७ ।

है। शिरेफ ने एक और तर्क दिया है – मेरी समझ में आठवें अध्याय के आठवें छन्द में निश्चित प्रमाण है। इस छन्द का आशय 'रस' और 'रिस' के पन पर निर्भर है। केवल फारसी लिपि में, जहां इन दो शब्दों का रूप एक ही है; ऐसा पन हो सकता है।" किन्तु उस छन्द का स्पष्ट गुण शब्दों में अनुप्रास का प्रयोग है। फारसी अक्षरों के विषय में कोई भी प्रमाण यहां नहीं है।

'आदि प्रति की लिपि' पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत की प्राप्त प्रतियों में से तीन (प्र०२, द्वि० ७, तृ० ३) नागरी लिपि में हैं, शेष फारसी या अरबी लिपि में हैं, किन्तु इन तीन नागरी लिपि की प्रतियों के भी आदर्श फारसी या अरबी लिपि में थे।[1]

इस प्रसंग में गुप्तजी का प्रथम उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि नागरी और कैथी की प्रतियां फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियां हैं। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए गुप्तजी ने १३९ शब्दों के 'सामान्य पाठ और प्रति का पाठ' प्रदर्शित किया है। जिनमें नागरी प्रति का पाठ स्थापित पाठ से भिन्न है और जिनमें भेद या भूल इस कारण हो सकी है कि प्रति लेखक फारसी लिपि का अनुकरण कर रहा था। ऐसी भूलें प्रधानतया ह्रस्व स्वरों की गड़बड़ी की हैं (जो फारसी लिपि में अलिखित हैं) क, ग की गड़बड़ी और इन अक्षरों की गड़बड़ी जिनकी पहचान फारसी लिपि में बिन्दुओं पर निर्भर है। डा० गुप्त द्वारा दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदर्श प्रति फारसी या अरबी में थी। डा० गुप्त ने इस बात को स्वीकार करने के बावजूद लिखा है – "इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि पदमावत की जितनी भी प्रतियां प्राप्त हुई हैं, चाहे नागरी की हों चाहे अरबी की–सबका मूल आदर्श कवि की प्रति नागरी लिपि में थी।"[2] इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने ६६ उदाहरण दिए हैं। उनके कथन का अर्थ है कि ये पाठ की ऐसी भ्रष्टता के निरूपण हैं जो नागरी प्रति के ही अनुकरण करने में सम्भव हैं। मात्र इसी तर्क के आधार पर यह मानना कि आदि प्रति नागरी में थी, सुसंगत नहीं जान पड़ता। डा० गुप्त ने एक ओर यह स्वीकर किया है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदर्श प्रति फारसी थी और दूसरी ओर बिना व्याख्या दिए यह लिखा है कि 'नागरी की हो चाहे फारसी की, सबका मूल आदर्श कवि की प्रति नागरी लिपि में थी। इन ६६ उदाहरणों में से ५९ ऐसे हैं जहां ब और व और ओ (या औ) की गड़बड़ी होती है। ब और व की गड़बड़ी नागरी में अवश्य होती है और कैथी में उनका रूप एक ही है। किन्तु अधिक उदाहरण ब और ओ (या औ) की

१–जा० ग्रं० (हि० ए०) पृ० १९।

२–डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका, पृष्ठ २४।

गड़बड़ी के हैं, अर्थात्, जब और जो (या जौ) इत्यादि। यहां दो बातें स्पष्ट हैं। दोनों रूप के शब्द एक ही अर्थ के हैं, और नागरी लिपि में उनके रूप समान नहीं। डा० गुप्त की किसी व्याख्या के अभाव में हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि उनका विचार यह है कि प्रतिलिपि करते समय एक मनुष्य मूल प्रति पढ़ देता था और दूसरा मनुष्य प्रतिलिपि लिखता था। यह यदि अनिवार्य नहीं, तो साधारण रीति है। ऐसा होते हुए जब पाठक व्यक्ति नागरी की प्रति पढ़ देता, तो 'जब' और 'जव' की गड़बड़ी नागरी लिपि में सम्भव था और पाठक के उच्चारण में 'जव' और 'जौ' की गड़बड़ी हो सकती थी।[१]

इस विचार के विरुद्ध कहा जा सकता है कि 'ब और व की गड़बड़ी भारत की अधिकतर भाषाओं की लिखावट तथा उच्चारण में होती है और जितना पूरब की ओर हम आगे चलते हैं उतनी ही गड़बड़ी बढ़ती है, यहाँ तक कि बंगाल में ब और व में कोई भेद नहीं होता, वे एक ही अक्षर होते हैं। पदमावत की भाषा पूरबी हिन्दी है, इसलिए स्वाभाविकतः व और ब की गड़बड़ी हो सकती है, चाहे पाठक ने नागरी प्रति से पढ़ दिया हो, चाहे फारसी से। इसके अतिरिक्त जब और जौ लगभग समान अर्थ के हैं और जहां समानार्थक नहीं वहाँ अर्थ का भेद महत्वपूर्ण नहीं है (जैसे सब और सो) हां, जहाँ अर्थ समान है बहुत सम्भव है कि वहाँ प्रति लेखक ने उस रूप को ग्रहण किया होगा जिस रूप से वह अधिक परिचित था।"

"अन्य सात उदाहरणों में से चार 'कुरुंम' (कूर्म) और 'कुरुंभ' की गड़बड़ी के हैं। यह बात अधिक विश्वास योग्य है, क्योंकि नागरी में म और भ में कुछ अधिक भेद नहीं है, तथा कैथी में भेद इससे भी कम है। यह पाठ (अर्थात् कुरुंभ) सब प्रतियों में है – नागरी प्रतियों में भी। सम्भव है कि अनुनासिकता के आधिक्य के कारण पिछले व्यञ्जन की गड़बड़ी उच्चारण में हुई। या सम्भव है कि कुरुंभ ही जायसी की बोली का ठीक शब्द हो, क्योंकि कुरुंभ पाठ इस ग्रन्थ में कहीं नहीं मिलता। किन्तु अकेले यही आदि प्रति की नागरी लिपि वाली बात को सिद्ध नहीं कर सकता।"

अन्य तीन उदाहरणों में से एक (रूई के स्थान पर रूद) केवल एक नागरी प्रति में मिलता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह भूल आदि प्रति से प्रतिलिपि करने में हुई। यह भूल उसके अनंतर की भी हो सकती है।

दूसरा उदाहरण (छार के स्थान पर ठार या थार) प्रश्नवाचक चिन्ह लिए हुए हैं।[२] इसका स्पष्ट अर्थ हैं कि डा० गुप्त ने स्वयं इस पाठ को संदिग्ध माना है। प्रश्न-चिह समन्वित शब्द को नागरी लिपि का पक्ष मजबूत करने के लिए प्रस्तुत

१–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सम्वत् २००९, पृ० ३३९।

२–डा० माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३६० (दोहा ३५२।५७)।

करना स्वत: अत्यन्त अशक्त तर्क है ।

(रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागों कंत छार? जेउं तोरें ।[1]")

"तीसरा उदाहरण गुप्त जी की ही भूल जान पड़ता है, क्योंकि वह क और ग की गड़बड़ी का बात है, जो फारसी लिपि का गुण है, नागरी का नहीं[2] ।"

गुप्त जी ने उदाहरणों की विविधता, प्रामाणिता एवं संख्याधिक्य से यह प्रदर्शित किया है कि तीनों नागरी प्रतियां फारसी प्रतियों की किसी न किसी समय की हुई प्रतिलिपियां हैं; किन्तु सभी प्रतियां नागरी मूल से उत्पन्न हैं। उनका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ, क्योंकि उनके उदाहरण विश्वासजनक नहीं हैं और गुप्त जी व्याख्या से उसका समर्थन नहीं करते।'

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि 'जायसी ने अपनी पदमावत किस लिपि में लिखी इसका विचार स्व० चन्द्रबली पांडेय ने किया है। उनकी धारणा यही है कि फारसी लिपि में वह जायसी द्वारा न लिखी गई होगी, हो सकता है कि वह नागरी लिपि में न लिखी गई हो, प्रत्युत कैथी लिपि में लिखी गई हो, जो लिखने – पढ़ने के लिए पूर्वी अंचल में बहु प्रचलित थी, चूंकि उनकी रचना मुसलमान बंधुओं के मध्य फैली, इसलिए उसकी अनुलिपियां फारसी लिपि में अधिक मिलती हैं।'

आचार्य मिश्र जी ने सम्भावनाओं की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि 'हो सकता है कि यह नागरी लिपि में न लिखी गई हो' यह तथ्य उचित और संगत है, क्योंकि (डा० माताप्रसाद गुप्त को प्राप्त) तीनों नागरी प्रतियाँ भी मूलत: फारसी प्रति की अनुकृतियां हैं।[3]

आचार्य मिश्रजी के मतानुसार दूसरी सम्भावना है कि वह "कैथी लिपि में लिखी गई हो, जो पढ़ने–लिखने से पूर्वी अंचल में बहुप्रचलित थी।" यह सम्भावना दृढ़ आधार पर स्थित है, क्योंकि पदमावत की कई कैथी प्रतियां भी मिली हैं।

उपर्युक्त समस्त मतों के विवेचनों के पश्चात् भी लिपि का प्रश्न वैसे ही है, जैसे वह ग्रियर्सन के समक्ष था। ग्रियर्सन का अनुमान है कि जायसी ने इसे फारसी लिपि में लिखा था।[4] 'ए० जी० शिरेफ ने भी लिखा है कि 'जायसी ने अपनी परिचित भाषा में जन-साधारण के लिए कविता लिखते हुए स्वभावत: उन अक्षरों का प्रयोग किया होगा जो उनकी शिक्षा के मूल थे। जायस मुसलमानी

१–ना० प्र० पत्रिका, काशी, वर्ष ५७ सं २००६, पृ० ३४०।

२–वही, पृ० ३४१ ।

३–डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका पृ० १९।

४–पदुमावति ए० जी० शिरेफ, भूमिका, पृ० ५–६।

शिक्षा का केन्द्र था। 'प्रतियों और पुस्तकों की भी परम्परा आधुनिक काल से पहले फारसी लिपि में होती जा रही थी, जिससे अनुमान निकलता है कि आदि प्रति उसी लिपि में थीं। डा० गुप्त ने प्रमाणित किया है कि सब हस्तलिखित नागरी प्रतियां फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियां हैं (यद्यपि वे मूलप्रति को नागरी की मानते हैं) यह भी एक प्रमाण है। पाठ की जो विभ्रष्टता दो सौ वर्ष से कम की अवधि में हो गई, वह भी फारसी लिपि का पक्ष पुष्ट करती है। सूर्यकान्त शास्त्री का भी मत है कि पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है और यह ग्रंथ फारसी लिपि में लिखा गया था।'[1]

जायसी का फारसी भाषा पर असाधारण अधिकार था, यह सिद्ध हो चुका है। उनकी भाषा अवधी अवश्य है पर उनकी लिपि फारसी ही थी। फारसी में ही उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे थे। फारसी से कैथी या नागराक्षरों में उसकी प्रतिलिपियां-अनुलिपियां हुई हैं, इन प्रतियों की विशाल परम्परा का मूल फारसी था और यह सम्भवत: यही कारण था कि उनकी कृति जनता से दूर ही रही। वे हिन्दी की विशाल परम्परा में उपेक्षित हो रहे। अलाओल आदि के अनुवाद में जो सन् की भ्रष्टता है, वह भी फारसी लिपि के कारण है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पदमावत की आदि प्रति फारसी में लिखी गई थी।

कथानक का मूल स्रोत

जायसी के पूर्व कई प्रेमाख्यानक काव्य प्रणीत हो चुके थे। चंदायन (१३७९ ई०) और मृगावती (१५०३ ई०) के ही अनुरूप पदमावत की भी सर्जना हुई है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमकथाओं की एक सुदृढ़ परम्परा है। अभी कुछ समय पूर्व तक कितनी ही प्रेमकथाओं के नाम मात्र ज्ञात थे, कुछ के नाम तक अज्ञात थे। इधर अनेक प्रेमगाथाओं का उद्घाटन हुआ है। अत: आज के शोध के छात्र के लिए पहले से बहुत अधिक प्रेमकथाओं के अध्ययन का सुयोग प्राप्त है।[2]

प्रेमगाथा–परम्परा का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता कि है प्रेम गाथाओं का आधार और मूल स्रोत कोई न कोई प्रेम कथा होती है – कवि उस कथा में अपने कल्पना–विलास का सौन्दर्य भर देता है। इस प्रेम कथा को कवि प्राय: – दोहा–चौपाई, छन्द में प्रबन्ध – काव्य की किसी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करता है, इस कथा में लोकतत्व की प्रधानता होती है। ऐतिहासिक तथ्यों को भी लोकवार्ता के

१–पं० सूर्यकांत शास्त्री : पदुमावति, प्रीफेस, पृ० ५ (१९३४), लाहौर।
२–डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ० २७३।

माध्यम से गृहीत किया जाता है।

तुलसीदास, सूरदास आदि महाकवियों ने पौराणिक आख्यानों के माध्यम से अपनी सर्जनाएँ की हैं, किन्तु प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों ने अपने काव्यों में कथाओं का वही रूप ग्रहण किया है, जो लोक–जीवन की, लोक–गीतों की तथा लोक कथाओं की मौखिक (और कभी-कभी साहित्यिक) परम्परा में ढल चुका था। "कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीला गान और तुलसीदास का रामचरित-मानस अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिन्दू जनता का ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परन्तु जनसाधारण का एक विभाग, जिसमें धर्म का स्थान नहीं था, जो अपभ्रन्श साहित्य के पश्चिमी आकर से सीधे चला आ रहा था, जो गांवों की बैठकों में कथानकरूप से और गान–रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने प्रौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुंचाई।[1] आचार्य पं० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि सूफी प्रेम-काव्य गुणाढ्य की 'वृहत्यकथा से चली आती हुई प्रेम-कथाओं की परम्परा में आते हैं। सूफी प्रेमकथाओं का स्रोत लौकिक है, ये सभी कथाएं लोक-जीवन की परम्परा से गृहीत हैं। परिमाणतः हम देखते हैं कि सभी सूफी प्रेमकाव्यों में अद्भुत साम्य है। चन्दायन, मृगावती, पदमावत, मधुमालती, चित्रावली कनकावली प्रभृति प्रायः सभी काव्यों की कथाओं का मूल स्रोत एक ही है – लोकजीवन की कोई प्रेमकथा।

हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानियां ली हैं, वे सब हिंदुओं के घर में बहुत दिनों से चली जाती हुई कहानियां हैं, जिनमें आवश्यकता-नुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर-फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिंदू हैं। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति-सूत्र में बद्ध दिखाकर एक अखण्ड जीवन-समष्टि का आभास देना हिंदू-प्रेम-कहानियों का वैशिष्ट्य है। मनुष्य के घोर दुःख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं, पशु-पक्षी भी संदेश पहुंचाते हैं। यह बात इन कहानियों में भी मिलती है।[3]

हिन्दी प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों में हिन्दू जीवन और धर्म के प्रति उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति है। इसी के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रेम-पीर की अभिव्यक्ति का सहज, सरल और मनोरंजक निरूपण किया है।

१–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० ६४–६५ (१९५९)।
२–डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७१।
३–पं० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक-प्रचलित कथानक ही 'प्रेमाख्यानकों के मूल स्रोत हैं। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'प्रेमकाव्य की कथायें अधिकतर काल्पनिक ही हैं, पर जायसी ने कल्पना के साथ-साथ इतिहास की सहायता से अपने पदमावत की कथा का निर्माण किया है। रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अलाउद्दीन का पदमावती के आकर्षण में चित्तौर पर चढ़ाई करना ऐतिहासिक।'[1] वर्मा जी का प्रस्तुत कथन तर्क संगत है, परन्तु इतिहास के आलोक में ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि पदमावत में चित्तौर, दिल्ली, अलाउद्दीन के नाममात्र ऐतिहासिक हैं। शेष समस्त बातें कवि-कल्पना प्रसूत हैं। वस्तुत: जायसी ने अपनी कहानी को मनोमय और लोकाकर्षक बनाने के लिए इतिहास की छौंक दे दी है। यह छौंक नाममात्र की छौंक है, इसके मूल में एतिहासिकता ढूंढना व्यर्थ है। इनमें कतिपय नामों की इतिहास सम्मतता के अतिरिक्त सर्वत्र निजंधरी कथाओं के सदृश कल्पना-तथ्य का (फैक्ट्स ऐण्ड फिक्शन का) योग रहता है।[2]

प्रेमगाथाओं की कथा-वस्तु के मूल तन्तु और पदमावत:—

प्रेमगाथाओं की मूल कथावस्तु संक्षेप में यह है—

१—नायक किसी दूत या अन्य माध्यम से नायिका की प्रशंसा सुनता है या दर्शन करता है और एक दूसरे पर या दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।
२—नायक नायिका को प्राप्त करने के लिए गृहत्याग कर चल पड़ता है।
३—मार्ग के प्रत्यूह—मार्ग में अनेक विघ्न आते हैं, किन्तु वह उन्हें पार कर जाता है।
४—उसकी रक्षा भी होती है।
५—दैवी या अमानवीय शक्ति उसकी सहायता करती है, अन्त में वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और घर लौटता है।
६—लौटते समय भी विघ्न आते हैं, किंतु वह पार हो जाता है।
७—अन्त में मिलन होता है।
८—(दु:खान्त)।

किसी न किसी रूप में ये तन्तु प्राय: सभी प्रेमगाथाओं में मिलते हैं। एक आठवां तन्तु दु:खान्त का भी हो सकता है जिसमें किसी कारण से नायक—नायिका

१—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५१८।
२—द्रष्टव्य—(आगे) पदमावत की ऐतिहासिकता : एक पुन: सर्वेक्षण, पृ० १८३ और 'पदमावत का काव्य—सौन्दर्य अध्याय १ (इसमें पदमावत की कथावस्तु और मूलस्रोत का सांगोपांग विवेचन किया गया है।)

में व्यवधान हो जाता है और एक या दोनों की मृत्यु हो जाती है।[1]

इन तन्तुओं के समान ही कुछ और महत्वपूर्ण तन्तु हैं जिनका उपयोग प्रायः सभी प्रेमगाथाओं में हुआ है—

(१) नख-शिख-वर्णन।
(२) विरहवर्णन : बारहमासा।
(३) युद्ध वर्णन और
(४) सती होना।

इस सूची को और बढ़ाया जा सकता है, किन्तु मूलरूप से मुख्य तन्तु इतने ही हैं। जायसी ने भी इन्हीं मूल तन्तुओं के माध्यम से पदमावत की कथा-वस्तु का संघटन किया है।

जायसी द्वारा गृहीत 'पदमावती' की कथा

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतवर्ष के सूफी कवियों ने लोकजीवन तथा साहित्य में प्रचलित निजंधरी कथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक सन्देशों को जनता तक पहुँचाने के प्रयत्न किये हैं। कुतबन ने 'मृगावती' में लिखा है कि यह कथा पहले से चली आ रही थी। इसमें योग, शृंगार और विरह-रस वर्तमान थे मैंने दुबारा फिर उसी कथा को लिपिबद्ध किया है। कुतबन का यह दावा अवश्य है कि पहले से ही प्रचलित कथा के अर्थ को उन्होंने नये सिरे से स्पष्ट किया है।

'पुनि हम खोलि अरथ सब कहा।'[2]

ठीक इसी प्रकार का एक अन्तःसाक्ष्य 'पदमावत' में भी प्राप्त होता है। जो स्पष्ट इंगित करता है कि पदमावती की कहानी जायसी की निजी कल्पना की उपज नहीं है—

'सन् नौ सै सैंतालिस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा॥
सिंहलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलउदीन देहली [सुलतानू] राघव चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंकन आई। हिन्दू तुरकन्ह भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥'[3]

इन पंक्तियों में जायसी ने यह स्पष्ट बताया है कि आदि से अन्त तक जैसी

१—डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ०२७३-२७४
२—कुतबन : मृगावती, स्तुति खण्ड (अप्रकाशित) हस्तलिखित प्रति से।
३—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, पृ० ६ (दोहा २४)।

गाथा है उसे ही वे 'भाखा–चोपाई' में निबद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। सिंहल की पद्मिनी रानी की कहानी जायसी ने सुनी थी। यह गाथा 'सिंहल की पद्मिनी रानी से लेकर 'हिन्दू तुरकन्ह भई लराई।' तक पूरी होती है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अन्त तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक–गाथा है, इसमें सन्देह नहीं। यह एक ऐसी लोक–कथा है जिसमें ऐतिहासिक पुरुषों और स्थानों के नाम प्रविष्ट कर दिए गए हैं।

पं० चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार जायसी का यह दावा है कि पद्मावती की कथा रसपूर्ण और अत्यन्त प्राचीन थी। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को ही है। इस कथन की पुष्टि पाण्डेय जायसी की निम्नलिखित पंक्तियों से करते हैं—

कवि वियास कंवला रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी॥
नियरे दूर फूल जस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चांटा॥
भंवर आइ बन खंड सन, लेइ कंवल कै बास।
दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास॥[1]

'कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहां एक से एक बढ़कर कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है, फिर भी किसी कवि से न बन पड़ा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह कार्य तो मुझ जैसे अहिन्दू से बन पड़ा।'[2]

इस प्रकार इन साक्ष्यों से निष्कर्ष निकलता है कि पद्मावती की कहानी भारतवर्ष की प्राचीन कहानियों में से है। जायसी ने इस कहानी को ('सुना' भी था) पूर्ववर्ती पद्मावती रानी की साहित्यिक कहानी एवं लोक प्रचलित पद्मावती वाली कहानी की परम्पराओं से गृहीत करके गहन चिन्तना, विशाल कल्पना एवं महत् अनुभूति के मिश्रण से विकास एवं अनुपम काव्य-सौन्दर्य प्रदान किया है।

पदमावत की कथा

कवि ने पदमावत के प्रारम्भ में समस्त जगत के करतार की पावन बन्दना की है। पश्चात् मुहम्मद और उनके चार यारों का उल्लेख, गुरु-स्तवन, रचना-तिथि का उल्लेख और कथा-निर्देश करते हुए सिंघल द्वीप, उसकी सघन अमराई, उसके राजा गंधर्वसेन, राजसभा, उद्यान, नगर इत्यादि का वर्णन करके कवि ने मूल कथा का वर्णन प्रारम्भ किया है।

१–वही, पृ० ६ (दोहा २४)।
२–पं० चन्द्रवली पाण्डेय : हिन्दी कवि-चर्चा, पृ० १३४।

है। शिरेफ ने एक और तर्क दिया है – मेरी समझ में आठवें अध्याय के आठवें छन्द में निश्चित प्रमाण है। इस छन्द का आशय 'रस' और 'रिस' के पन पर निर्भर है। केवल फारसी लिपि में, जहां इन दो शब्दों का रूप एक ही है, ऐसा पन हो सकता है।" किन्तु उस छन्द का स्पष्ट गुण शब्दों में अनुप्रास का प्रयोग है। फारसी अक्षरों के विषय में कोई भी प्रमाण यहां नहीं है।

'आदि प्रति की लिपि' पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत की प्राप्त प्रतियों में से तीन (प्र०२, द्वि० ७, तृ० ३) नागरी लिपि में हैं, शेष फारसी या अरबी लिपि में हैं, किन्तु इन तीन नागरी लिपि की प्रतियों के भी आदर्श फारसी या अरबी लिपि में थे।[१]

इस प्रसंग में गुप्तजी का प्रथम उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि नागरी और कैथी की प्रतियां फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियां हैं। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए गुप्तजी ने १३९ शब्दों के 'सामान्य पाठ और प्रति का पाठ' प्रदर्शित किया है। जिनमें नागरी प्रति का पाठ स्थापित पाठ से भिन्न है और जिनमें भेद या भूल इस कारण हो सकी है कि प्रति लेखक फारसी लिपि का अनुकरण कर रहा था। ऐसी भूलें प्रधानतया ह्रस्व स्वरों की गड़बड़ी की हैं (जो फारसी लिपि में अलिखित हैं) क, ग की गड़बड़ी और इन अक्षरों की गड़बड़ी जिनकी पहचान फारसी लिपि में बिन्दुओं पर निर्भर है। डा० गुप्त द्वारा दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदर्श प्रति फारसी या अरबी में थी। डा० गुप्त ने इस बात को स्वीकार करने के बावजूद लिखा है – "इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि पदमावत की जितनी भी प्रतियां प्राप्त हुई हैं, चाहे नागरी की हों चाहे अरबी की–सबका मूल आदर्श कवि की प्रति नागरी लिपि में थी।"[२] इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने ६६ उदाहरण दिए हैं। उनके कथन का अर्थ है कि ये पाठ की ऐसी भ्रष्टता के निरूपण हैं जो नागरी प्रति के ही अनुकरण करने में सम्भव हैं। मात्र इसी तर्क के आधार पर यह मानना कि आदि प्रति नागरी में थी, सुसंगत नहीं जान पड़ता। डा० गुप्त ने एक ओर यह स्वीकर किया है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदर्श प्रति फारसी थी और दूसरी ओर बिना व्याख्या दिए यह लिखा है कि 'नागरी की हो चाहे फारसी की, सबका मूल आदर्श कवि की प्रति नागरी लिपि में थी। इन ६६ उदाहरणों में से ५९ ऐसे हैं जहां ब और व और ओ (या औ) की गड़बड़ी होती है। ब और व की गड़बड़ी नागरी में अवश्य होती है और कैथी में उनका रूप एक ही है। किन्तु अधिक उदाहरण ब और ओ (या औ) की

१–जा० ग्रं० (हि० ए०) पृ० १९।

२–डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका, पृष्ठ २४।

गड़बड़ी के हैं, अर्थात्, जब और जो (या जौ) इत्यादि। यहां दो बातें स्पष्ट हैं। दोनों रूप के शब्द एक ही अर्थ के हैं, और नागरी लिपि में उनके रूप समान नहीं। डा० गुप्त की किसी व्याख्या के अभाव में हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि उनका विचार यह है कि प्रतिलिपि करते समय एक मनुष्य मूल प्रति पढ़ देता था और दूसरा मनुष्य प्रतिलिपि लिखता था। यह यदि अनिवार्य नहीं, तो साधारण रीति है। ऐसा होते हुए जब पाठक व्यक्ति नागरी की प्रति पढ़ देता, तो 'जब' और 'जव' की गड़बड़ी नागरी लिपि में सम्भव था और पाठक के उच्चारण में 'जव' और 'जौ' की गड़बड़ी हो सकती थी।[1]

इस विचार के विरुद्ध कहा जा सकता है कि 'ब और व की गड़बड़ी भारत की अधिकतर भाषाओं की लिखावट तथा उच्चारण में होती है और जितना पूरब की ओर हम आगे चलते हैं उतनी ही गड़बड़ी बढ़ती है, यहाँ तक कि बंगाल में ब और व में कोई भेद नहीं होता, वे एक ही अक्षर होते हैं। पदमावत की भाषा पूरबी हिन्दी है, इसलिए स्वाभाविकत: व और ब की गड़बड़ी हो सकती है, चाहे पाठक ने नागरी प्रति से पढ़ दिया हो, चाहे फारसी से। इसके अतिरिक्त जब और जौ लगभग समान अर्थ के हैं और जहां समानार्थक नहीं वहाँ अर्थ का भेद महत्वपूर्ण नहीं है (जैसे सब और सो) हां, जहाँ अर्थ समान है बहुत सम्भव है कि वहाँ प्रतिलेखक ने उस रूप को ग्रहण किया होगा जिस रूप से वह अधिक परिचित था।"

"अन्य सात उदाहरणों में से चार 'कुरुंम' (कूर्म) और 'कुरुंभ' की गड़बड़ी के हैं। यह बात अधिक विश्वास योग्य है, क्योंकि नागरी में म और भ में कुछ अधिक भेद नहीं है, तथा कैथी में भेद इससे भी कम है। यह पाठ (अर्थात् कुरुंभ) सब प्रतियों में है – नागरी प्रतियों में भी। सम्भव है कि अनुनासिकता के आधिक्य के कारण पिछले व्यञ्जन की गड़बड़ी उचचारण में हुई। या सम्भव है कि कुरुंभ ही जायसी की बोली का ठीक शब्द हो, क्योंकि कुरुंभ पाठ इस ग्रन्थ में कहीं नहीं मिलता। किन्तु अकेले यही आदि प्रति की नागरी लिपि वाली बात को सिद्ध नहीं कर सकता।"

अन्य तीन उदाहरणों में से एक (रूई के स्थान पर रूद) केवल एक नागरी प्रति में मिलता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह भूल आदि प्रति से प्रतिलिपि करने में हुई। यह भूल उसके अनंतर की भी हो सकती है।

दूसरा उदाहरण (छार के स्थान पर ठार या थार) प्रश्नवाचक चिन्ह लिए हुए हैं।[2] इसका स्पष्ट अर्थ हैं कि डा० गुप्त ने स्वयं इस पाठ को संदिग्ध माना है। प्रश्न-चिह समन्वित शब्द को नागरी लिपि का पक्ष मजबूत करने के लिए प्रस्तुत

१–ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सम्वत् २००९, पृ० ३३९।

२–डा० माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३६० (दोहा ३५२।५७)।

करना स्वत: अत्यन्त अशक्त तर्क है ।

(रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागों कंत छार ? जेउं तोरें ।[१]")

"तीसरा उदाहरण गुप्त जी की ही भूल जान पड़ता है, क्योंकि वह क और ग की गड़बड़ी का बात है, जो फारसी लिपि का गुण है, नागरी का नहीं[२] ।"

गुप्त जी ने उदाहरणों की विविधता, प्रामाणिता एवं संख्याधिक्य से यह प्रदर्शित किया है कि तीनों नागरी प्रतियां फारसी प्रतियों की किसी न किसी समय की हुई प्रतिलिपियां हैं, किन्तु सभी प्रतियां नागरी मूल से उत्पन्न हैं। उनका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ, क्योंकि उनके उदाहरण विश्वासजनक नहीं हैं और गुप्त जी व्याख्या से उसका समर्थन नहीं करते ।'

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि 'जायसी ने अपनी पदमावत किस लिपि में लिखी इसका विचार स्व० चन्द्रबली पांडेय ने किया है। उनकी धारणा यही है कि फारसी लिपि में वह जायसी द्वारा न लिखी गई होगी, हो सकता है कि वह नागरी लिपि में न लिखी गई हो, प्रत्युत कैथी लिपि में लिखी गई हो, जो लिखने – पढ़ने के लिए पूर्वी अंचल में बहु प्रचलित थी, चूंकि उनकी रचना मुसलमान बंधुओं के मध्य फैली, इसलिए उसकी अनुलिपियां फारसी लिपि में अधिक मिलती हैं।'

आचार्य मिश्र जी ने सम्भावनाओं की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि 'हो सकता है कि यह नागरी लिपि में न लिखी गई हों' यह तथ्य उचित और संगत है, क्योंकि (डा० माताप्रसाद गुप्त को प्राप्त) तीनों नागरी प्रतियाँ भी मूलत: फारसी प्रति की अनुकृतियां हैं।[३]

आचार्य मिश्रजी के मतानुसार दूसरी सम्भावना है कि वह "कैथी लिपि में लिखी गई हो , जो पढ़ने–लिखने से पूर्वी अंचल में बहुप्रचलित थी ।" यह सम्भावना दृढ़ आधार पर स्थित है, क्योंकि पदमावत की कई कैथी प्रतियां भी मिली हैं।

उपर्युक्त समस्त मतों के विवेचनों के पश्चात् भी लिपि का प्रश्न वैसे ही है, जैसे वह ग्रियर्सन के समक्ष था। ग्रियर्सन का अनुमान है कि जायसी ने इसे फारसी लिपि में लिखा था।[४] 'ए० जी० शिरेफ ने भी लिखा है कि 'जायसी ने अपनी परिचित भाषा में जन-साधारण के लिए कविता लिखते हुए स्वभावत: उन अक्षरों का प्रयोग किया होगा जो उनकी शिक्षा के मूल थे । जायस मुसलमानी

१–ना० प्र० पत्रिका, काशी, वर्ष ५७ सं २००९, पृ० ३४० ।

२–वही, पृ० ३४१ ।

३–डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्रं०, भूमिका पृ० १९ ।

४–पदुमावति ए० जी० शिरेफ, भूमिका, पृ० ५–६ ।

शिक्षा का केन्द्र था। 'प्रतियों और पुस्तकों की भी परम्परा आधुनिक काल से पहले फारसी लिपि में होती जा रही थी, जिससे अनुमान निकलता है कि आदि प्रति उसी लिपि में थीं। डा० गुप्त ने प्रमाणित किया है कि सब हस्तलिखित नागरी प्रतियां फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियां हैं (यद्यपि वे मूलप्रति को नागरी की मानते हैं) यह भी एक प्रमाण है। पाठ की जो विभ्रष्टता दो सौ वर्ष से कम की अवधि में हो गई, वह भी फारसी लिपि का पक्ष पुष्ट करती है। सूर्यकान्त शास्त्री का भी मत है कि पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है और यह ग्रंथ फारसी लिपि में लिखा गया था।[१]"

जायसी का फारसी भाषा पर असाधारण अधिकार था, यह सिद्ध हो चुका है। उनकी भाषा अवधी अवश्य है पर उनकी लिपि फारसी ही थी। फारसी में ही उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे थे। फारसी से कैथी या नागराक्षरों में उसकी प्रतिलिपियां-अनुलिपियां हुई हैं, इन प्रतियों की विशाल परम्परा का मूल फारसी था और यह सम्भवत: यही कारण था कि उनकी कृति जनता से दूर ही रही। वे हिन्दी की विशाल परम्परा में उपेक्षित ही रहे। अलाओल आदि के अनुवाद में जो सन् की भ्रष्टता है, वह भी फारसी लिपि के कारण है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पदमावत की आदि प्रति फारसी में लिखी गई थी।

कथानक का मूल स्रोत

जायसी के पूर्व कई प्रेमाख्यानक काव्य प्रणीत हो चुके थे। चंदायन (१३७९ ई०) और मृगावती (१५०३ ई०) के ही अनुरूप पदमावत की भी सर्जना हुई है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमकथाओं की एक सुदृढ़ परम्परा है। अभी कुछ समय पूर्व तक कितनी ही प्रेमकथाओं के नाम मात्र ज्ञात थे, कुछ के नाम तक अज्ञात थे। इधर अनेक प्रेमगाथाओं का उद्घाटन हुआ है। अत: आज के शोध के छात्र के लिए पहले से बहुत अधिक प्रेमकथाओं के अध्ययन का सुयोग प्राप्त है।[२]

प्रेमगाथा–परम्परा का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता कि है प्रेम गाथाओं का आधार और मूल स्रोत कोई न कोई प्रेम कथा होती है – कवि उस कथा में अपने कल्पना–विलास का सौन्दर्य भर देता है। इस प्रेम कथा को कवि प्राय: – दोहा–चौपाई, छन्द में प्रबन्ध – काव्य की किसी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करता है, इस कथा में लोकतत्व की प्रधानता होती है। ऐतिहासिक तथ्यों को भी लोकवार्ता के

१–पं० सूर्यकांत शास्त्री : पदुमावति, प्रीफेस, पृ० ५ (१९३४), लाहौर।

२–डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ० २७३।

माध्यम से गृहीत किया जाता है।

तुलसीदास, सूरदास आदि महाकवियों ने पौराणिक आख्यानों के माध्यम से अपनी सर्जनाएँ की हैं, किन्तु प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों ने अपने काव्यों में कथाओं का वही रूप ग्रहण किया है, जो लोक-जीवन की, लोक-गीतों की तथा लोक कथाओं की मौखिक (और कभी-कभी साहित्यिक) परम्परा में ढल चुका था। "कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीला गान और तुलसीदास का रामचरितमानस अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिन्दू जनता का ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परन्तु जनसाधारण का एक विभाग, जिसमें धर्म का स्थान नहीं था, जो अपभ्रन्श साहित्य के पश्चिमी आकर से सीधे चला आ रहा था, जो गांवों की बैठकों में कथानकरूप से और गान-रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने प्रौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुंचाई।[१] आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि सूफी प्रेम-काव्य गुणाढ्य की 'वृहत्यकथा से चली आती हुई प्रेम-कथाओं की परम्परा में आते हैं। सूफी प्रेमकथाओं का स्रोत लौकिक है, ये सभी कथाएं लोक-जीवन की परम्परा से गृहीत हैं। परिमाणत: हम देखते हैं कि सभी सूफी प्रेमकाव्यों में अद्भुत साम्य है। चन्दायन, मृगावती, पदमावत, मधुमालती, चित्रावली कनकावली प्रभृति प्राय: सभी काव्यों की कथाओं का मूल स्रोत एक ही है — लोकजीवन की कोई प्रेमकथा।

हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानियां ली हैं, वे सब हिंदुओं के घर में बहुत दिनों से चली जाती हुई कहानियां हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर-फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिंदू हैं। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति-सूत्र में बद्ध दिखाकर एक अखण्ड जीवन-समष्टि का आभास देना हिंदू-प्रेम-कहानियों का वैशिष्ट्य है। मनुष्य के घोर दु:ख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं, पशु-पक्षी भी संदेश पहुंचाते हैं। यह बात इन कहानियों में भी मिलती है।[३]

हिन्दी प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों में हिन्दू जीवन और धर्म के प्रति उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति है। इसी के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रेम-पीर की अभिव्यक्ति का सहज, सरल और मनोरंजक निरूपण किया है।

१—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० ६४—६५ (१९५९)।
२—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७१।
३—पं० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक-प्रचलित कथानक ही 'प्रेमाख्यानकों के मूल स्रोत हैं। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'प्रेमकाव्य की कथायें अधिकतर काल्पनिक ही हैं, पर जायसी ने कल्पना के साथ-साथ इतिहास की सहायता से अपने पदमावत की कथा का निर्माण किया है। रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अलाउद्दीन का पदमावती के आकर्षण में चित्तौर पर चढ़ाई करना ऐतिहासिक।'[१] वर्मा जी का प्रस्तुत कथन तर्क संगत है, परन्तु इतिहास के आलोक में ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि पदमावत में चित्तौर, दिल्ली, अलाउद्दीन के नाममात्र ऐतिहासिक हैं। शेष समस्त बातें कवि-कल्पना प्रसूत हैं। वस्तुत: जायसी ने अपनी कहानी को मनोमय और लोकाकर्षक बनाने के लिए इतिहास की छौंक दे दी है। यह छौंक नाममात्र की छौंक है, इसके मूल में एतिहासिकता ढूंढना व्यर्थ है। इनमें कतिपय नामों की इतिहास सम्मतता के अतिरिक्त सर्वत्र निजंधरी कथाओं के सदृश कल्पना-तथ्य का (फैक्ट्स ऐण्ड फिक्शन का) योग रहता है।[२]

प्रेमगाथाओं की कथा-वस्तु के मूल तन्तु और पदमावत:—

प्रेमगाथाओं की मूल कथावस्तु संक्षेप में यह है—

१—नायक किसी दूत या अन्य माध्यम से नायिका की प्रशंसा सुनता है या दर्शन करता है और एक दूसरे पर या दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।
२—नायक नायिका को प्राप्त करने के लिए गृहत्याग कर चल पड़ता है।
३—मार्ग के प्रत्यूह—मार्ग में अनेक विघ्न आते हैं, किन्तु वह उन्हें पार कर जाता है।
४—उसकी रक्षा भी होती है।
५—दैवी या अमानवीय शक्ति उसकी सहायता करती है, अन्त में वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और घर लौटता है।
६—लौटते समय भी विघ्न आते हैं, किंतु वह पार हो जाता है।
७—अन्त में मिलन होता है।
८—(दु:खान्त)।

किसी न किसी रूप में ये तन्तु प्राय: सभी प्रेमगाथाओं में मिलते हैं। एक आठवां तन्तु दु:खान्त का भी हो सकता है जिसमें किसी कारण से नायक-नायिका

१—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५१८।
२—द्रष्टव्य—(आगे) पदमावत की ऐतिहासिकता : एक पुन: सर्वेक्षण, पृ० १८३ और 'पदमावत का काव्य—सौन्दर्य अध्याय १ (इसमें पदमावत की कथावस्तु और मूलस्रोत का सांगोपांग विवेचन किया गया है।)

में व्यवधान हो जाता है और एक या दोनों की मृत्यु हो जाती है।[1]

इन तन्तुओं के समान ही कुछ और महत्वपूर्ण तन्तु हैं जिनका उपयोग प्रायः सभी प्रेमगाथाओं में हुआ है—

(१) नख-शिख-वर्णन।
(२) विरहवर्णन : बारहमासा।
(३) युद्ध वर्णन और
(४) सती होना।

इस सूची को और बढ़ाया जा सकता है, किन्तु मूलरूप से मुख्य तन्तु इतने ही हैं। जायसी ने भी इन्हीं मूल तन्तुओं के माध्यम से पदमावत की कथा-वस्तु का संघटन किया है।

जायसी द्वारा गृहीत 'पदमावती' की कथा

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतवर्ष के सूफी कवियों ने लोकजीवन तथा साहित्य में प्रचलित निजंधरी कथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक सन्देशों को जनता तक पहुँचाने के प्रयत्न किये हैं। कुतबन ने 'मृगावती' में लिखा है कि यह कथा पहले से चली आ रही थी। इसमें योग, श्रृंगार और विरह-रस वर्तमान थे मैंने दुबारा फिर उसी कथा को लिपिबद्ध किया है। कुतबन का यह दावा अवश्य है कि पहले से ही प्रचलित कथा के अर्थ को उन्होंने नये सिरे से स्पष्ट किया है।

'पुनि हम खोलि अरथ सब कहा।'[2]

ठीक इसी प्रकार का एक अन्तःसाक्ष्य 'पदमावत' में भी प्राप्त होता है। जो स्पष्ट इंगित करता है कि पदमावती की कहानी जायसी की निजी कल्पना की उपज नहीं है—

'सन् नौ सै सैंतालिस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा॥
सिंहलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलउदीन देहली [सुलतानू]। राघव चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंकन आई। हिन्दू तुरकन्ह भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥'[3]

इन पंक्तियों में जायसी ने यह स्पष्ट बताया है कि आदि से अन्त तक जैसी

१—डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ०२७३-२७४
२—कुतबन : मृगावती, स्तुति खण्ड (अप्रकाशित) हस्तलिखित प्रति से।
३—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, पृ० ६ (दोहा २४)।

गाथा है उसे ही वे 'भाखा–चोपाई' में निबद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। सिंहल की पद्मिनी रानी की कहानी जायसी ने सुनी थी। यह गाथा 'सिंहल की पद्मिनी रानी से लेकर 'हिन्दू तुरकन्ह भई लराई।' तक पूरी होती है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अन्त तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक–गाथा है, इसमें सन्देह नहीं। यह एक ऐसी लोक–कथा है जिसमें ऐतिहासिक पुरुषों और स्थानों के नाम प्रविष्ट कर दिए गए हैं।

पं० चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार जायसी का यह दावा है कि पद्मावती की कथा रसपूर्ण और अत्यन्त प्राचीन थी। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को ही है। इस कथन की पुष्टि पाण्डेय जायसी की निम्नलिखित पंक्तियों से करते हैं—

कवि वियास कंवला रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी॥
नियरे दूर फूल जस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चांटा॥
भंवर आइ बन खंड सन, लेइ कंवल कै बास।
दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास॥[1]

'कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहां एक से एक बढ़कर कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है, फिर भी किसी कवि से न बन पड़ा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह कार्य तो मुझ जैसे अहिन्दू से बन पड़ा।'[2]

इस प्रकार इन साक्ष्यों से निष्कर्ष निकलता है कि पद्मावती की कहानी भारतवर्ष की प्राचीन कहानियों में से है। जायसी ने इस कहानी को ('सुना' भी था) पूर्ववर्ती पद्मावती रानी की साहित्यिक कहानी एवं लोक प्रचलित पद्मावती वाली कहानी की परम्पराओं से गृहीत करके गहन चिन्तना, विशाल कल्पना एवं महत् अनुभूति के मिश्रण से विकास एवं अनुपम काव्य-सौन्दर्य प्रदान किया है।

पदमावत की कथा

कवि ने पदमावत के प्रारम्भ में समस्त जगत के करतार की पावन बन्दना की है। पश्चात् मुहम्मद और उनके चार यारों का उल्लेख, गुरु-स्तवन, रचना-तिथि का उल्लेख और कथा-निर्देश करते हुए सिंघल द्वीप, उसकी सघन अमराई, उसके राजा गंधर्वसेन, राजसभा, उद्यान, नगर इत्यादि का वर्णन करके कवि ने मूल कथा का वर्णन प्रारम्भ किया है।

१–वही, पृ० ६ (दोहा २४)।
२–पं० चन्द्रवली पाण्ड्रेय : हिन्दी कवि-चर्चा, पृ० १३४।

अलाउद्दीन के समसामयिक केवल चार इतिहासकार ज्ञात हैं --फज्लुला[1] वस्साफ, जियाउद्दीन बरनी,[2] अमीर खुसरो[3] और अब्दुल्ला मलिक इसामी[4] । अमीर खुसरो ने पद्मिनी का नाम नहीं लिया है ।

खिलजी वंश के प्रामाणिक इतिहासों में अमीर खुसरो कृत 'तारीखे-अलाई' का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अमीर खुसरो सुलतान अलाउद्दीन के साथ इस आक्रमण में चित्तौड़ गया था । इस कारण उसका दिया हुआ वृत्त अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिए । उसने 'तारीखे-अलाई' में १३०३ ई० के अलाउद्दीन के आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है—

"सोमवार ता० ८ जमादि – उस्सानी हि० सं० ७०२ (वि० सं० १३५९) माघ सुदि ९ - ता० २८ जनवरी १३०३ ई० सुल्तान को अलाउद्दीन चित्तौड़ लेने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ । ग्रंथकर्ता (अमीर खुसरो) भी इस लड़ाई में साथ था । सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० सन् ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्र-पद सुदि १४ ता० २६ अगस्त १३०३ ई० को किला फतह हुआ । राय (राजा) भाग गया । परन्तु पीछे से स्वयं शरण में आया और तलवार की बिजली से बच गया । हिन्दू कहते हैं कि जहां पीतल का बर्तन होता है वहीं बिजली गिरती है, और राय का चेहरा डर के मारे पीला पड़ गया । तीस हजार हिन्दुओं को कत्ल करने की आज्ञा देने के बाद जब सुलतान ने चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्र खिजिर खां को दिया, तब उसका नाम खिजराबाद रखा । सुलतान ने उसको एक लाल छत्र, जरदौजी खिलअत और दो झंडे — एक हरा और दूसरा काला — दिए और उस पर लाल और पन्ने न्योछावर किए, फिर वह दिल्ली को लौटा । खुदा का शुक्र है कि हिन्द के जो राजा इस्लाम को नहीं मानते थे, उन सबकी अपनी काफिरों को कत्ल करने वाली तलवार से मार डालने का हुक्म दिया ।[5]

यहां विशेष द्रष्टव्य यह है कि अमीर खुसरो ने पद्मिनी नाम तक का उल्लेख

१–तारीख–ए वस्साफ '(फारस के मुगलों का इतिहास) १३१२ ई० में पूर्ण हुआ ।

२–'तारीख–ए फिरोजशाही' १३५९ ई० में पूरा हुआ ।

३–'खजायनुल फुतुह (अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन – १३१२ ई० में) और 'आशिकाह या देवल रानी' (देवल और खिज्र खां – अलाउद्दीन के बेटे के प्रेम का वर्णन — १३१६ ई० में) ।

४–'फुतूहस्लातीन' १३४९—५० ई० ।

५–इलियट : हिस्ट्री आव इण्डिया, वाल्यूम ३, पृ० ७६— ७ ।

नहीं किया है। बर्नी ने भी पद्मिनी की कथा का नाम तक नहीं लिया है –

जिआउद्दीन बर्नी १३०३–४ ई० में जीवित था। वह उस काल का एक प्रामाणिक इतिहास–लेखक है। बर्नी ने अपने ग्रन्थ 'तारीखे–फीरोजशाही' में लिखा है – 'सुल्तान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घेरा और थोड़े ही अर्से में उसे अधीन कर लिया। घेरे के समय चौमासे में सुल्तान की फौज को बड़ी हानि पहुंची।[1]'

जियाउद्दीन बर्नी अलाउद्दीन का समकालीन इतिहासकार है। उसने अपने इतिहास में कहीं भी पद्मावती का उल्लेख नहीं किया है। उसने कहीं यह भी नहीं लिखा है कि चितौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण किसी नारी का सौन्दर्य था। यह मात्र परम्परागत जनश्रुति है।[2]

'जायसी की यह कहानी जिसमें प्रेम साहसिकता और त्रासादि तीनों का सुन्दर संमिश्रण हुआ है, अत्यन्त शीघ्र लोकप्रिय हो गई और अत्र–तत्र–सर्वत्र पद्मिनी की यह कहानी कही गई – पुन: पुन: कही गई। परशियन इतिहासकारों ने भी, जो तथ्य और कल्पना में विशेष पार्थक्य नहीं करते थे, तुरन्त इस कथा को सच्चे इतिहासों में, जिनमें फिरिस्ता और हज्जी उद्दबीर के इतिहास भी सामिल हैं, ऐतिहासिक तथ्य के रूप में गृहीत कर लिया।[3]

आईने–अकबरी की पद्मिनी–कथा

'टाड ने जो वृत्त दिया है वह राजपूताने के रक्षित चरणों के इतिहासों के आधार पर है। दो–चार ब्योरों को छोड़कर ठीक यही वृतान्त 'आईने अकबरी' में

१–इलियट : हिस्ट्री आव इण्डिया, वाल्यूम ३, पृ० १८६।

२–"इफ ट्रेडीशन इज टू बी विलीव्ड, इट्श काज वाज हिज इनफैचुयेशन फार राजा रतनसिंह' सक्वीन पद्मिनी आफ एक्सक्विजिट ब्यूटी। बट दिस फैक्ट इज नौट एक्सप्लिसिट्ली मेंशन्ड इन एनी कन्टेम्पोरेरी क्रानिकल आर इन्स्क्रिप्शन।"
–ऐन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग, २ पृ० ३०२।

३–दिस स्टोरी आफ म० मु० जायसी, इन ह्विच रोमांश, ऐडवेन्चर ऐन्ड ट्रैजेडी आर आल ब्यूटीफुली इन्टरमिक्स्ड, वेरी सून ग्रिप्ड दी पाप्युलर माइन्ड ऐन्ड हियर, देयर ऐन्ड एब्रीह्वेयर दी स्टोरी आफ पद्मिनी वाज टोल्ड ऐन्ड रीटोल्ड। दी परशियन क्लानिक्लर्स हू डिड नाट वेरी मच केयर टू डिस्टिंग्विस बिटवीन फिक्शन ऐन्ड फैक्ट रेडिली एक्सेप्टेड इट ऐन्ज टू हिस्ट्री, सो दैट आफ्टर दी टाइम आफ मुहम्मद जायसी दी पद्मिनी एपिसोड इज मेन्शंड ऐज ए हिस्टोरिकल फैक्ट इन मैनी हिस्टोरिकल वर्क्स इन्क्लूडिंग दोज आफ फ़रिश्ता ऐन्ड हज्जीउद्दबीर।"
–हिस्ट्री आफ दि खिलजीज, डा० किशोरीशरण लाल, पृ० १२२–२३।

दिया हुआ है। 'आईने–अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसेन या रत्न-सिंह) नाम हैं। रतनसी के मारे जाने का ब्योरा भी दूसरे ढंग पर है। 'आईने-अकबरी' में लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चढ़ाई में भी हार कर लौटा। वह लौटकर चित्तौड़ से सात कोस दूर पहुंचा था कि रुक गया और मैत्री का नया प्रस्ताव भेजकर रतनसी को मिलने के लिए बुलाया। अलाउद्दीन की बार-बार की चढ़ाइयों से रतनसी ऊब गया था। इससे उसने मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती को साथ लेकर वह अलाउद्दीन से मिलने गया और धोखे से मार डाला गया। उसका सम्बन्धी 'अरसी' (?) चटपट चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौर की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। अरसी मारा गया और पद्मिनी सब स्त्रियों के सहित सती हो गई।[1]"

स्पष्ट है कि टाड और 'आईने-अकबरी' के पद्मिनी सम्बन्धी वृत्तों में साम्य है। अबुलफजल-कृत 'आईने-अकबरी' में वही वृत्त है जो उसने सुना था। इतिहासकारों का कथन है कि सम्भवत: अबुलफजल 'पदमावत' से परिचित था। जो भी हो, अबुलफजल के वर्णन से स्पष्ट है कि वह 'पदमावत से पर्याप्त प्रभावित है।

हज्जी उद्बीर का पद्मिनी वृत –

हज्जी उद्बीर का इतिहास अकबर के समय (१६०५ ई०) में लिखा जा रहा था। पदमावत १५४० ई० में शेरशाह के समय में लिखा गया था। पदमावत जो शेरशाह के समय में ख्याति प्राप्त कर चुका था और चितौड़ के राजवंश की कीर्ति का सम्बर्द्धन कर रहा था – निश्चय ही उस समय चित्तौड़ के राजघराने में समादृत रहा होगा। ईडर, शाबरकांठा एवं सौराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों का चितौड़ से घनिष्ट सम्बन्ध था। उन सभी क्षेत्रों में यह कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी, अत: ऐसी स्थिति में हज्जी उद्बीर अवश्य ही पदमावत की कथा से प्रभावित लगता है। हज्जी उद्बीर और जायसी के पद्मावती सम्बन्धी वृत्तों में बहुत अधिक समता भी पाई जाती है।

अन्य इतिहासकारों के उल्लेख —

वर्तमान युग के कई नामी–गरामी इतिहासकारों ने बड़े ही विचित्र तर्कों से पद्मिनी की कथा की ऐतिहाहिकता सिद्ध करने के प्रयत्न किए हैं। जैसे 'यदि पद्मिनी कथा जायसी की कोरी–कल्पना है, तो वह राजपूतों में फैली कैसे? यद्यपि इस कथा से उदयपुर के राजवंश की मानहानि होती है फिर भी यह राजवंश पद्मिनी की कथा को स्वीकार कर सकता है। अलाउद्दीन का मेवाड़ की रानी की

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, पृ० २४।

ओर आकृष्ट होना और रानी का अपने पति को मुक्त कराने का प्रयास असम्भव नहीं जान पड़ता।[१]' ये तर्क अत्यन्त हल्के और आधारहीन हैं। यह कथा 'जायसी की कोरी कल्पना' ही नहीं है, जायसी ने इस कथा को 'सुना' भी था। दूसरे पद्मिनी की 'पद्मावत' वाली कथा से चित्तौड़–उदयपुर के राजवंश की कीर्ति में चार चांद लगते हैं। इस कथा में मानहानि की सम्भावना ही नहीं की जा सकती। 'राजवंश इस कथा को स्वीकार करता है,' चित्तौड़ में पद्मिनी का महल है, स्नान गार है प्रभृति तर्क व्यर्थ हैं। किसी राजवंश के स्वीकार करने मात्र से ही कोई कथा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

प्रो० श्री नेत्र पांडेय[२] का कथन है जि 'हज्जी उद्दबीर ने अपना इतिहास अकबर के समय में गुजरात में लिखा था। यद्यपि पदमावत और उसके विवरण में अन्तर है, तथापि हज्जी उद्दबीर ने पद्मिनी की कथा का उल्लेख किया है। मेवाड़ की परम्परागत कथाएं भी पद्मिनी की कथा को स्वीकार करती हैं – जो अत्यन्त पुरानी हैं। अन्तत: प्रो० श्री नेत्र पांडेय ने भी इसे स्वीकार किया है कि पद्मिनी की कथा के विषय में बड़ा मदभेद है। इस कथा का प्रधान साधन जायसी कृत पदमावत हैं।'' विद्वान इतिहासकार का कथन ठीक ही है कि इन समस्त पद्मिनी विषयक कथाओं का मूल आधार 'पदमावत' ही है।

सर्वेक्षण और निष्कर्ष

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने टाड के विवरण को देने के पश्चात लिखा है, ''टाड ने जो वृत दिया है राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों के आधार पर है। दो-चार व्योरों को छोड़ कर ठीक यही वृत्तान्त 'आई ने-अक्वरी' में दिया हुआ है। 'आईने अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रतनसिंह या रत्नसेन) नाम है। रतनसी के मारे जाने का व्योरा भी दूसरे ढंग पर है।''

''इन्हीं दोनों इतिहासिक वृत्तों के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करके शुक्ल जी ने पदमावत की उत्तरार्द्ध वाली कथा की ऐतिहासिकता प्रमाणित की है।[३]

टाड के राजस्थान का सम्यक् अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसकी ८० प्रतिशत से अधिक बातें बकवास या अनर्गलता के अंतर्गत आती हैं।

१–डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास, ।

२–श्री नेत्र पाण्डेय : भारत का वृहद् इतिहास, भाग २, मध्य कालीन भारत, पृ० १३१ ।

३–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० २४ ।

"एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक (जेम्स टाड) की अति प्रसिद्ध कृति ने इन युगों के विषय में हमारी जनता की दृष्टि को पिछले सौ वर्ष में बहुत गुमराह किया है। -- वह विशेष रूप से राजस्थान का सर्वे करने और राजस्थानी राज्यों को मराठों और मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए नियुक्त था। उसे पूरी सफलता प्राप्त हुई। -- अलाउद्दीन और दूसरे सब मुसलमानों को लम्पट-लुटेरा बताना और मराठों को मौसमी डाकू के रूप में चित्रित करना लज्जाजनक असत्य है। अकबर जैसे महापुरुष को कलंकित करने की कोशिश चांद पर थूकने के समान है। -- दु:ख की बात है कि हिन्दी, बंगला और गुजराती साहित्यों के तथा हिन्दुओं के रोपे हुए उर्दू साहित्य के पौधे और सौ बरस पहले बिखेरी गई इन विषमय असत्यों की खाद को आज भी अमृत समझ कर चूसते जा रहे हैं।"[१]

यह निर्भ्रान्त सत्य है कि टाड ने अनेक गलत ऐवं भ्रम-प्रचारक अनर्गल बातें लिखी हैं। ओझा जी[२] ने भी टाड की शत-शत त्रुटियों की ओर निर्देश किया है। टाड ने पद्मिनी का जो वृत्त दिया है वह भी अत्यन्त भ्रमपूर्ण है--

विक्रम सं १३३१ (१२७४-७५ ई०) और वि० सं० १३४६ (१२९० ई०) में अलाउद्दीन दिल्ली का बादशाह नहीं था। पुन: इन संवतों में अलाउद्दीन के चित्तौड़-आक्रमण की कल्पना अनर्गलता नहीं तो और क्या है? अलाउद्दीन १२९५-९६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। सं०१३३१ में चित्तौड़ पर दिल्ली के बादशाह ने अवश्य आक्रमण किया था, पर वह बलवन था, अलाउद्दीन नहीं। अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण १३०३ ई० में किया था।

इसी प्रकार सिंहल में चौहान राजवंश की कल्पना भी मिथ्या है। टाड के अनुसार "अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई में राणा के ग्यारह पुत्र मारे गए। यदि पहली चढ़ाई अलाउद्दीन ने पद्मिनी को पाने के लिए की थी, तो दूसरी चढ़ाई में युद्ध में मारे गए। ये ग्यारह पुत्र कब पैदा हो गये? इतने तो लड़के रहे, टाड ने लड़कियों या मर गई सन्तानों का उल्लेख नहीं किया है। यदि अलाउद्दीन लंपट था तो भी बड़े-बड़े युद्ध में मारे जाने वाले बेटों की मां के लिये इतना बड़ा साहसिक अभियान करेगा, जिसमें जीत भी अनिश्चित हो। दूसरे इतिहासज्ञों ने अलाउद्दीन को प्रजा हितैषी और संयमी सम्राट कहा है।[३]

टाड की वार्ताओं में एक गल्प और दृष्टव्य है। उसका कथन है कि जब

१--जयचन्द्र विद्यालंकार--हिन्दी सा० स० नागपुर (अप्रैल, १९३६) इतिहास परिषद के सभापतिपद से अभिभाषण, पृ० १६-१७।

२--गौ० ही० ओझा : राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४९४-९५।

३--डा० रघुबीरसिंह : पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० १२७-१६०।

अलाउद्दीन चित्तौर नहीं ले पाता, हार कर दिल्ली की ओर लौट जाता है, तो राणा से प्रस्ताव करता है कि पद्मिनी का मुख दर्पण में दिखा दो। राणा इस शर्त को स्वीकार कर लेता है और पराजित शत्रु को अपनी पत्नी का मुख दर्पण के माध्यम से दिखलाता है।

जायसी की कथा है कि राणा रतनसेन अलाउद्दीन का सामन्त बनना स्वीकार कर लेता है। वह उसे गढ़ में ले जाता है। वहां अलाउद्दीन अकस्मात पद्मिनी की परछाई देखता है। 'टाड के किस्से से ऐसा लगता है मानों हारे हुए शत्रु को अपनी बीबी का मुंह दिखाना राजपूती शालीनता और आतिथ्य का अंश था।''[1]

''गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था।'' अर्थात् बादल पद्मिनी के दूसरे चाचा का लड़का था। पद्मिनी के दो चाचा और चचेरा भाई चित्तौड़ में कैसे रहते थे। उन्हें तो चित्तौड़ का पानी भी नहीं पीना चाहिए। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि पद्मिनी मेवाड़ की थी और गोरा और बादल चित्तौड़ के सरदार और उसके सम्बन्धी थे। ''टाड ने किस्से की संगति लाने के लिए गोरा–बादल को सिंहल का ही बताया।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि टाड के आधार पर पदमावत का ऐतिहासिक आधार ढूंढ़ना और इसी कारण उसे इतिहासाश्रित कहना ठीक नहीं है।

ओझा जी के मत : समीक्षा

संवत् १९८१ (१९२४ ई०) में शुक्ल जी ने जायसी-ग्रन्थावली का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। म०म० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा कृत 'राजपूताने का इतिहास, सं० १९८३ में प्रकाशित हुआ।

ओझा जी ने पदमावत की कथा देने के अनन्तर लिखा है–''इतिहास के अभाव में लोगों ने पदमावत को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया, परन्तु वास्तव में वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कविताबद्ध कथा है, जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक बातों पर रचा गया है कि रतनसेन (रत्नसिंह) चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी या पद्मावती उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुलतान था, जिसने रतनसेन (रत्नसिंह) से लड़कर चित्तौड़ का किला छीना था। बहुधा अन्य सब बातें कथा को रोचक बनाने के लिए कल्पित खड़ी की गई हैं, क्योंकि रत्नसेन एक बरस भी राज्य नहीं करने पाया, ऐसी दशा में योगी बन कर उसका सिंहल द्वीप (लंका) तक जाना और वहां की राजकुमारी को व्याह लाना कैसे संभव हो सकता

१—इन्द्रचन्द्र नारंग : पदमावत-सार, पृ०।

है ? उसके समय सिंहल द्वीप का राजा गंधर्व सेन नहीं किन्तु कीर्ति निश्शंकदेव पराक्रमबाहु (चौथा) या भुवनेक बाहु (तीसरा) होना चाहिये।[1] सिंहल द्वीप में गन्धर्व सेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ।[2] उस समय तक कुम्भलनेर आवाद ही नहीं हुआ था, तो देवपाल वहां का राजा कैसे माना जाय ? अलाउद्दीन आठ बरस तक चित्तौड़ के लिए लड़ने के बाद निराश होकर दिल्ली को नहीं लौटा, किन्तु अनुमानत: छ: महीने लड़कर उसने चित्तौड़ ले लिया था, वह एक ही बार चित्तौड़ पर चढ़ा था, इसलिये दूसरी बार आने की कथा कल्पित ही है।"[3]

जेम्स टाड की कल्पनाओं के विषय में भी ओझा जी ने लिखा है—"कर्नल टाड की यह कथा विशेषकर भाटों के आधार पर लिखी गई है और भाटों ने उसको 'पद्मावत' से लिया है। भाटों की पुस्तक में समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टाड ने पद्मिनी का सम्बन्ध भीमसिंह से मिलाया और उसे लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना मान ली। – – परन्तु लखमसी न तो मेवाड़ का कभी राजा हुआ और न बालक था, किन्तु सीसोदे का सामन्त था और उस समय वृद्धावस्था को पहुँच चुका था। – – रत्नसिंह की सेना का मुखिया बनकर अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में लड़ते हुए मारा गया था, जैसा कि वि० सं० १५१७ (१४६० ई०) के शिलालेख से स्पष्ट है। – – – ऐसी दशा में टाड का कथन भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकता। 'पदमावत' तारीख-फिरिश्ता और टाड के राजस्थान के लेखों की यदि कोई जड़ है तो केवल यही कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छ: मास के घेरे के अनन्तर उसे विजय किया, वहां का राजा रत्नसिंह इस लड़ाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तों–सहित सारा गया। उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी।"[4]

विशेष

पद्मावत में चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण के अतिरिक्त और भी कतिपय घटनाओं एवं अनुश्रुतियों का उपयोग भी किया गया है। 'अलाउद्दीन ने १२९७ ई० में अपने भाई उलूग खां और सेनापति नसरत खाँ को गुजरात पर चढ़ाई करने को भेजा। मालवा से उन्होंने मेवाड़ के रास्ते बढ़ना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हें मार भगाया। तब मेवाड़ के दक्खिन घूम कर वे आसावल

१–डफ : क्रानोलाजी आव इण्डिया, पृ० ३२१।

२–वही, पृ० ३२१-२२।

३–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १८७–८८।

४– ,, –राजपूताने का इतिहास, पृ० ४९१–९२–४४९–९५।

जा पहुँचे ।[1] यद्यपि अलाउद्दीन ने इस युद्ध में सेना का नेतृत्व नहीं किया था, तो भी चित्तौड़ के राजा समरसिंह के द्वारा अलाउद्दीन की इस युद्ध में प्रथम बार हार हुई थी ।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि "जिन पुत्र सूरि ने अपने 'तीर्थ-कल्प" में उलूग खां की गुजरात–विजय का वर्णन करते हुए लिखा है–'विक्रम संवत् १३५६ (१२९९ ई०) में सुलतान अल्लावदीण (अलाउद्दीन खिजली) का सबसे छोटा भाई उलूखान (उलूगखां) कर्णदेव के मन्त्री माधव की प्रेरणा से दिल्ली नगर से गुजरात की ओर चला । चित्रकूट (चित्तौड़) के स्वामी समरसिंह ने उसे दण्ड देकर मेवाड़ देश की रक्षा कर ली ।[2]

यहां ध्यान देने की बात है कि माधव का ही जनश्रुतियों में प्रचार-प्रसार और संप्रसार होता रहा और संभावना की जा सकती है कि जायसी के राघव चेतन की कहानी का मूल संभवत: गुजरात के मन्त्री माधव के चरित्र में है ।

"रणथंभौर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी । समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे कुछ महीने बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घेर लिया । (१३०२ ई०) छ: महीने घिरे रहने के बाद रसद और पानी चुक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया । रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत–सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया । अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजर खां को देकर उसका नाम खिज–राबाद रखा ।"

अलाउद्दीन चित्तौड़ को मुश्किल से ले पाया था कि दिल्ली से मंगोलों के नये हमले की खबर आई । तरगी नामक एक मंगोल ने एक बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया । अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया ।[3]

"जायसी ने अलाउद्दीन की चित्तौड़ चढ़ाई के अवसर पर दिल्ली पर हरेवों की चढ़ाई की बात जो लिखी है, उसमें स्पष्ट तरगी के मंगोलों की परछाई है ।"[4]

यद्यपि रत्नसेन अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध में मारा गया था, तथापि सम्भवत: 'आदि अन्त जस गाथा अहै' वाली गाथा में रत्नसेन अलाउद्दीन के द्वारा नहीं मारा गया ।

१–जयचन्द्र विद्यालंकार : इतिहास–प्रवेश, पृ० २५३, (प्र० सं० १९३८).
२–गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : राजपूताने का इतिहास, दू० खं०, पृ० ४७६–७७ ।
३–जयचन्द विद्यालंकार : इतिहास प्रवेश, पृ० २६५–६६ ।
४–इन्द्रचन्द्र नारंग : 'पदमावत–सार ।'

जायसी के समय में चित्तौड़ का राणा संग्रामसिंह था। उसके वाद उसका पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। जायसी के पदमावत वाले रत्नसेन में इस रत्नसिंह की कथा भी जुड़ी हुई है।

"मेवाड़ में सांगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। — — १५३१ ई० में राणा रत्नसिंह को उसके एक सरदार ने मार डाला।"[१]

" — — — महाराणा के एकाएक इस प्रकार स्वर्गवास होने के अनन्तर मेवाड़ की गद्दी पर उसका दूसरा लड़का रत्नसिंह बैठा। — — उसके वाद ही बूँदी के देशद्रोही हाड़ा सरदार जो सांगा की दूसरी रानी कर्मवती का भाई और उसके पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिंह का तरफदार था और अपने भानजे विक्रमादित्य को सिंहासन दिलाने के लिये मेवाड़ के शत्रु मुगलों–बाबर–से रणथम्भौर प्रदेश उन्हें देने आदि की सांठ–गाँठ कर रहा था, दण्ड के लिए शिकार–मिस बुलाकर महाराणा रत्नसिंह ने मरवाना चाहा और उनके साथ द्वन्द्व करते हुए स्वयं भी मारा गया (३० जनवरी १५३२ ई०)।"[२]

"विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा सांगा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र रानी कर्मवती के विशेष आग्रह से दी, परन्तु अन्त में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिए घातक ही हुआ।"[३]

"महाराणा सांगा की मृत्यु के समाचार पहुँचने पर उसका कुँवर रत्नसिंह वि० सं० १५८४ माघ सुदी १५ (१५२८ ता० ५ फरवरी) के आसपास चित्तौड़ के राज्य का स्वामी हुआ। महाराणा सांगा के देहान्त के समय महाराणी हाड़ी कर्मवती अपने दोनों पुत्रों के साथ रणथंभौर में थी। अपने छोटे भाइयों के हाथ में रणथंभौर की पचास-साठ लाख की जागीर का होना रत्नसिंह को बहुत अखरता था, क्योंकि वह उसकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ।"[४]

उधर हाड़ी कर्मवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी, जिसके लिए उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रपंच रचा। – बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है—"हि० स० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० सं० ३५८५ आश्विन सुदि १५–ई० सं० १५२८ ता० २८ सितम्बर)

१–जयचन्द विद्यालंकार : इतिहास-प्रवेश, पृ० ३२८–२९।
२–पृथ्वीसिंह मेहता : हमारा राजस्थान, पृ० ८७–८८ (१९५०)।
३–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास, दू० खं० पृ० ६७२–७३।
४–वही, पृ० ७००-७०१।

को राणा साँगा के दूसरे पुत्र विक्रमाजीत के जो अपनी माता पद्मावती (? कर्मवती) के साथ रणथंभौर में रहता था, कुछ आदमी मेरे पास आए। मेरे ग्वालियर को रवाना होने के पहले भी विक्रमाजीत के अत्यन्त विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर राणा की अधीनता स्वीकार करने के समाचार लेकर आये थे—मैंने यह भी कहा कि यदि विक्रमाजीत अपनी शर्तों पर दृढ़ रहा तो उसके पिता की जगह उसे चित्तौड़ की गद्दी पर बिठा दूंगा।"

"ये सब बातें हुईं, परन्तु सूरजमल रणथंभौर जैसा किला बाबर को दिलाना नहीं चाहता था, उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिए यह प्रपंच रचा था, इसी से रणथंभौर का किला बादशाह को सौंपा न गया, परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और बढ़ गया।"[1]

"— — महाराणा ने उसको छल से मारने की ठान ली। इस विषय में गुहणोत नैणसी लिखता है–"राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूंदी के निकट पहुँचा और सूरजमल को बुलाया।— — राणा ने अपनी पंवार वंश की रानी से कहा कि कल हम एकल सुअर मारेंगे। — — दूसरे ही दिन सबेरे सूरजमल को साथ लेकर राणा शिकार को गया। राणा ने पूरनमल को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया, परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी, तब राणा ने सवार होकर उस पर तलवार का वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा कट गया, इस पर पूरनमल ने भी एक वार किया, जो सूरजमल की जांघ पर लगा, तब तो लपक कर सूरजमल ने पूरनमल पर प्रहार किया, जिससे वह चिल्लाने लगा। उसे बचाने के लिये राणा वहां आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की लगाम पकड़कर झुके हुए राणा की गर्दन के नीचे ऐसा कटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा ने घोड़े पर से गिरते-गिरते पानी मांगा, तो सूरजमल ने कहा कि काल ने तुझे खा लिया है, अब तू जल नहीं पी सकता। वहीं राणा और सूरजमल, दोनों के प्राणपक्षी उड़ गए। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और रानी पंवार उसके साथ सती हुई। यह घटना वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुई।"[2]

जायसी ने पदमावत की सर्जना शेरशाह के समय में १५४० ई० में की है। पदमावत की सर्जना के लगभग १० वर्ष पूर्व मेवाड़ के राणा रत्नसिंह और बूंदी के सूरजमल का द्वन्द्व और दोनों की मृत्यु वाली घटना घटी थी। जायसी ने जिस

१–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास, पृ० ७०४।
२–वही, पृ० ७०४–५।

देवपाल और रत्नसेन–द्वन्द्व' की परिकल्पना की थी, सम्भवतः यही घटना उसके मूल में है।

"जौ देवपाल राव रन गाजा। मोहिं तोहिं जूझ एकौझा राजा॥
मेलेसि सांग आइ विष भरी। मेटि न जाइ काल की घरी॥
आइ नाभि तर सांग बईठी। नाभि बेधि निकसी सो पीठी॥
चला मारि तब राजै मारा। टूट कंध धड़ भयउ निनारा॥
सुधि बुधि तौ सब बिसरी, भार परा मझ बाट।
हस्ति घोर को काररं? घर आनी गइ खाट॥[1]

रतनसिंह – सूरजमल द्वन्द्व, तलवार का नाभि तक पहुंच जाना, दोनों की मृत्यु, रानी पंवार का सती होना वाली घटना और रत्नसेन, देवपाल–द्वन्द्व, सांग का चीरते हुए नाभि तक पहुंचना, दोनों की मृत्यु, रानी पद्मिनी और नागमती का का सती होना इन दोनों घटनाओं में अद्भुत साम्य है।

इससे एक अन्य बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि अवश्य ही पदमावत की रचना इस घटना (अर्थात् १५३१ ई०) के बाद ही हुई है। इस प्रकार पदमावत की रचना ६२७ हि० (१५२० ई०) में कहना भी असंगत हो जाता है।[2]

श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[3] ने सुदृढ़ प्रमाणों के आधार पर पद्मिनी की कथा को कवि की कल्पना – मात्र माना है। तत्कालीन जीवित और प्रामाणिक इतिहास-लेखक राजकवि अमीर खुसरो और बर्नी ने पद्मिनी का नाम तक नहीं लिया है। जहाँ राजकवि खुसरो ने एक ओर देवल देवी और खिजिर खां के प्रेम का वर्णन ऐतिहासिक तथ्यों के साथ 'आशिकाह' में किया है, जहाँ उसने अलाउद्दीन के आक्रमणों, का अत्यन्त उल्लिसत भाव से और विलासित तथ्यावली में रसपूर्ण वर्णन किया है, वहां वह पद्मिनी की कथा जैसे सरस प्रसंग की अवहेलना कर जाय – यह बात असम्भव प्रतीत होती है, वह चित्तौड़ की चढ़ाई में अलाउद्दीन के साथ भी गया था। यदि पद्मिनी की कथा लोक-जीवन या लोक कथाओं से गृहीत और कवि-कल्पना न होती न तो बर्नी और खुसरो अवश्य ही उसका रसमय वर्णन करते। अतः पद्मिनी की कथा ऐतिहासिक नहीं प्रतीत[4] होती।

पूर्वार्द्ध की कथा नाथ पंथियों के सिंहल–गमन, सिद्धि-प्राप्ति आदि पर

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जा० ग्रं०, पृ० २९७।

२–द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का 'पदमावत का रचनाकाल'।

३–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १९१।

४–द्रष्टव्य : मार्डन रिव्यू (नवम्बर १९५०) पृ० ३६१—६८, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६ अंक ३ पृ० २६–३१, साहित्य संदेश, (भा० १३ अंक ६) पृ० २४९-५०।

आधारित लोक-कथाओं का काव्यबद्ध विकसित एवं विलसित रूप है। यह बात भी कल्पना-मात्र है कि सिंहलद्वीप लंका न होकर राजस्थान का सिंगोली या महाराष्ट्र का 'बम्बई के पास सिंहल या सांगली' स्थान है ।

वस्तुत: लोगों ने इतिहास के अभाव में या ऐतिहासिक अध्ययन न करने के कारण 'पदमावत' को ऐतिहासिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ मान लिया है। वास्तविकता यह है कि वह नाम मात्र के लिए ऐतिहासिक है । वह एक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर रखा गया है—

(१) रत्नसेन चित्तौड़ का राजा था। उसने मात्र एक वर्ष राज्य किया था।

(२) दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने १३०३—४ ई० में चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी और छ: महीने में उसे जीत लिया था।

(३) क्षत्राणियों ने जौहर की ज्वाला में प्राणाहुति दी थी ।

(४) सम्भवत: उस समय 'पद्मिनी' नाम की रानी नहीं थी, जिसके लिए ही अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था । यह परवर्ती भट्ट भणंत और मात्र कल्पना है ।

फिरिश्ता, अबुल-फजल टाड आदि की पद्मिनी-सम्बन्धी बातों का मूल स्रोत पदमावत है।

(उपर्युक्त इतिहासकारों की पद्मिनी-सम्बन्धी बातों का मूल स्रोत पदमावत है) । हमारे यहाँ पद्मिनी-सम्बन्धी कथाएँ लोक और साहित्य में प्रचलित ही रही हैं ।

सिंहल द्वीप की पद्मिनी, उसका हीरामन शुक, रत्नसेन का सोलह सहस्र जोगी राजकुमारों के साथ सिंहल जाना पद्मिनी को व्याह लाना प्रभृति बातें लोक-कथात्मक एवं कवि-कल्पित हैं ।

रत्नसेन के समय में सिंहल में गन्धर्व सेन नामक कोई राजा था ही नहीं,[१] उस समय वहां का राजा कीर्ति निश्शंकदेव पराक्रम बाहु (चौथा) या भुवनेक बाहु तीसरा होना चाहिए ।[२] ये गन्धर्वसेन भी कवि कल्पना-मात्र हैं (गन्धर्व सेन की सम्भावना तो इन्द्र के दरबार, कुवेर की अलका या हिमालय प्रदेश में की जा सकती है) । उस समय कुंभलनेर स्थापित तक नहीं हुआ था, अत: देवपाल को वहां का राजा कैसे माना जाय ? अलाउद्दीन आठ वर्ष तक चित्तौड़ के लिए लड़ने के बाद निराश होकर दिल्ली नहीं लौटा, किन्तु अनुमानत: छ: महीने लड़कर उसने चित्तौड़ ले लिया था, वह एक ही बार चित्तौड़ पर चढ़ा था । इसलिए दूसरी बार आने की

१—डफ : क्रोनोलाजी आफ इण्डिया, पृ० ३२१—२२।
२—वही, पृ० ३२१ ।

कथा कवि-कल्पना एवं संभावना है।[१]

जायसी द्वारा गृहीत कथा

'पद्मावती' की कहानी भारतीय लोक-जीवन की एक चिर परिचित कहानी है। भारतीय वाङ्मय में 'पद्मावती' की कहानी अनेक रूपों में प्राप्त होती हैं, इनमें से कुछ के उल्लेख ऊपर किये जा चुके हैं। अभी तक निश्चित रूप से यह ज्ञात नहीं कि पद्मावती की उस चिरपरिचित कहानी के साथ अलाउद्दीन, रत्नसेन और पद्मावती वाली कहानी का संग्रन्थन सर्वप्रथम किसने किया ? जायसी के समय में यह कथा प्रचलित थी।

'सिंहलदीप पदुमनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलाउदीं देहली सुलतानू। राघव चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेका आई। हिन्दू तुरुकन्ह भई लराई॥
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा — चौपाई कहै॥[२]

जायसी का कथन है कि जैसी आदि से अन्त तक कहानी रही है तदनरूप उन्होंने उसको भाषा—चौपाई में निबद्ध करके उपस्थित किया है। जायसी के समक्ष दोनों कहानियों के रूप वर्तमान थे। उन्होंने इन दोनों कथाओं के ताने—बाने से पदमावत की कथा का संघटन किया है। उन्होंने लोकजीवन से प्रचलित पद्मावती की कथा, साहित्य में समादृत पद्मावती की कथा, अलाउद्दीन के आक्रमण की कथा और राजपूतनियों के जौहर की कथाओं को एक सूत्र में संगुफित करके पदमावत जैसा एक अदभुत—अपूर्व काव्य-सौंदर्य—सम्पन्न प्रबन्ध-काव्य प्रस्तुत किया है।

जायसी ने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इसीलिए शुक्ल जी ने जहाँ एक ओर अनुमान किया था कि इस कथा का 'पूर्वार्द्ध तो बिलकुल कल्पित[३] कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है, वहीं उन्होंने यह भी कहा है कि अवध में 'पद्मिनी रानी और हीरामन सूए'' की कहानी प्रचलित है। 'जायसी इतिहास-विज्ञ थे। अतः उन्होंने रत्नसेन, अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं।' 'जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्योरों की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया है।[४]"

१—गौ० ही० ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ०१८७—८८ से उद्धृत।
२—पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, पृ० ६।
३—रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, पृ० ६
४—वही, भूमिका, पृ० २६।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरार्द्ध की कथा में भी अलाउद्दीन, रत्नसेन, दिल्ली, चित्तौड़, अलाउद्दीन–आक्रमण, जौहर आदि कुछ ऐतिहातिक आधार हैं, किन्तु जायसी ने उसे जो रूप प्रदान किया है, उसमें सर्वत्र कवि–कल्पना का ही प्राधान्य है। कथा वास्तविक-सी लगे – एतदर्थ इसमें ऐतिहासिकता की छौंक दे दी गई है। वस्तुत: इतिहास के आधार पर पदमावत की कथा का निर्माण नहीं हुआ है। किस प्रकार कोई साहित्यिक कृति इतिहास का निर्माण कर देती है, इसका ज्वलंत उदाहरण पदमावत है। यही है पदमावतकार की महान् सफलता और उसका उत्तम काव्य-कौशल।

पदमावत साहित्यक कृति है, ऐतिहासिक नहीं। अत: पदमावत का सौंदर्य साहित्य का है इतिहास का नहीं। पदमावत के विषय में कहा जा सकता है कि उसमें सर्वत्र कवि–कल्पना का काव्य-सौंदर्य दर्शनीय है। जायसी ईरानी इतिहास-कारों की भांति 'तारीख' लिखने नहीं बैठे थे। उन्होंने बार–बार अपने कवि-कर्म का उल्लेख किया है। प्रेमपीर की अभिव्यक्ति ही उनका प्रतिपाद्य है। वे प्रेम-श्रृंगार के महान् कवि हैं। पदमावत में ही अनेक स्थलों पर अपने कवि-कर्म का उल्लेख उन्होंने किया है (केवल 'स्तुति–खण्ड' में ही) —

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोई विमोहा जेई कबिसुनी ॥
२१।१
चारि मीत कवि मुहम्मद पाए। २२।१
जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू ॥ २३।१
मुहम्मद कवि जौ बिरह भा ना तन रक्त न माँसु। दोहा २३
सन नौ सै सैंतालिस अहै। कथा अरम्भ बैन कबि कहै ॥
२४।१ (पदमावत संजीवनी टीका)
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।
कवि बिथास कंवला रस पूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी।
२४।५–६।

वे अपने को सभी कवियों का अनुवर्ती (पिछलगुवा) मानते हुए अपने कवि-कर्म की अभिव्यक्ति करते हैं —

"हौं सब कबिन्ह केर पछिलगा। किछु कहि चला तबल दइ डगा ॥[1]

उन्हें 'साहि के गढ़ छेंकने, हिन्दू-तुरकों की लड़ाई और सिंघल द्वीप की पद्‌मिनी रानी की कहानी–ज्ञात थी।' यह कहानी आदि से अन्त तक किस रूप में थी, उसे ही उन्होंने – 'भाषा–चौपाई' में कह दिया है।

१—डा० माताप्रसाद गुप्त : जा० ग्रं०' पृ० १३५।

वस्तुतः पृथ्वीराज रासो और पदमावत पर विचार करते हुए यह न भूलना चाहिए कि ये उत्कृष्ट कोटि के काव्य–ग्रन्थ हैं, इतिहास-ग्रंथ नहीं। इन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं अनैतिहासिक कहना उनके प्रति अन्याय है। इन ग्रन्थों की ऐतिहासिक चीर–फाड़ से इनके वास्तविक सौन्दर्य को नहीं पाया जा सकेगा। आवश्यकता है इन ग्रंथ-रत्नों के साहित्यिक सौन्दर्य के मूल्यांकन की, जिससे ये काव्यसमीक्षा-शाणोल्ली होकर अपना आलोक विकीर्ण कर सकें।[1]

कथानक रूढ़ि

वृक्ष दोहद, अशोक, हंस, कर्णिकार, चकोर प्रभृति कवि–समय वस्तुतः एक प्रकार के विशिष्ट 'मोटिफ' (अभिप्राय) हैं, जो अत्यन्त प्रसंग-गर्भी हैं। इनसे एक निश्चित कथा-खण्ड की व्यंजना होती है, ये अपने-आप में एक-एक पूर्ण कहानी हैं।[2] 'भारतीय कथाओं में ऐसे अनेक लघु कथा-व्यंजक प्रतीकों के प्रयोग हुए हैं। कथाओं में प्रयुक्त होने वाले इन प्रतीकों को कथात्मक 'मोटिफ[3]' अभिप्राय या कथानक रूढ़ि कहा जाने लगा है। धीरे-धीरे कथाओं में ऐसे अनेक सजातीय कथात्मक प्रतीकों के संयोग से कथात्मक 'टाइप' बन जाते हैं।[4]

कथानक रूढ़ियों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है पेंजर[5] और ब्लूम-फील्ड[6] के। इस क्षेत्र में बेनिफी और डब्ल्यू नार्मन की कृतियां भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्य में इस क्षेत्रमें दिशा-निर्देश का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयत्न आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का[7] है।

भारतीय कथाकार कथा को विकास देने के लिए एवं अभिलषित दिशा में मोड़ देने से लिए कतिपय सामान्य घटनापरक विशिष्ट अभिप्रायों तथा विषयपरक विश्वासों का आश्रय लेता है, जो दीर्घकाल से हमारे देश के कथाकाव्यों में व्यवहृत

१—द्रष्टव्य–शिवसहाय पाठक कृत पदमावत का काव्य-सौंदर्य, प्रथम अध्याय पृ० २६।

२—शिप्ले, डिक्शरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर, फोक टेल, पृ० २४७ (दी मोटिफ इज दी स्मालेस्ट रिकागनिजिबुल एलिमेंट दैट गोज टू मेक अप ए कम्पलीट स्टोरी)।

३—'मोटिफ' के लिए देखिए 'टामसन' मोटिफ इंडेक्स आव फोक लिटरेचर, १९३२–३७ एस० टी।

४—वही, पृ० २४८ (दी इम्पार्टेन्स आफ दी टाइप इज टू शो दी वे इन व्हिच नैरेटिव मोटिफ्स फार्म इन टू कान्वेंशनल क्लसटर्स)।

५—पेंजर : कथासरित्सागर (नया संस्करण), टानी कृत अनुवाद।

६—ब्लूम फील्ड, जर्नल आव अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी, वाल्यूम ३६, ४०, ४१।

७—आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल।

होते रहे हैं। इन वैशिष्ट्यों को पाश्चात्य विद्वानों ने 'मौटिफ' की संज्ञा से अभिहित किया है। हिन्दी में कतिपय विद्वानों ने 'कथा—परिधान' या 'कथारूप' की संज्ञायें भी दी हैं। परन्तु ये शब्द 'मोटिफ' के अन्तर्भूत अर्थ का सम्यक् द्योतन करते प्रतीत नहीं होते। प्रतीक, प्रयोजन, उपलक्षण और संकेत शब्द भी कथानक रूढ़ि के स्थानापन्न—रूप में प्रयुक्त हुए हैं।[१] मूलत: ये कथा के 'मोड़क—संकेत' (टर्निंग—प्वाइंट) या 'विस्तारक – विन्दु' होते हैं। आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी[२] ने इस 'मोटिफ' शब्द को 'कथानक—रूढ़ि' की संज्ञा से अभिहित किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम 'कथानक — रूढ़ि' शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

हिन्दी प्रेमख्यानक काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन लोक-गृहीत और साहित्य-क्षेत्र में समादृत कथाओं में कतिपय ऐसी सामान्य विशेषताएं उपलब्ध होती हैं जिनके मूलभूत कारण स्वरूप ये कथाएं एक सांचे में ढली-सी जान पड़ती हैं। इन कथाओं की तुलनात्मक मीमांसा करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन कवियों ने कथानक को विस्तार देने और सुनिश्चित दिशा देने के लिए घटनापरक रूढ़ियों का आश्रय लिया है। जायसी ने पदमावत की कथा में अनेक चिर-परिचित कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया है।

पदमावत में 'कथानक रूढ़ियों' का प्रयोग

पदमावत की कथा के संघटन एवं चयन पर विचार करते समय कथानक रूढ़ियों का विवेचन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, क्योंकि प्राचीन भारतीय चरित काव्यों, आख्यायिकाओं तथा अन्य कथाकाव्यों में इनके प्रयोग का प्राचुर्य है। भारतीय काव्यों में ही नहीं, अपितु फारसी, यूनानी एवं पाश्चात्य देशीय काव्यों में भी इनके प्रयोग का आधिक्य है।

भारतीय और यूनानी दोनों रोमान्सों में प्रथम दर्शन-जन्य प्रेम के सिद्धान्त की, स्वप्न में प्रेमियों का एक दूसरे के लिए हृदय खोलने की और अच्छाई से बुराई की ओर त्वरित गति से भाग्य-परिवर्तन की बात, पुन: सौभाग्य का प्रत्यावर्तन, अदम्य साहस, सागर में जलयान का ध्वंस, अलौकिक सौंदर्य-सम्पन्न नायक और नायिकायें प्रकृति और प्रेम के मुक्त और सविस्तार वर्णन इत्यादि की प्राप्ति होती है।[३]

अपभ्रंश भाषा के चरित—काव्यों में, हिन्दी के आदि कालीन काव्यों में,

---

१—डा० नामवर सिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ३१३।
२—आचार्य पं हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७२।
३—ए० बी० कीथ : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६५।

रासो में प्रेमाख्यानक काव्यों में तथा अन्य प्रकार के प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियों का खूब प्रयोग हुआ है। हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यों के सौंदर्य का संवर्धन करनेवाली इन कथानक रूढ़ियों का अध्ययन पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य की पीठिका पर अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है। श्री रामसिंह तोमर ने अपभ्रंस के चरित-काव्यों एवं हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रयुक्त कतिपय कथानक रूढ़ियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया हैं।[१]

(१) इन दोनों प्रकार के प्रेम काव्यों में एक प्रेम–कथा की प्रधानता होती है।

(२) प्रेमारंभ चित्रदर्शन, रूप-गुण श्रवण आदि से होता है।

(३) नायिका की प्राप्ति के लिये नायक का प्रयत्न, बीच में कतिपय बाधाओं का समावेश।

(४) लौकिक द्वारा परलौकिक संकेत।

(५) सिंहल यात्रा या किसी सामुद्रिक यात्रा की योजना।

(६) राक्षस, अप्सरा या किसी अन्य अलौकिक शक्ति के योग द्वारा कथा में आश्चर्य तत्व का मिश्रण, इत्यादि।

श्री तोमर जी की सूची में थोड़ी-सी ही कथानक-रूढ़ि की चर्चा है। पदमावत में ऐतिहासिकता नाम मात्र की है। उसमें आद्यंत प्राय: घटनात्मक निजंधरी कथाओं का ही प्राधान्य है। कुछ ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त उसमें सर्वत्र संभावना और कल्पना-विलास का ही सौन्दर्य है। इस विषय में ऐतिहासिक और निजंधरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल ऐसी बात का ध्यान रखा गया है कि संभावना क्या है। चित्तौर के राजा से सिंहल देश की राजपुत्री का विवाह हुआ था या नहीं, इस ऐतिहासिक तथ्य से कुछ लेना-देना नहीं है, हुआ हो, तो बहुत अच्छी बात है, न हुआ हो, तो होने की संभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा, तो किससे होगा ? शुक नामक पक्षी थोड़ा बहुत मानव–वाणी का अनुकरण कर लेता है, और भी तो कर सकता था । – – जब ये संभावनायें हैं, तो क्यों न शुक को सकलशास्त्र-विलक्षण सिद्ध कर दिया जाय। इस प्रकार संभावना पक्ष पर जोर देने के कारण कुछ कथानक रूढ़ियां इस देश में चल पड़ी हैं। कुछ रूढ़ियां ये हैं[२]–

१—कहानी कहने वाला सुग्गा।

२–क–स्वप्न में प्रिय का दर्शन,

१—विश्वभारती, खंड ५, अंक २, अप्रैल–जून, १९४६ ई०।

२–पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४–७५।

ख–चित्र में देखकर किसी पर मोहित हो जाना,
ग–भिक्षुकों या बंदियों के मुख से कीर्ति-वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना, इत्यादि ।

३—मुनि का शाप

४—रूप-परिवर्तन

५—लिंग-परिवर्तन

६—परकाय-प्रवेश

७—आकाशवाणी

८—अभिज्ञान या सहिदानी

९—परिचारिका का राजा से प्रेम और अंत में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान ।

१०–नायक का सौंदर्य ।

११–षट्ऋतु और बारहमासा से माध्यम से विरह वेदना ।

१२–हंस-कपोत आदि से संदेश भेजना ।

१३–घोड़े का आखेट के समय निर्जन बन में पहुँच जाना, मार्ग भूलना, मान सरोवर पर किसी सुन्दरी स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना, फिर प्रेम और प्रयत्न ।

१४–विजय वन में सुन्दरियों से साक्षात्कार ।

१५–युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से या कापालिक की वलि वेदी से सुन्दरी का उद्धार और प्रेम ।

१६–गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका-माता का तिरस्कार ।

१७–भरण्ड और गरुड़ आदि के द्वारा प्रिय युगलों का स्थानान्तरण ।

१८–पिपासा और जल की खोज में जाते समय असुर-दर्शन और प्रिया–वियोग ।

१९–ऐसे शहर का मिल जाना जो उजाड़ हो गया हो ।

२०–प्रिया की दोहद-कामना की पूर्ति के लिए प्रिय का असाध्य-साधन का संकल्प ।

२१–शत्रु–संतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फल-स्वरूप युद्ध इत्यादि ।

वस्तुतः भारतीय कथा-साहित्य में प्राचीन काल से ही इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियों के प्रयोग मिलते हैं । ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के आसपास

रचे गए संस्कृत साहित्य में, और पश्चात् अपभ्रंश–साहित्य में इनकी बाढ़-सी आ गई है। पदमावत की कथा-वस्तु के संघटन के लिए जायसी ने ऊपर दी गई कथानक रूढ़ियों (में से प्रायः अनेक रूढ़ियों) का प्रयोग अत्यन्त चारुता से किया है। पदमावत में इनके अतिरिक्त और भी प्रचलित कथानक रूढ़ियों के दर्शन होते हैं, जैसे सिंहलद्वीप, देवमंदिर जोगी और जोगी वेश, सपत्नी-ईर्ष्या आदि।[1]

जबतक कथाएं लोक-कण्ठ को अलंकृत करती हैं और उन्हें काव्यबद्ध नहीं किया जाता, तबतक उनकी रूढ़ियों को लोक प्रचलित कहानी की संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु जब किसी भी तत्व का साहित्य में प्रयोग परंपरा-प्रचलित और रूढ़ हो जाता है, तो उसे साहित्यिक-परम्परा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पदमावतकार के समक्ष अपभ्रंशकाल से चली आती हुई चरितकाव्यों की, मौलिक कथाओं की चन्दायन से चली आती हुई प्रेमकथा-काव्यों की एवं फारसी मसनवियों की विशाल परम्परा थी। इन काव्यों में अनेक कथानक रूढ़ियों के प्रयोग मिलते हैं। जायसी ने लोक और साहित्य में प्रचलित कथाओं से ही इन रूढ़ियों को गृहीत किया है। डा० सत्येन्द्र का कथन है कि पदमावत की संपूर्ण पृथ्वीराजरासो की ही भांति पदमावत में भी कथानक-रूढ़ियों का उत्कृष्ट सौन्दर्य दर्शनीय है।

पदमावत में प्रयुक्त विशिष्ट कथानक रूढ़ियाँ

१—सिंहलद्वीप की पद्मिनी।

२—संदेशवाहक शुक।

३—यह शुक बहेलिया द्वारा पकड़ा जाकर चित्तौड़ के ब्राह्मण के हाथ बेचा जाता है।

४—राजा तोते को खरीदता है।

५—राजा की रानी इस भय से कि तोता राजा से पद्मिनी का रूप कहेगा तो वह उसके मोह में पड़ जायेगा, तोते को मार डालना चाहती है, पर तोता बच जाता है।

६—एक राजा जो शुक से पद्मिनी का रूप सुन कर उसके प्रेम में मग्न हो जाता है।

७—राजा अपनी पहली रानी और राजपाट को त्याग कर शुक के पीछे-पीछे चलता है।

१—शिवसहाय पाठक : पदमावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० ३५–३६।

८–राजा नाव में बैठकर सात समुद्र पार करता है।

९–सिंहल में अगम्य गढ़ में पद्मिनी का निवास।

१०–एक शिव जी के मन्दिर में राजा का तपस्या करना, जहाँ वसंत के दिन पद्मिनी का आना।

११–पद्मिनी को देखकर राजा बेसुध, पद्मावती उस बेहोश राजा की छाती पर कुछ लिखकर चली गयी।

१२–होश आने पर राजा का दुख।

१३–पार्वती द्वारा राजा के प्रेम की परीक्षा।

१४–महादेव जी द्वारा कृपा करके सिद्धि देना और गढ़ का मार्ग बताना।

१५–राजा ने गढ़ पर चढ़ाई की। एक अगाध कुण्ड में रात में प्रवेश किया, वहाँ वज्र किवाड़ लगे मिले जिन्हें राजा ने खोला।

१६–राजा महलों में गया और पकड़ा गया, उसे सूली देने का आदेश।

१७–शिव-पार्वती ने भाट बनकर पद्मिनी के पिता को समझाया कि यह तो राजा है, पर उसने न माना।

१८–युद्ध की घोषणा, जोगियों की ओर से हनूमान, विष्णु तथा शिव को देखा, तो राजा ने अधीनता मानी।

१९–पद्मावती रत्नसेन को मिली।

२०–नागमती ने पक्षी के हाथ रत्नसेन के पास सिंहल संदेश भेजा।

२१–राजा पद्मावती और बहुत-सा धन ले सिंहल से विदा हुआ।

२२–समुद्र ने याचक बनकर धन मांगा, पर राजा ने न दिया।

२३–समुद्र में तूफान से अटक कर जहाज लंका में पहुँचे जहां विभीषण का राक्षस उन्हें एक वात्याचक्रालोड़ित समुद्र में ले गया।

२४–तभी एक राज पक्षी उस राक्षस को लेकर उड़ गया।

२५–रत्नसेन–पद्मावती का जहाज टूक-टूक हो गया। दोनों लकड़ी के टुकड़ों को पकड़ कर अलग-अलग बह गये।

२६–पद्मावती बहकर वहां पहुंची जहां लक्ष्मी थी। लक्ष्मी ने उसे बचाया।

२७–लक्ष्मी ने समुद्र से रत्नसेन को लाने को कहा।

२८–समुद्र एकान्त में बिलपते रत्नसेन के पास पहुँचा। ब्राह्मण बनकर और उन्हें डंडे के सहारे माया से पद्मावती के द्वीप पर ले आया।

२९–लक्ष्मी ने पद्मावती का रूप धर रत्नसेन की परीक्षा ली तब पद्मावती से मिलाया।

३०–समुद्र ने पाँच चीजें भेंट देकर दोनों को विदा किया। पाँच चीजें–१ अमृत,

२, हंस, ३, सोनहा पक्षी, ४, शार्दूल और ५, पारस पत्थर।

३१—लक्ष्मी के दिए बाड़े में से रत्न लेकर लाव–लश्कर जगन्नाथ में खरीदा, चित्तौड़ को चले।

३२—नागमती को अदृश्य शक्ति ने पति के आने की सूचना दी।

३३—एक महा पण्डित राघव चेतन ने आकर काव्य सुना कर राजा को वश में कर लिया।

३४—उसने यक्षिणी-सिद्धि से प्रतिपदा को दूज का चन्द्रमा दिखा दिया, राज पंडितों का इस प्रकार अपमान।

३५—अपमानित पंडितों ने ऐसे जादूगर को राजसभा में रखने के खतरे राजा को सुझाए। राजा ने राघव चेतन को देश-निकाला दिया।

३६—राघवचेतन ने जाते-जाते पद्मिनी का रूप देखा और पद्मिनी का दिया कंगन लिया।

३७—पद्मिनी के रूप से वह मूर्छित हो गया।

३८—राघव ने दिल्ली अलाउद्दीन को पद्मिनी का सौन्दर्य बताया तथा रत्नसेन के पास पांच अमोल रत्नों के होने की बात भी कही।

३९—अलाउद्दीन ने राघव के हाथ पत्र भेजा कि पद्मिनी को दिल्ली भेजो, राजा ने मना किया। अलाउद्दीन ने गढ़ घेर लिया।

४०—दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु राजा ने फिर भी राजपंवर पर नृत्य–अखाड़ा जोड़ा।

४१—कन्नौज के मलिक जहांगीर ने अलाउद्दीन के कहने से नीचे से एक बाण छोड़ एक नर्तकी को मार डाला।

४२—अलाउद्दीन ने सन्देश भेजा कि राणा पांचों नग दे दे, पद्मिनी नहीं लेंगे। राजा ने नग भेजे, संधि हुई।

४३—अलाउद्दीन चित्तौड़ देखने गया। राजा से शतरंज खेलते हुए झरोखे में आई हुई पद्मिनी को शीशे में देखा और मूर्छित हो गया।

४४—गढ़ से लौटते हुए शाह ने विदा के लिए साथ आए हुए राजा को प्रेम दिखाते हुए बन्दी बना लिया।

४५—इस वियोग में कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने दूती को पद्मावती को फुसला लाने के लिए भेजा।

४६—दूती ने पदमावती को फुसलाना चाहा, पर वह असफल रही और उसे बुरी तरह पीट कर निकाल दिया गया।

४७—शाह ने भी पातुर दूती को जोगिन बनाकर भेजा कि वह उसे ले आए।

४८—जोगिन के कहने से पद्मावती जोगिन बनने को तैयार हुई, पर सखियों ने रोक लिया।

४९—तब पद्मावती के साथ गोरा-बादल ने रत्नसेन को छुड़ाने का वचन दिया।

५०—बादल की नव परिणीता वधू ने रोका पर वह रुका नहीं।

५१—सोलह सौ चंडोल सजाए गए। पद्मिनी की पालकी में लुहार बैठा और डोलों में राजपूत। ये दिल्ली चले।

५२—शाह से कहा कि पद्मिनी आपके यहां आई है, पर वह रत्नसेन से मिलकर तब आपके यहां आएगी। रत्नसेन से मिलने की आज्ञा दीजिए।

५३—इस विधि से रत्नसेन को छुड़ा लिया गया। वह चित्तौड़ की ओर भेज दिया गया।

५४—बादल रत्नसेन के साथ चित्तौड़ लौटा, गोरा ने शाह की सेना को रोका युद्ध किया और मारा गया।

५५—राजा चित्तौड़ पहुँचा। प्रसन्नता छा गई। पद्मावती ने देवपाल की दूती की बात बताई।

५६—राजा ने देवपाल पर चढ़ाई कर दी। उसे मार डाला।

५७—राजा को देवपाल की सेल का घाव लग गया था। इससे वह भी मर गया।

५८—नागमती और पद्मावती सती हो गई।

पदमावत के इन अभिप्रायों के विषय में डा० सत्येन्द्र का मत है कि "अभिप्रायों की इस सूची को देखने मात्र से यह प्रतीत हो जाता है कि प्रत्येक अभिप्राय काफी विस्तृत क्षेत्र में लोक कथाओं में उपयोग में आता रहा है। कोई भी मात्र ऐतिहासिक नहीं।"[१]

पद्मावती रानी की कहानी भी भारतीय लोक और साहित्य की एक कथानक रूढ़ि है –

मूलतः पदमावती रानी की कहानी भारतवर्ष की एक पुरानी कहानी है। अवध भोजपुर जनपद की तो यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध कहानी मानी जाती है। किसी राजकुमारी का अपने पालित शुक से अपना हृदय खोलना, काम-व्यथा कहना, शुक के माध्यम से किसी राजा या राजकुमार के यहां प्रणय-संदेश भेजना, राजकुमार का आक्रमण या जोगी रूप में आगमन, भवानी या शिव-मन्दिर में मिलन, परिणय ग्रंथि में संग्रंथन, सागर–यात्रा, जलयान-ध्वंस, विविध प्रत्यूह, अलौकिक शक्ति अथवा दैवी शक्ति की सहायता, पुर्नमिलन प्रभृति तत्व भारतीय कथाओं में पाए जाते हैं।

१–डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ०२७९-८२

केवल भारतीय कथाओं में ही नहीं, फारसी कथाओं, ग्रीक-कथाओं, गौथिक-कथाओं और अन्य पाश्चात्य देशीय प्राचीन या मध्ययुगीन कथाओं में भी इस प्रकार के कथा-तत्व मिल जाते हैं।[१]

पदमावती की कथा अपने इसी रूप में लोक में प्रचलित थी।[२] भारतीय वाङ्मय में संस्कृत काल से पदमावती की कथायें प्रसिद्धि पाती रही हैं। 'कल्कि पुराण'[३] में आई हुई कथा के अनुसार पदमावती सिंहल देश के राजा वृहद्रथ की पुत्री है। कथा सारित्सागर[४] में भी लोक-कथाओं से गृहीत पदमावती की कथा वर्णित है। 'पृथ्वीराज रासो' के 'पदमावती – समय'[५] में भी पदमावती रानी की कहानी के मूल तत्व थोड़े से परिवर्तन के साथ ही हैं। 'शशिव्रता-विवाह-समय'[६] में शुक के स्थान पर हंस की अवतारणा की गई है, उस कथा के भी कुछ तत्व इससे मिलते हैं। इस कथा का मूल स्रोत 'वस्तुतः' नल-कथा में भी उपलब्ध है जहां नल के पास हंस आकर दमयन्ती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कर देता है।[७] 'चन्दायन'[८] का ढांचा लगभग पदमावती की कहानी जैसा ही है। इन दोनों काव्यों की कथाओं में सादृश्य है। सदयवत्ससावलिंगा, मिरगावती, मुगुधावती, मधुमालती, प्रेमावती, सपनावती प्रभृति प्रेम कहानियों में भी प्रेम-परक आख्यान वर्तमान थे। जायसी ने लिखा है कि 'सिंहलद्वीप की पद्मिनी रानी' की कथा उनके समक्ष वर्तमान थी–

"आदि अन्तजस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै॥[९]

जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अंत तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक गाथा है इसमें सन्देह नहीं। वस्तुतः यह कहानी आरम्भ से अंत तक लोक कहानी की भांति प्रचलित हो गई थी। अकबर के समय में यह एक लोक-कथा

१–पदमावत का काव्य–सौंदर्य, पृ० ३७।

२–वही, पृ० ३७।

३–साहित्य-सन्देश (आदि पद्मावती), भा० १३, अंक ६, पृ० २४९—५० (डा० दशरथ शर्मा का लेख)।

४–कथा सरित्सागर।

५–पृथ्वीराज रासो (पदमावती समय) हरिहरनाथ टंडन द्वारा सम्पादित।

६–पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो शशिव्रता विवाह समय, पृ०५६—७९।

७–डा० सत्येन्द्र, आलोचना (पत्रिका) भाग ४, पृ० ३५।

८–मुल्ला दाऊद, चन्दायन सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त।

९–पदमावत पृ० ९ (दो २४।५)।

के रूप में थी। आईने अकबरी, पृथ्वीराज रासो और टाड में इसी लोक कथा के वृत्त दिए गए हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि पदमावत की सम्पूर्ण कथा लोक कहानी है। उसका ऐतिहासिक वृत्त से सम्बन्ध लोक क्षेत्र में हो गया था। जिससे कहानी में ऐतिहासिक नाम आ गए हैं और लोक कहानी के अभिप्रायों की ऐतिहासिक व्याख्या लोक-मानस में प्रस्तुत कर दी गई जिसका काव्य-रूप जायसी ने खड़ा किया।"[1]

पदमावत में जायसी ने पदमावती रानी की इसी कहानी को गृहीत करके चरम-विकास का सौंदर्य प्रदान किया है। पद्मावती रानी की कहानी के समस्त लोकात्मक और काव्यात्मक रूपों में जायसी के पदमावत का काव्य-सौदर्य उत्कृष्ट कोटि का है।

पदमावत कें कतिपय विशिष्ट अभिप्रायों का सर्वेक्षण[2]

(१) सिंहलद्वीप

भारतीय लोक-जीवन और साहित्य में सिंहलदेश की पद्मिनी नारियों (मुख्य रूप से राज कन्याओं) से विवाह के अनेक समधुर और सुधारस स्नात कथा प्रसंग आए हैं। 'श्री हर्षदेव की रत्नावली' में इसी रूढ़ि का आश्रय लिया गया है। कौतूहल की लीलावती में भी नायिका सिंहलदेश की राजकन्या ही है, और जायसी के पदमावत में भी वह सिंहल देश की ही कन्या है। इन सभी स्थानों पर सिंहल को समुद्र-मध्य स्थितकोई देश माना गया है। अपभ्रंश की कथाओं में भी इस सिंहल देश का समुद्र स्थित होना पाया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिंहलदेश की कन्यायें पद्मिनी जाति की सुलक्षणा होती हैं। जायसी के पदमावत तक के काल में सिंहल के समुद्र-स्थित होने की चर्चा आती है। मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे किसी स्त्री देश में विलासिता में फंस गए थे, और उनके सुयोग्य शिष्य गोरक्षनाथ ने वहां से उनका उद्धार किया था। 'योगि-सम्प्रदाया विष्कृति' नामक एक परवर्ती ग्रन्थ में सिंहल को 'त्रिया-देश' अर्थात् 'स्त्री-देश' कहा गया है। भारतवर्ष में 'स्त्री-देश' नामक एक स्त्रीदेश की ख्याति बहुत प्रचीन काल से है। इसी देश को कदलीदेश और बाद की पुस्तकों में 'कजरीवन' कहा गया है।[3] 'सिंहलदेश की सविस्तार चर्चा करते हुए पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि नागपंथी कहानियों में भी 'सिंहलद्वीप' और 'स्त्री-देश' का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता। गुरु

१—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक-तात्विक अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० २७८—७९

२—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७६—७७।

३— ,, नाथसम्प्रदाय ५४—५५—५६।

मत्स्येन्द्रनाथ अपना महाज्ञान भूलकर एक स्त्रीदेश में जा फंसे थे। वह कहां है ? 'मीनचेतन' और 'गोरक्ष-विजय' में इस देश को 'कदलीदेश' कहा गया है। 'योगी सम्प्रदायाविष्कृति' में 'त्रिया-देश' अर्थात् सिंहलद्वीप कहा गया है। सिंहलदेश ग्रंथकार की व्याख्या है। भारतवर्ष में स्त्रीदेश नामक एक स्त्रीप्रधान देश की ख्याति बहुत पुराने जमाने से है। लगभग एक दर्जन मतों का उल्लेख करते हुए पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि इन सब से यह अनुमान पुष्ट होता है कि कदलीदेश आसाम के उत्तरी इलाके में है। तन्त्रालोक की टीका और कौल ज्ञान निर्णय से यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में ही कौल-साधना की थी। इसलिए स्त्रीदेश या कदलीवन से वस्तुत: कामरूप ही उदिष्ट है। यह भी प्रमाणित होता है कि किसी समय हिमालय के पार्वत्य अंचल में पश्चिम से पूर्व तक एक विशाल प्रदेश ऐसा था जहां स्त्रियों की प्रधानता थी। मत्स्येन्द्रनाथ जिस स्थान पर गये आचार में फंस गये थे। वह स्त्रीदेश या कदलीदेश था जो कामरूप ही हो सकता है।[१] "उडियान देश के दो भाग हैं एक का नाम सम्भलपुर है और दूसरे का नाम लंकापुरी। अनेक चीनी और तिब्बती ग्रन्थों में इस लंकापुरी की चर्चा आती है। उड्डियान में ही कहीं कोई लंकापुरी है। यह संभलपुर सिंहल हो सकता है, यह जालंधर पीठ के पास है।"[२]

सचमुच सिंहल द्वीप उडियान के समीप या वहीं कहीं होना चाहिए। पदमावत का सिंहलद्वीप — कलिंग समुद्र तट से दूर सात सागर पार स्थित है। वहां पर अत्यन्त रूपवती लावण्य-पुत्तलिका पद्मिनियाँ पाई जाती हैं। जायसी ने इन पद्मिनी नारियों के रूप-सौंदर्य का अत्यन्त उल्लसित वर्णन किया है—

'सिंहलदीप कथा अब गावौं। औ सौ पद्मिनि बरनि सुनावौं ॥
पानि भरै आवै पनिहारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी ॥
पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं। भंवर लागि तिन्ह संग फिराहीं ॥
कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं ॥'[३]

'पद्मिनी' शब्द मूलत: कामशास्त्र के नायिका-प्रकरण से सम्बद्ध है। समस्त नायिकाओं में पद्मिनी श्रेष्ठतम है। वहां से चलकर यह शब्द लोक क्षेत्र में पहुंचकर अत्यन्त सुन्दरी का पर्यायवाची बन गया। श्री नाहटा जी ने राजस्थान में प्रचलित कई पद्मिनियों और पदमावतियों का उल्लेख किया है।[४] मुहणौत नैणसी

१—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृ० ७८।

२—डा० प्रबोधचन्द्र बागची स्टडीज इन दि तंत्राज (कलकत्ता, १९३९), भाग १ और नाथ सम्प्रदाय ७ पृ० ७८।

३—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५९ अंक १, २०११।

४—पं० रामचन्द्र शुक्ल ; जायसी ग्रंथावली, सिंहलद्वीप-वर्णन-खंड १।१ और ८।१२, ४

में चार पदमावतियों का उल्लेख है ।

जायसी की पद्मावती इसी सात सागर पार के सिंहलद्वीप के राजा गंधर्व-सेन की पुत्री है । उसकी प्राप्ति के लिए रत्नसेन चित्तौड़ से सिंहल गया था । जायसी ने नाथों की सिंहल-गमन, पद्मिनी-स्त्रिग्रों के अलौकिक सौन्दर्य, सात सागर के प्रत्यूह, सिद्धि-प्राप्ति आदि से सम्बद्ध कथाओं को 'सुना' था। गोरखनाथ की कथा प्राख्यात थी ही–'सिंहल में पद्मिनियों की कल्पना गौरखपंथी योगियों की देन है । महायानी बौद्धों में धान्यकटक और श्रीपर्वत सिद्धपीठ माने गए थे ।'[१] वहां जाकर ही किसी को पूर्ण सफलता प्राप्त होती थी, ऐसा उनका विचार था । सिंहल में जाना और प्रेम और योग की साधना में उत्तीर्ण होना सिद्ध योगी के लिए अनिवार्य वस्तु थी । वहाँ साक्षात् शिव परीक्षा लेते हैं और परीक्षोतीर्ण होने पर अभीष्ट की अवाप्ति होती है । जायसी ने इन्हीं स्रोतों से सिंहलद्वीप की कथा ली है ।

पदमावत के रत्नसेन की भाँति कबीर भी राम की खोज में सिंहल की यात्रा कर चुके थे—

'कबिरा खोजी राम का गया जु सिंहलदीप ।
राम तो घट भीतर रह्या, जो आवे परतीति ।।[२]

जायसी के बहुत पहले अपभ्रंश के कई काव्यों में सिंहलद्वीप की कथानक रूढ़ि का उपयोग हो चुका था । इसका उपयोग १०६५ ई० में रचित मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' में भी हुआ है ।[३] करकंडु दक्षिण होते हुए 'सिंहल द्वीप, भी गए थे । उन्होंने सिंहल की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह भी किया था । 'जिनदत्त चरिउ' (रचयिता : लाखू या लक्खण) (१२७५) में भी सिंहलद्वीप का उल्लेख मिलता है । नायक सिंहलद्वीप में जाकर राजकुमारी से विवाह करता है । धनपाल के 'भविसयत्त कहा' (१०वीं शती ईस्वी) में भविष्यदत्त की पांच सौ व्यापारियों के साथ 'कंचनद्वीप' की यात्रा का वर्णन है । दसवीं शताब्दी में मयूर[४] कवि ने 'पदमावती कथा' की रचना की थी । इस प्रकार स्पष्ट है कि इस रोमैंटिक और मनोरम पद्मिनियों के देश का हमारे साहित्य में उपयोग प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है ।

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा का कथन भी इस सिलसिले में उल्लेखनीय

१–महापंडित राहुलसांकृत्यायन : पुरातत्व–निबंधावली, पृ० १२६ ।
२–कबीर ग्रंथावली, ना० प्र० सभा पृ० ८१ ।
३—करंजा जैन ग्रन्थमाला, सं० प्रो हीरालाल जैन १, १९३४ ई० ।
४–हिन्दी साहित्य, पं० ह० प्र० द्विवेदी पृ० २६० ।

है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार पदमावत का सिंहलद्वीप लंका ही है। उनकी राय में रत्नसेन का सिंहल की पदमावती से विवाह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वस्तुस्थिति यह है कि रत्नसेन लगभग एक ही वर्ष चित्तौड़ का राजा रहा, उसमें भी अंतिम छः महीने तक तो वह अलाउद्दीन से लड़ता ही रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल जाना, वहां पदमावती के साथ एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी के साथ चित्तौड़ लौटना सर्वथा असंभव है। -- रत्नसेन के राज्य करने का जो समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता हैं कि उनका विवाह सिंहल द्वीप अर्थात् लंका के राजा की पुत्री से नहीं किन्तु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।[१]

वस्तुतः सिंहल द्वीप की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता को लेकर बहस करना व्यर्थ है। राजा रत्नसेन का सोलह सहस्र राजकुमार जोगियों' के साथ सात सागर पार करना, महादेव के मंडप में पदमावती की प्रतीक्षा में तप-साधना-रत रहना, उसके आने पर मूर्छित हो जाना, उसके जाने के पश्चात् मूर्छा का दूर होना, महादेव-पार्वती का कोढ़ी-कोढ़िन के वेश में आना, परीक्षा लेना, रत्नसेन की ओर से युद्ध में हनुमान महादेव प्रभृत्ति देवताओं का आना, उसका पद्मावती के साथ लौटना, लक्ष्मी-समुद्र की सहायता करना प्रभृति कथा-बिन्दु किसी ऐतिहासिक या भौगोलिक तथ्य की ओर इंगित नहीं करते। वस्तुतः ये सब हमारे देश की कथाओं की कथानक-रूढ़ियां हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी के पदमावत में वर्णित सिंहलद्वीप न तो राजस्थान का 'सिंगोली' है और न लंका-द्वीप। जायसी लोक-कथाओं के सिंहलद्वीप, नाथ-संप्रदाय के सिंहल देश संबन्धी आख्यानों तथा अन्य प्रकार की सिंहल देश संबन्धी आख्यानों और कथाओं से परिचित थे। अतः उन्होंने वहीं से गृहीत करके कल्पना और संभावना के सहारे सिंहल द्वीप का विलसित चित्रण किया है। 'पैग पैग पर कुआं बावरी। साजी बैठक और पांवरी।।'[२] आदि वर्णन कल्पना मूलक ही हैं।

१—ना० प्र० पत्रिका, जिल्द १३, सं० १९८९ (पदमावत का सिंहल द्वीप लेख)।

२—इस वर्णन से स्पष्ट है कि यह अंश शेरशाह के शासन काल में लिखा गया था, शेरशाह ने सराय, कुयें, वृक्ष आदि की अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था की थी। इस वर्णन से 'सन् नौ सै सैंतालिस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा।। 'पर भी आलोक पड़ता है।

—इश्तियाक हुसैन कुरैशी : दी ऐडमिनिस्ट्रेशन आव दी सुल्तानेट आव देलही, पृ० २७० और एस० आर० शर्मा : मुगल एम्पायर इन इण्डिया, पृ० १७१।

'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' में भी पदमावती[1] की जन्मभूमि को 'समुद्रशिखर' गढ़ कहा गया है। वह उत्तरप्रदेश की कन्या बताई गई है (जो कजरी बन त्रियादेश, स्त्री-देश, सिंहल देश आदि के गड्डमड्ड और उलझान का सूचक है) यद्यपि 'पदमावती-समय' में समुद्र-यात्रा की विनियोजना नहीं है, तथापि 'समुद्रशिखरगढ़' नाम ही उसके समुद्र सान्निध्य का सूचक है। कुछ लोगों का अनुमान है कि पदमावत की सर्जना के अनन्तर 'पदमावती-समय' रासो में प्रक्षिप्त कर दिया गया है। फिर उसका राजा विजय देव[3] सिंहल के राजा विजयसिंह से मिलता-जुलता है और जादू कुल में संभवत: यातुधान कुल की याद बनी हुई है।[4]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय सिंहल देश की पद्मिनी की कथा सम्बन्धी चिर परिचित कथानक-रूढ़ि के ताने—बाने से जायसी ने पदमावत की कथा का संघटन किया है।

हीरामन शुक

शुक, शुकी, चक्रवाक, और हंस भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र हैं। ये पक्षी भारतीय परिवार में अत्यन्त समादृत तो हैं ही, उस परिवार की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति—साहित्य—में भी इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कथाओं में शुक, सारिका, हंस आदि तीन विशेष उल्लेखनीय काम करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं——

(१) कथा के कहने वाले——वक्ता और श्रोता के रूप में।

(२) कथानक की गति को अग्रसर करने वाले संदेशवाहक या प्रेम-सम्बन्ध घटक के रूप में और

(३) कथा के रहस्यों को खोलने वाले अपनराद्ध भेदिया के रूप में। अन्तिम रूप में सारिका अधिक उपयोगी समझी गई है।[5] ये पक्षी प्रेम और मिलन कराने के साथ-साथ कभी-कभी भावी दुर्घटना या मंगल की सूचना भविष्यवक्ता के रूप में देते हैं। शुक का उपयोग कथात्मक प्रतीक के रूप में संस्कृत-काल से ही होता आ रहा है।

१—'पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहुं काम कामिनि रचिय' (पद्मावती समय।५)।

२—'पूरब दिसिगढ़ गढ़नपति समुदसिषर अति दुग्ग' (पद्मावती समय १।)

३—'तहुं सुविजय सुरराजपति जादू कुलह अभग्ग।' (वही। १)।

४—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७७।

५—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५८ और ७५।

संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में निबद्ध कथाओं में शुक-शुकी का पुराना परम्परा-प्रचलित रूप दर्शनीय है। वाणभट्ट की कादम्बरी शुक के मुख से कहलवाई गई है।[1] हर्षदेव की रत्नावली में नायिका के प्रेम-रहस्य का उद्घाटन मुखरा-सारिका ने ही किया है। पार्श्वनाथ चरित के तीसरे सर्ग में एक सकलशास्त्र-पारंगत सुग्गे की कथा है। अमरुक शतक के एक श्लोक में नायक–नायिका के रात्रि के प्रेमालाप को प्रात: सास-जिठानी के समक्ष शुक के दुहराने का मनोरंजक वर्णन मिलता है––

दम्पत्योर्निशिजल्पतो गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच: ।
तत्प्रातर्गुरु सन्निधौ निगदत: श्रुत्वैव तारं वधू: ।।
कर्णालंवित पद्मरागशकलं विन्यस्य चंचुपुटे ।
व्रीड़ार्ता प्रकरोति दाड़िम फलव्याजेन वाग्बंधनम् ।।[2]

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का मत है कि पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी वाला अंश अत्यन्त प्रमाणिक और महत्वपूर्ण है। रासो की पूरी कहानी शुक-शुकी के मुख से कहलवाई गई है।[3] हीरामन सुआ प्रेम-सम्बन्ध-घटक के रूप में कनकामरकृत 'करकंडु चारिउ'[4] में भी आया है। नलकथा ने प्रेम–व्यापार-संघटक का कार्य 'हंस' ने किया है। रासो के 'समुद्रशिखरगढ़'[5] की पद्मावती और दिल्ली के पृथ्वीराज के मध्य संदेश-वहन, प्रणय–संस्थापन और परिणय-ग्रन्थि-निबन्धन शुक ने ही किए हैं। पृथ्वीराज रासो के 'शशिव्रता–विवाह–समय'[6] में शशिव्रता और पृथ्वीराज के मध्य प्रणय-परिणय-व्यापार का संघटक एक हेमवर्ण हंस है। वह इंछिनी और संयोगिता की प्रतिद्वन्द्विता के समय इंछिनी की वियोग–विधुरा अवस्था की सूचना देकर राजा को बड़ी रानी (इंछिनी) की ओर उन्मुख करता है।

भारतीय कथा–काव्यों में व्यवहृत शुक-सम्बन्धी ये सब कथायें लोक–प्रचलित थीं, अब भी हैं। पदमावत की कथा को गति देने के लिए जायसी ने इस रूढ़ि का आश्रय लिया है।

१–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५८ और ७५।
२–अमरुक शतक : १६वाँ श्लोक।
३–हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७६।
४–(सं०) प्रो० हीरालाल जैन : करकंडु चरित (कनकामरकृत), कारंजा जैन, ग्रन्थमाला, १९३४।
५–पृथ्वीराज रासो, पद्मावती समय, (सं० हरिहरनाथ टण्डन)।
६–(सं०) आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ० ५६–७८।

पदमावत में हीरामन शुक प्रेम-सम्बन्ध-घटक, संदेश-वाहक और परिणय ग्रंथि-बन्धन में सहायक—रूपों में आया है। 'सुआखंड', 'नागमती-सुआ-खंड, 'बनिजारा-खंड', 'राजा सुआ-संवाद-खंड', 'पद्मावती-सुआ-भेंट-खंड' प्रभृति स्थलों में वही मुख्य पात्र है। इन स्थलों पर जायसी ने अत्यन्त उल्लसित भाव से हीरामन की चर्चा की है।

हीरामन पद्मावती का पालित शुक है। वह स्वर्ण वर्ण का है। वह सकल कला-पारंगत है। पद्मावती का वह 'प्राण-परेवा' है। उड़ जाने पर बहेलिए ने पकड़ कर उसे एक ब्राह्मण के हाथ बेंच दिया। ब्राह्मण से रत्नसेन ने क्रय कर लिया। शास्त्रविद् प्रगल्भ शुक ने नागमती को अंधेरी रात-सदृश और पद्मावती को आलोकमय दिन-सदृश बता दिया। रानी रूठी। उसे मार डालने का उपक्रम हुआ। पारस-रूपा-पद्मावती का नखशिख-वर्णन सुनकर राजा जोगी बना। राजा ने सिंहल की ओर प्रस्थान किया। शुक गुरु-रूप में मार्ग-दर्शक बना। हीरामन ने ही राजा के मन में पदमावती के प्रति आकर्षण और प्रेम उत्पन्न किया है। अन्त में युद्ध के पश्चात् उपस्थित होकर उसने राजा के राजव्यक्तित्व का परिचय दिया है।

कई लोगों का आक्षेप है कि शुक पुन: अन्त तक काव्य में नहीं आता। बात विचारणीय है, किन्तु जब उसका कार्य ही समाप्त हो गया, तो उसके उपस्थित होने की क्या आवश्यकता? वह अपने कार्य का सम्यक प्रतिपादन करके अपना आलोक विकीर्ण करके चला जाता है। जायसी का हीरामन विद्वान् और रूप–वान है—

'तब ही व्याध सुआ लै आवा। कंचन बरन अनूप सुहावा।।

शुक: पंडित और वेदज्ञ—सुए ने रत्नसेन से अपना परिचय देते हुए कहा था—

चतुरवेद हौ पंडित, हीरामन मोहि नावं।
पदमावति सौं मेखौं, सेव करौ तेहि ठावं।।

इससे स्पष्ट है कि वह चारो वेदों का पंडित है। उसकी भाषा की क्या वर्णना की जाय?

जो बोले तो मानिक मूंगा। नाहिं त मौन बांधि रह गूंगा।।
मनहु मारि मुख अमृत मेला। गुरु होइ आप कीन्ह जग चेला।

सचमुच गुरु-रूप शुक एक उत्तम कोटि का मार्ग-दर्शक था।

विशेष

कुछ विद्वानों का विचार है कि हीरामन का मूल रूप "हीरा–मणि" रहा होगा, किन्तु हमारे यहां 'हीरामणि' को परम ज्ञानामृत का पान कराने वाला तत्व नहीं माना गया। संभवत: 'हीरामन, का मूल स्रोत 'हिरण्मय' है। हमारे यहां कहा भी गया है—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं बपु: ।
सत्यधर्माय दृष्टये, तत्वं पूषन्नपावृणु ।।"

अमृत तत्व इसी हिरण्मय पात्र के ही माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है । पदमावत में भी हीरामन पारस, अमृत या परम तत्व-रूपा पदमावती को प्राप्त कराने का कार्य कराता है । उसका और अमृत रूपा परमात्म-ज्योति पदमावती का सान्निध्य है ।

वस्तुत: भारतीय कथा साहित्य की यह एक कथानक रूढ़ि है कि शुक वेदज्ञ पण्डित और मानव की भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने वाला कहा जाता है । विश्व की अनेक प्राचीन कथाओं में भी पक्षी का यह रूप मिल जाता है । सोमदेव के कथासरित्सागर की कई कहानियों में शुक का उपयोग हुआ है । पाटलिपुत्र के नरेश 'विक्रमकेशरी' के पास 'विदग्धचूड़ामणि' नाम का एक शुक था । उसी की सलाह से राजा ने मगध देश की राजकन्या 'चन्द्रप्रभा' से विवाह किया था ।[१]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हीरामन (शुक की कथा) भारतीय जीवन और साहित्य की एक अत्यन्त प्राचीन लोक कथा है जो साहित्य में विविध रूपों में व्यवहृत होती चली आयी है । वस्तुत: जायसी ने हीरामन शुक की कथा अवध जनपद में प्रख्यात हीरामन की कथा से, भारतीय लोक और साहित्य में समादृत हीरामन की कथानक रूढ़ि से गृहीत किया है । यह न तो किसी इतिहास की वस्तु है और न पुराण की । वस्तुत: यह लोक-कथाओं से गृहीत दीर्घ काल से प्रचलित कथानक-रूढ़ि है । इस कथानक में इतिहास खोजने के लिए मूंड़ मारना बेकार है । इसे अमुक ने अमुक से चुराया है, या यह अमुक पुराण से चुराई गई है कहकर इसे पौराणिक कथा मानना या चुराये जाने की बात कहना उचित नहीं है । दो या तीन स्थानों पर ही इसका उपयोग नहीं हुआ है, कई स्थानों पर हुआ है ।[२] उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में चतुरसेन शास्त्री का यह मत है कि कि यह कथा अमुक पुराण से चुराई गई है, निर्मूल सिद्ध हो जाता है ।[३]

फारसी साहित्य में प्रेम सम्बन्धी-घटक पंछी, मानसरोवर, बारहमासा, समुद्र-यात्रा, तूफान, जलयान-ध्वंस, शिवमन्दिर, शंकर-पारवती प्रभृति अनेक रूढ़ियां

१—पेंजर : ओशन आव दि स्टोरी, पार्ट ६, चै० ७, पृ० १८३, २६७ ।

२—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७६ (पदमावत का काव्य-सौंदर्य, पृ० ४३—४४ से उद्धृत) ।

३—पदमावत की कथानक रूढ़ियों के विशेष अध्ययन के लिये देखिये पदमावत का काव्य-सौंदर्य, पृ० ३१—५६ ।

नहीं मिलती। यह अवश्य है कि नायिका के सौंदर्य के चित्रण के लिए फारसी के कवि नख-शिख-वर्णन[1] अवश्य करते हैं। पदमावत की कथानक-रूढ़ियाँ प्रायः भारतीय कथाओं की परम्परा-ग्रथित रूढ़ियां हैं। इसमें लोक कथाओं की रूढ़ियां पंवारों से ली गई रूढ़ियों, लोक-गीतों की रूढ़ियों, काव्यों महाकाव्यों की रूढ़ियों आदि का सुगुंफन पदमावत में द्रष्टव्य है। इसकी कथा में मसनवी-काव्यों की कुछ रूढ़ियाँ या परम्परायें अवश्य मिलती हैं, पर इसकी अनेक कथा-रूढ़ियों का मूल स्रोत फारसी साहित्य में नहीं है। उनका मूल प्रायः भारतीय है।

१–लैला-मजनूं, निजामी, पृ० ३३—३४।

५

प्रबंध काव्य के रूप में पदमावत का संघटन

महाकाव्य के भारतीय लक्षण

संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में महाकाव्य-सम्बन्धी आदर्शों एवं लक्षणों का और उसके विविध अंगों का विशद विवेचन किया गया है। भामह[१] ने 'काव्यालंकार में लिखा है कि "महाकाव्य एक सर्गबद्ध रचना है। उसके चरित्र महान् होते हैं, उसमें सालंकार शिष्ट भाषा का प्रयोग होता है। उसमें सदाश्रयता होती है। उसमें नायक के अभ्युदय के साथ ही मंत्र, दूत, प्रयाण आदि का सविस्तार वर्णन होता है। वह पंच संधियों से युक्त होता है। उसमें चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) का विधान किया जाता है, अर्थ को प्राधान्य दिया जाता है। नायक का वंश-वीर्यादि विश्रुत होना चाहिए। उसमें इतर व्यक्ति के उत्कर्ष-प्रदर्शन के लिए नायक का बध नहीं दिखाया जाता।"

१— "सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च तत्।
अग्रगम्य शब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मंत्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत।
पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत॥
चतुर्वर्गाभिभानेपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।
नायकं प्रागुप पन्यस्य वंशवीर्य श्रुतादिभिः।
न तस्य बधं ब्रूयादन्यात्कर्षाभिधित्सया।
यदिकाव्य शरीरस्य न स व्यापित येष्यते।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रसणस्तवौ॥"

आचार्य दण्डी[१], रुद्रट[२] हेमचन्द्र,[३] विश्वनाथ,[४] मम्मट, पंडितराज जगन्नाथ ने भी महाकाव्य के स्वरूप की विवेचना की है।

विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया है—

(१) महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध होती है।

(२) इसका नायक कोई देवता, सद्वंशीय क्षत्रिय अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त व्यक्ति होता है। एक ही वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।

(३) श्रृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रधान होता है। अन्य रस उसके अंगी होकर आते हैं।

(४) वह नाटक की पंचसंधियों से समन्वित हो।

(५) कथानक इतिहास-प्रसिद्ध या सज्जनाश्रित होना चाहिए।

(६) उसमें चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक के फल की प्राप्ति हो।

(७) उसमें आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण

१— सर्गबन्धों महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया-वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहास कथोद्भूतमितरद्वासदश्रयम्।
चतुर्वर्ग फलायतं चतुरोदात्त—नायकम्।
नगरार्णव शैलर्तु चन्द्राकोदय वर्णनैं।
मंत्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव निरंतरम्।
सर्गैरनतिचिस्तीर्णः श्राव्यवृतैः सुसंधिभिः॥
सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदंगेः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विधः॥

—दण्डी, काव्यादर्श, परि० १, १४—२० (शास्त्री रंगाचार्य, रेड्डी तथा वेलंकर (पूना) गवर्नमेंट आफ इंडिया स्टडीज), पृ० ३६।

२—रुद्रट, काव्यालंकार, परि०. १६, ७—१९।

३—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ९, पृ० ३३०।

४—विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, परिच्छेद, ६ श्लोक ३१५—३२८।

होता है।

(८) उसमें खल-निन्दा और सज्जन स्तुति भी हो।

(९) इसके सर्गों की संख्या आठ से अधिक हो। सर्ग न अधिक छोटे हों और न अधिक बड़े। प्राय: प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है। सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन उचित है। एक सर्ग में विविध छन्दों के प्रयोग भी होते हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना होनी चाहिए।

(१०) महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रात:काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, रण–प्रयाण, विवाह, मंत्र, पुत्रोत्पत्ति आदि का प्रयोग सांगोपांग वर्णन होना चहिए।

(११) महाकाव्य का नाम कवि, कथावस्तु, नायक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होना चाहिए। सर्गों के नाम सर्गगत कथा के आधार पर होने चाहिए।

(१२) प्राकृत में निर्मित महाकाव्यों में सर्ग आश्वास संज्ञक होते हैं और अपभ्रंश में कुडबक का विधान होता है और प्राकृत में स्कंधक और गलितक तथा अपभ्रंश में उसके योग्य अन्य विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत-प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों को दृष्टि में रखते हुए महाकाव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है–

"पद्यं प्राय: संस्कृत प्राकृतापभ्रंश ग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्त सर्गाश्वास संध्यवस्कन्धकबन्धं सत्संधि शब्दार्थ वैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।"[१]

हेमचन्द्र ने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य का होना स्वीकार किया है। उनका कथन है कि महाकाव्य संस्कृत में सर्गबन्ध, प्राकृत में आश्वासकबंध, अपभ्रंश में सन्धिबंध और ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कन्धकबन्ध होते हैं।

महाकाव्य विषयक पाश्चात्य आदर्श

महाकाव्य के लिए पाश्चात्य-साहित्य में 'एपिक' (Epic) शब्द का प्रयोग किया जाता है। मूलत: 'एपिक' (Epic) शब्द 'इपोस' से व्युत्पन्न है। 'इपोज' का अर्थ है 'शब्द'[२]। इसका प्रयोग कहानी, वक्तव्य अथवा गीत के लिए होता था। कालांतर में 'एपिक' शब्द रूढ़ि रूप में एक वीरकाव्य विशेष का पर्याय बन गया, जिसमें किसी महान् घटना का भव्य शैली में वर्णन हो।

१–हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्ययन।

२–द्रष्टव्य, डिक्सनरी आफ वैर्ल्ड लिटरेचर (शिप्ले)।

अरस्तू ने 'ट्रेजेडी' और एपिक (महाकाव्य) की तुलनात्मक मीमांसा करते हुए महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। उसका कथन है कि 'जहां तक शब्दों के माध्यम से महान् चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है महाकाव्य और दुःखान्त की (ट्रेजेडी) में समानता प्राप्त होती है, किन्तु कतिपय दृष्टिकोणों से दोनो में पर्याप्त वैभिन्य है। महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। उसमें आदि मध्य और अन्त से युक्त कार्य की अन्विति होती है। वह प्रकथन-प्रधान होता है। उसके कार्य-व्यापार में समय की सीमा नहीं रहती। दुःखान्त की (ट्रेजेडी) का कार्य-व्यापार २४ घण्टे तक का ही होता है।[१]

इस प्रकार अरस्तू के मतानुसार महाकाव्य में किसी गम्भीर, पूर्ण एवं उदात्त कार्य की काव्यमय अनुकृति होती है। उसकी भाषा-शैली में मनोरमता एवं अलंकृतता आवश्यक गुण हैं। उसमें कार्यान्विति, व्यापक कथा एवं महान् चरित्रों की योजना की जानी चाहिए। फ्रेन्च आलोचक 'ली बोस्सु' ने महाकाव्य को प्राचीन घटनाओं के चित्रण के लिए एक छन्दोबद्ध रूपक के रूप में स्वीकार किया है।[२] लार्ड केम्स के मतानुसार महाकाव्य में वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन होता है।[३] हाव्स ने भी वीरतापूर्ण प्रकथनात्मक कविता को ही महाकाव्य माना है।[४] डेवनाट का कथन है कि महाकाव्य का आधार प्राचीन घटनाओं पर प्रतिष्ठित होना चाहिए। लुकन ने प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाओं को ही महाकाव्य के लिए अधिक उपयुक्त माना है। रैसां ने मध्यम मार्ग को महत्व प्रदान करते हुए कहा है कि महाकाव्य की घटनायें न अत्यन्त नवीन हों और न अत्यन्त प्राचीन।[५]

पाश्चात्य समीक्षकों ने मुख्य रूप से महाकाव्य के दो भेद बताये हैं--

(१) विकसनशील महाकाव्य (एपिक आफ ग्रोथ) और

(२) कलात्मक महाकाव्य (एपिक आफ आर्ट)

इन्हें ही उन्होंने प्रामाणिक और साहित्यिक की संज्ञायें दी हैं। विकसनशील महाकाव्य एक व्यक्ति की रचना न होकर अनेक व्यक्तियों की रचनाओं का सुसंबद्ध काव्य-रूप होता है,[६] जैसे, इलियड, ओडेसी (हिन्दी में पृथ्वीराज रासो)। कलात्मक

१–डोमेट्रियस, अरिस्टाटिल्स पोइट्री, पृ० १३

२–इबिड, पृ० २।

३–एम० डिक्सन, इंग्लिश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० १८।

४–वही, पृ० २२।

५–एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० १।

६–एम० डिक्सन, इंग्लिश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० २७।

महाकाव्य किसी व्यक्ति की वह काव्यकृति है, जिसमें स्वाभाविकता के स्थान पर आलंकारिकता या कृत्रिमता होती है। यह रचना विद्वानों के लिए होती है। काव्य के सुनिर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार इसकी रचना होती है। इसमें कलापक्ष मुख्य रहता है। इसमें भाषा-शैली का सौन्दर्य और काव्य-कला का उदात्त रूप मिलता हैं[१] जैसे इनियड एवं पैराडाइज लास्ट।

रघुवंश और कुमारसंभव इसी के अन्तर्गत आते हैं। पाश्चात्य आलोचकों के महाकाव्य–विषयक प्रधान लक्षण इस प्रकार हैं––

(१) कथानक : महाकाव्य का कथानक प्रकथन प्रधान, लोक–विश्रुत, विशाल और महत्वपूर्ण होना चाहिए।[२] केम्प ने प्राचीन, लुकन ने अर्वाचीन और टैसो ने नाति प्राचीन और नाति अर्वाचीन घटनाओं को महाकाव्य के विषय के लिए ठीक कहा है।[३] लोक विश्रुतता और ऐतिहासिक घटनात्मकता का कथानक में होना आवश्यक माना गया है। मात्र कवि-कल्पना पर आधारित कथानक महाकाव्य के लिए उपयुक्त नहीं है।[४]

(२) नायक : नायक का गुणी, शूर और विजयी होना आवश्यक है। एक से अधिक नायक भी हो सकते हैं। नायक देश या जाति का प्रतिनिधित्व करता हुआ चित्रित किया जाता है, अत: उसको विजयी रूप में चित्रित करना आवश्यक है, क्योंकि उसकी विजय देश या जाति की विजय है। नायक को युद्ध प्रिय होना चाहिए।

(३) अति प्राकृत और अलौकिक तत्वों का मिश्रण–नाटकों में तो दर्शकों को आश्चर्यचकित करने की ही आवश्यकता रहती है, पर महाकाव्यों में उससे आगे बढ़कर असम्भव, अविश्वसनीय और आश्चर्योत्पादक बातों एवं घटनाओं के भी वर्णन होते हैं। मानव की प्रकृति है कि वह श्रोताओं को विस्मय-विमुग्ध करने के लिए बात को अलंकृत रूप में या बढ़ा–चढ़ाकर उपस्थित करता है। यही कारण है कि महाकाव्य में अलौकिक और अति प्राकृत शक्ति वाले देवों, व्यक्तियों या घटनाओं का वर्णन होता है।[५] महाकवि को असम्भव लगने वाली सम्भव घटनाओं की अपेक्षा सम्भव लगने वाली असम्भव घटनाओं का चित्रण[६] करना पड़ता है। इसीलिए इलियड, ओडेसी, पेराडाइज लास्ट प्रभृति महा–

१–एल० एबरक्राम्बी : दी एपिक, पृ० ३९।

२–वही, पृ० ४८।

३–एम डिक्शन : इंग्लिश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० २३।

४–एल० एबरक्राम्बी, दी एपिक, पृ० ५५।

५–दि एपिक पृ० ४९। ६–वही, पृ० ५०।

काव्यों में देवता, अलौकिक शक्ति, भूत–प्रेत आदि का समावेश किया गया है। शायद महाकाव्य की कथा को महत्वपूर्ण और प्रभविष्णु बनाने के लिए और कार्य-सीमा की सविस्तरता के लिए पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में अलौकिक तत्वों का मिश्रण आवश्यक कहा है।[१]

(४) भाषा-छन्द का आदि से अन्त तक असाधारण, शालीन, गरिमा–सम्पन्न प्रयोग होना आवश्यक है।

(५) अन्य–जातीय भावों का प्राधान्य–महाकाव्य किसी जाति की प्रतिनिधि रचना होती है। अन्य पात्रों का चित्रण, विविध दृश्यों, स्थानों, उपाख्यानों, घटनाओं आदि के मनोमय ढंग से उपस्थापन[२] के साथ ही कथा की एक सूत्रता और लक्ष्य की एकता भी महाकाव्य में आवश्यक तत्व माने गये हैं।

महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य मतों की समीक्षा करने पर सिद्धान्ततः विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। कथा, छन्द, नायक, अन्य पात्र, देवता प्रभृति तत्व लगभग दोनों में समान हैं। भारतीय काव्यों में शृंगार, वीर और शान्त में से एक को प्रधान माना जाता है। पाश्चात्य आलोचकों ने केवल वीर रस को ही प्रधान माना है। उन्होंने जातीय भाव के समावेश का आग्रह किया है। इस विषय में डिक्सन का कथन उल्लेखनीय है––"महाकाव्य सभी देशों में एक जैसा है। पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण–सर्वत्र उसकी आत्मा और प्रकृति में एकता है। महाकाव्य कहीं भी सर्जित हो उसकी रचना सुशृंखलित होती है। वह प्रकथन-प्रधान होता है, उसका सम्बन्ध महान् चरित्रों से होता है, उसमें महत्कार्य गरिमामयी शैली, महत् चरित्र आदि की सुनियोजना की जाती है। उपाख्यानों एवं सविस्तार वर्णनों से उसका कथानक समृद्ध बनाया जाता है।[३]

पदमावत का महाकाव्यत्व

पदमावत के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए डा० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है––"पदमावत अलंकृत या साहित्यिक महाकाव्य है अर्थात् उसकी रचना एक विशिष्ट कवि–द्वारा परम्परा प्राप्त साहित्यिक शैली में हुई है। उसकी शैली में विकसनशील महाकाव्यों में प्राप्त होने वाले अनेक तत्व–अलौकिक और अति प्राकृत शक्तियों में विश्वास, कथात्मकता आदि–वर्तमान हैं। कन्याहरण, सिंहल की भयंकर यात्रा, जहाज-टूटना, अन्य साहसिक कार्य, अलौकिक अति प्राकृत शक्तियों का मानव

१–एल एबरक्राम्बी : दी एपिक, पृ० ६५।

२–एम० डिक्सन : इंग्लिश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० २२।

३–वही, पृ० २४।

के साथ सम्बन्ध, जादू की सिधिगुटिका, शास्त्र और मानव भाषा-भाषी शुक आदि रोमांचक तत्वों का भी समावेश किया गया है।' इसमें रोमांचक तत्वों पर विचार करने के पश्चात् उन्होंने लिखा है– "पदमावत को हमने रोमांचक शैली का महाकाव्य माना हैं।" 'इसमें रोमांचक तत्व बहुत हैं, पर वे कवि के महदुद्देश्य और प्रतीकात्मक शैली, काव्यात्मक वर्णन तथा उत्तरार्द्ध की कथा के ऐतिहासिक आधार के कारण नियन्त्रित हैं। अतः यह कथा, आख्यायिका न होकर रोमांचक शैली का महाकाव्य है।"[१]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि "प्रबन्ध क्षेत्र के भीतर दो सर्वश्रेष्ठ काव्य हैं, 'रामचरित मानस' और 'पदमावत'। पदमावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।"[२]

१–सुसंगठित और जीवन्त कथावस्तु

पदमावत में चित्तौड़ के राजा रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी की प्रेमकथा वर्णित है। सम्पूर्ण काव्य की कथा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध की कथा लोक विश्रुत पदमावती रानी की कहानी है। उत्तरार्द्ध की कथा में अलाउद्दीन के आक्रमण, जौहर आदि ऐतिहासिक तथ्यों की छौंक देकर उसे ऐतिहासिक-सी कथा बना देने का सफल प्रयत्न हैं। प्रासंगिक एवं आधिकारिक कथाओं में पूरी अन्विति वर्तमान है। इसकी कथा पर्याप्त विस्तृत और व्यापक है। उसमें कल्पना और इतिहास का अद्भुत समन्वय मिलता है। सम्पूर्ण कथा रत्नसेन और पद्मावती से सुसंबद्ध है। सम्पूर्ण कथा का विभाजन ५८ खंडों में किया गया है। खण्ड न विशेष बड़े हैं और न विशेष छोटे। कुछ खण्ड अवश्य छोटे हैं, पर अपने छोटे-रूप में भी वे प्रभविष्णु एवं महत्वपूर्ण हैं। "रत्नसेन जन्मखण्ड, रत्नसेन-सती खण्ड और रत्नसेन साथी-खण्ड" अल्प विस्तार वाले खण्ड हैं, किन्तु इस कारण कथा-प्रवाह में कहीं भी अवरोध उत्पन्न नहीं होता। कथा में आदि से अन्त तक कवि की महान् प्रतिभा और कल्पना-विलास का सौन्दर्य दर्शनीय है। अलाउद्दीन का दर्पण में पदमावती की छाया देखना, रत्नसेन का बन्दी-रूप में दिल्ली-गमन, देवपाल की दूती का प्रसंग, प्रभृति अनेक घटनाएँ किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित हैं, किन्तु पद्मावत में वे सर्वथा कवि-कल्पित हैं।

स्पष्ट कि इसका विषय महान् और व्यापक है। इसमें प्रेम-पीर के काव्यात्मक सौन्दर्य का चरम विकास हुआ है। अरस्तू के अनुसार 'जीवंत कथानक का गुण

१–डा० शम्भूनाथसिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ४२८।
२–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी-ग्रंथावली, पृ० २१०, (भूमिका)।

यह है कि उसमें आदि, मध्य और अंत अर्थात् उसका सर्वांग समानुपातिक विकास हुआ हो। पदमावत में पदमावती-विवाह तक की घटनायें कथा के आदि भाग के अंतर्गत हैं। विवाह के बाद राघव चेतन देश निकाला-खंड तक की कथा मध्य भाग के अन्तर्गत है और उसके पश्चात् की कथा अंत के रूप में है। स्पष्ट ही इसके आदि मध्य और अंत में समानुपातिक विकास द्रष्टव्य है।

पदमावत में नाटकीय सधियों और कार्यावस्थाओं का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। उत्तरार्ध की कथा में प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम इन पांचों कार्यावस्थाओं एवं मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण-इन पांच संधियों की सम्यक् योजना हुई है। इस कथा में रत्नसेन को फल (पदमावती) की प्राप्ति हो जाती है। उत्तरार्ध की कथा में मुख्य रूप से प्रारम्भ, प्रयत्न और प्राप्त्याशा की ही संयोजना हुई है। अंत में नियताप्ति और फलागम को प्रत्यक्षत: न दिखाकर निगत और अवसान नामक पाश्चात्य ढंग की कार्यावस्थायें दिखलाई पड़ती हैं।

'पदमावत' का 'कार्य' है पदमावती का सती होना। सम्बन्ध-निर्वाह के ही अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना चाहिए। यह कहना पड़ता है कि पदमावत में कथा की गति के बीच बीच अनावश्यक विराम बहुत से हैं। मार्मिक परिस्थित के विवरण और चित्रण के लिए घटनावली का जो विराम पहले कह आये हैं वह तो काव्य के लिये अत्यन्त आवश्यक विराम है। क्योंकि उसी से सारे प्रबन्ध में रसात्मकता आती है।''[१] जायसी का सम्बन्ध-निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की श्रृंखला बराबर लगी है। कथा-प्रवाह खण्डित नहीं है।[२] 'पदमावत का कथानक पूर्णत: सुसँघटित और सुशृंखलित है। इस प्रकार अरस्तू की 'कार्यान्वित' और पाश्चात्य देशीय कार्यावस्थाओं की कसौटी पर पदमावत पूर्णत: खरा उतरता है। पदमावत में कोई भी घटना कथा की दृष्टि से अनावश्यक नहीं है। सभी घटनायें और प्रसंग एक दूसरे से कार्य कारण श्रृंखला में बंधे हैं। प्रत्येक घटना कथा-प्रवाह में योग देती है। पदमावत का कथानक पूर्णत: सुसंघटित कलात्मक और अन्विति युक्त है।

२ नायक

कथावस्तु के अनन्तर महाकाव्य के तत्वों में 'नायक' तत्व को प्रमुख स्थान दिया जाता है। वस्तुत: नायक के रूप में एक महत्तम चरित्र की सृष्टि के लिए ही कवि महाकाव्य की सर्जना में प्रवृत्त होता है। इस प्रसंग में कवीन्द्र रवीन्द्र

१– पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली (भूमिका), पृ० ७५।
२–वही, पृ० ७२।

का कथन उल्लेख्य है—

'मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है, तब कवि उसे गीति-काव्य में प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार जब मन में एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना-राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार-महत्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिभा प्रतिष्ठित करने के लिये कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं, उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है, और उसका विचार मेघों को भेदकर आकाश में उठता है, उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देवभाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ-आकर, लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।''[१]

पदमावत का नायक रत्नसेन महाकाव्योचित नायक है। नायक में बुद्धि उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, शौर्य, औदार्य, गांभीर्य, धैर्य, स्थैर्य, माधुर्य, कला-कुशलता, विनय, निरोगता, शुचिता, स्वाभिमान, प्रियवादिता, जनानुरागिता, वाग्मिता, महावंशत्व, दृढ़ता, तत्वशास्त्रज्ञता, अग्राम्यता, श्रृंगारिकता, सौभाग्य आदि विशेषतायें होती हैं।[२] रुद्रट[३] और विश्वनाथ[४] कविराज ने भी थोड़े अंतर के साथ इन्हीं गुणों को आवश्यक माना है। विश्वनाथ कविराज के अनुसार धीरोदात्त नायक वह है जो अपनी प्रशंसा नहीं करता और जिसमें क्षमाशीलता, अतिगम्भीरता, स्थिर प्रकृतित्व महासत्तत्व, गर्वीलापन और दृढ़ निश्चयता हो।[५]

इस दृष्टिकोण से पदमावत का रत्नसेन एक महासत्व धीरोदात्त नायक के सभी गुणों से अलंकृत, दृढ़ प्रतिज्ञ, त्यागी, विनयी, स्वाभिमानी, क्षमाशील, गम्भीर और शूर स्वभाव वाला आदर्श प्रेमी है। यह सद्वंशीय, क्षत्रिय, राजा और महान् शूर-वीर योद्धा भी है। ''रत्नसेन पर्याप्त गम्भीर है, पदमावती के प्रति उसका प्रेम उन्माद नहीं है, वह एक दृढ़ और स्थिर प्रेम है। सिंहल से लौटते समय गन्धर्वसेन से कही गई उसकी विनयशीलता की घोषणा करती हैं।''[६]

१—मेघनाथ बध (हिन्दी-अनुवाद), भूमिका, पृ० १३७।

२—वाग्भट : काव्यानुशासन, अध्याय ५, (नायक-प्रकरण)।

३—रुद्रट : काव्यालंकार, अध्याय १२ (७—८ श्लोक)।

४—विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण, अध्याय ३, श्लोक २०।

५—वही, श्लोक २२।

६—डा० श्यामसुन्दरदास : रूपकरहस्य, पृ० ६४—६५।

नायक रत्नसेन का चरित्र एक आदर्श प्रेमी, त्यागी और बलिदानी के रूप में महान् है।

अन्य पात्रों में नागमती आदर्श भारतीय पतिप्राण देवी है, शुक गुरु प्रतीक और अप्राकृत शक्ति वाला पक्षी है। पद्मावती आदर्श भारतीय प्रेमिका के रूप में (भी) चित्रित है। अलाउद्दीन और राघवचेतन असत् पक्ष के प्रतिनिधि पात्र हैं। देवपाल भी उन्हीं की तरह है।

रसात्मकता और प्रभावान्विति

भावोद्रेक एवं रसात्मकता महाकाव्य का एक प्रमुख तत्व है। पदमावत में मुख्य रूप से आद्यंत रति-भाव की व्यञ्जना हुई है, इसलिए इसमें श्रृंगार रस का प्राधान्य है। इसमें करुण, वीभत्स, वीर, शान्त प्रभृति रसों का भी समावेश है। इसके आरम्भ और अंत में शान्त रस का चित्रण हुआ है। इस काव्य के अन्त में करुण-प्लावित शान्त रस की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। जायसी ने अन्तिम दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि वहाँ निर्वेद ही निखार पा सका है। "अन्तिम दृश्य से अत्यंत शान्तिपूर्ण उदासीनता बरसती है। कवि की दृष्टि में मनुष्य-जीवन का सच्चा अन्त करुणा-क्रन्दन नहीं, पूर्ण शान्ति है। राजा के मरने पर रानियां केवल विलाप ही नहीं करती हैं. बल्कि इस लोक से अपना मुँह फेर कर दूसरे लोक की ओर दृष्टि किए आनन्द के साथ पति की चिता में बैठ जाती हैं। इस प्रकार कवि ने सारी कथा का शान्त रस में पर्यवसान किया है।"[१] इतना होने के बावजूद प्रेम और रति-भाव के प्राधान्य के कारण शुक्लजी[२] ने भी इसे श्रृंगार रस प्रधान काव्य माना है। डा० शम्भूनाथसिंह का कथन है कि "यदि जायसी का लक्ष्य लौकिक प्रेम-पंथ के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम-पंथ का निरूपण है और इसके लिए यदि उन्होंने प्रतीक और संकेत पद्धति-द्वारा-आध्यात्मिक प्रेम की स्पष्ट व्यंजना भी की है। तो उसमें रहस्यवाद की दृष्टि से श्रृंगार रस को नहीं, शान्त रस को ही प्रधान मानना पड़ेगा। अन्तिम दृश्य में जो रस व्यंजित होता है वह उसी अप्रस्तुत पक्ष के शान्त रस की अंतिम परिणति है। जिस तरह सूर, मीरा और कबीर श्रृंगारिक वर्णन शान्त रस के अंतर्गत माने जाते हैं उसी तरह पदमावत का समग्र प्रभाव शान्त रस समन्वित है, श्रृंगार रस वाला नहीं। अत: लौकिक कथा की दृष्टि से पदमावत में विप्रलम्भ श्रृंगार अंगी है और आध्यात्मिक दृष्टि से वह शान्त रस-प्रधान काव्य है।"[३]

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी-ग्रंथावली (भूमिका) पृ० ६८।

२–वही, पृ० ७१।

३–हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० ४७७।

ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जायगा कि जायसी ने कहीं-कहीं कथा के बीच में अवसर आने पर अलौकिक सत्ता की ओर संकेत किया है, पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि इसमें प्रस्तुत कथा ही गौड़ है। वस्तुत: रत्नसेन और पद्मावती रानी की कहानी ही इसमें प्रधान है और इसमें शृंगार रस की ही प्रधानता है। इसमें शृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। संयोग और वियोग दोनों के सुन्दर चित्र पदमावत में दर्शनीय हैं। वियोग शृंगार के वर्णन में जायसी एक महान् कलाकार के रूप में पूर्ण सफल हैं। रत्नसेन-नागमती, रत्नसेन-पद्मावती को आलम्बन मानकर कवि ने संयोग शृंगार के कुछ चित्र उपस्थित किए हैं। षटऋतु वर्णन की योजना संयोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में है। चित्तौड़ आने पर नागमती का मान और रत्नसेन की मधुर भर्त्सना में संयोग शृंगार का ही सौंदर्य है। विवाह के अनंतर रत्नसेन-पद्मावती-समागम का चित्र भी संयोग शृंगार काही है।

विप्रलम्भ शृंगार में जायसी ने अपनी प्रतिभा का सुन्दर प्रयोग किया है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी विप्रलम्भ शृंगार की एक अनमोल निधि है। इस विरह वर्णन में गम्भीरता है और है विरह-व्यथा की सच्ची अनुभूति। पदमावत का बारहमासा वियोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के रूप में वर्तमान है।

रत्नसेन के चित्तौड़ से सिंहल की ओर विदा होते समय उसकी माता और अन्य रानियों का क्रन्दन एवं उनकी शोक-विह्वल दशा करुण रस के अन्तर्गत हैं। 'सिंहल से रत्नसेन की विदाई' भी करुण-रस कारक सुन्दर स्थल है। लक्ष्मी समुद्र खंड में भयानक रस मिलता है। युद्ध के प्रसंगों में वीर रस की प्रधानता है। यद्यपि जायसी मुख्य रूप से शृंगार के कवि हैं, फिर भी पदमावत में अन्य रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। अलाउद्दीन के साथ युद्ध में गोरा की मृत्यु, तथा देवपाल के साथ रत्नसेन की मृत्यु की घटनाओं में पाश्चात्य ढंग की निगति की अवस्था दिखाई पड़ती है और अन्त में नागमती-पदमावती का सती होना, स्त्रियों का जौहर, बादल की मृत्यु और चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार आदि घटनाओं में पाश्चात्य ढंग की अंतिम कार्यावस्था-अवसान का रूप दिखाई पड़ता है। इस तरह पदमावत का अंत पाश्चात्य महाकाव्य के ढंग का है उसमें पाश्चात्य नाटकों के ढंग की प्रभावान्वित मिलती है। इस प्रभावान्विति में पाश्चात्य काव्यों की तरह उद्वेग और अशान्ति मूलक तीव्रता और स्तब्ध कर देनेवाली वेदना नहीं है, बल्कि शान्तिपूर्ण गम्भीरता और चिरस्थायी निर्मलता और पवित्रता है, जो पाठकों के चित्त को अभिभूत कर उन्हें असाधारण भावलोक में पहुंचा देती हैं। इस तरह उसमें रसात्मकता के साथ गम्भीर प्रभावान्विति भी मिलती है।''[१]

१—डा० शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ४७८।

वस्तु–वर्णन

युग जीवन का एक सम्पूर्ण और जीवन्त चित्र उपस्थित करने के लिए महा-काव्य में जीवन के अनेक प्रसंगों और प्रकृति के विविध रूपों का विशद, कलात्मक और प्रभविष्णु वर्णन होता है। ये वर्णन-वैविध्य रसाभिव्यक्ति एवं भावोद्रेक के सहायक होकर आते हैं।

पदमावत में वस्तु-वर्णन के प्रसंगों में जायसी ने अपनी साधारण वर्णन-शक्ति का परिचय दिया है। सिंहल द्वीप, जलक्रीड़ा, सिंहलद्वीप-यात्रा, समुद्र, विवाह, युद्ध, नखशिख, आदि के माध्यम से जायसी ने पदमावत में विविध वस्तुओं के वर्णनों की योजना करते हुए अपने काव्य-कौशल का परिचय दिया है। सिंहलद्वीप वर्णन के अन्तर्गत अमराई, सरोवर, कुएं, नगर हाट, दुर्ग प्रभृत्ति वर्णनों का समावेश है। अमराई, सरोवर, नगर और दुर्ग के वर्णनों में पर्याप्त सजीवता और जीवन्तता है। सिंहल के पनघट का हुलसित वर्णन और वहां की पनिहारिनियों का विलसित सौन्दर्य जायसी की कवित्व शक्ति और वर्णन की कुशलता एवं सुन्दरता के परिचायक हैं। 'मानसरोदक खंड' में 'जल-क्रीड़ा' वर्णन के साथ ही पद्मिनी के रूप का अनुपम चित्रण किया गया है।

> सरवर तीर पद्मिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकुलाई ॥
> ससि-मुख अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँपासा ॥
> ओनई घटा परी जग छाहां। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहां ॥
> छपि गै दिनहिं भानु के दसा। लेइ निसि नरवत चांद परगसा ॥
> भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महं चन्द देखावा [१] ॥

सात समुद्रों के काल्पनिक वर्णन भी मनोरम हैं। भीषणता, दुस्तरता, ताड़-पहाड़ की तरह लहरें आदि के चित्रण बन पड़े हैं। रत्नसेन-पदमावती के विवाह वर्णन के प्रसंग में हिन्दुओं में प्रचलित विवाह-पद्धति का सुन्दर वर्णन किया गया है।[२] युद्ध-वर्णन अत्यन्त जीवन्त हैं। सैनिकों का भिड़ना, शस्त्रों की झनकार, हाथी-घोड़ों की चिग्घाड़, शस्त्र-प्रहार, रुण्ड-मुण्ड का गिरना, रक्त-स्राव प्रभृति वर्णनों में पूर्णतः सजीवता वर्तमान है।

इस प्रकार पदमावत में वस्तु वर्णन का वैविध्य और विस्तार दिखाई पड़ता है। नगर, दुर्ग, यात्रा, मंत्रणा, जल-क्रीड़ा, दूत, युद्ध, पुत्रोदय, विवाह, विरह, संयोग, आदि के वर्णनों से एक युग का समग्र रूप चित्रित हो गया है। इन

१—जा० ग्रं० पदमावत, मानसरोदक, खंड दोहा ४।

२—शिवसहाय पाठक : पदमावत का काव्य–सौंदर्य,।

वर्णनों में यद्यपि कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार लक्षित होता है, फिर भी इनसे कथा में रसात्मकता और सौन्दर्य की निष्पत्ति होती है।

महत्कार्य

भारतीय लक्षण ग्रन्थकारों के मतानुसार महाकाव्य का कार्य महत् होना चाहिये। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि पदमावत में कार्य है 'पद्मावती का सती होना।'[१] रामकृष्ण शिलीमुख[२] का कथन है कि पदमावती की प्राप्ति ही कार्य है। डा० शम्भूनाथसिंह[३] का कथन है कि पदमावत, पृथ्वीराज–रासो या आल्ह खंड में 'महत्कार्य' ढ़ढ़ना बेकार है। उनका कथन है कि पदमावत में पाश्चात्य देशों के नाटकों की तरह 'कार्य-क्षय' या 'नायक का विनाश' दिखाया गया है।

यह स्पष्ट है कि जायसी का लक्ष्य है प्रेम-पंथ का निरूपण। दृश्यकाव्यों की ही भांति प्रबंध काव्य के विन्यास में भी 'कार्य' महत्वपूर्ण होता है। अरस्तू ने इसे 'युनिटी आव ऐक्शन' (कार्यान्विय) की संज्ञा दी है। शुक्लजी का कथन ठीक ही है कि 'पदमावत' का कार्य है पदमावती का सती होना। समस्त घटनायें और वृत्तान्त 'कार्य' तक पहुँचाने में सहायक हैं। इसी दृष्टि से हीरामन शुक और राघव चेतन का उतना ही वृत्त आया है, जितने का कार्य की ओर अग्रसर करने में योग है। पदमावत की समस्त घटनायें कार्य से सम्बद्ध हैं।

प्राचीन विद्वानों की यह मान्यता थी कि कार्य महत्वपूर्ण होना चाहिए। नैतिक, सामाजिक या धार्मिक प्रभाव की दृष्टि से कार्य बड़ा होना चाहिए, जैसा 'रामचरितमानस' में रावण का बध है और 'पदमावत' में पद्मिनी का सती होना। आधुनिक काव्य-मर्मज्ञ यह बात नहीं मानते। आर्नल्ड ने प्राचीन आदर्श का समर्थन किया है। जो हो, जायसी का भी यही आदर्श है। उन्होंने अपने कार्य के लिए महत्कार्य चुना है जिसका आयोजन करने वाली घटनाएं भी बड़े डीलडौल की हैं, जैसे बड़े-बड़े कुंवरों और सरदारों की तैयारी, राजाओं और बादशाहों की लड़ाई इत्यादि। इसी प्रकार दृश्य वर्णन भी ऐसे आते हैं, जैसे गढ़, वाटिका, राजसभा, राजसी भोज और उत्सव आदि के वर्णन।[४]

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० ७३–७४।

२—रामकृष्ण शिलीमुख : सुकवि–समीक्षा, पृ० ७१ (हिन्दी महाकाव्यों के स्वरूप-विकास में उद्धृत)।

३–डा० शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप–विकास, पृ० ४३५।

४—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ७४—७५।

उदात्त भाषाशैली

महाकाव्य में भाषा-शैली की गरिमा आवश्यक है। महान् विषय के प्रतिपादन और उदात्त भावों की उत्कृष्ट व्यंजना के लिए महाकाव्य की भाषा और शिल्प–विधान में भी गरिमा आवश्यक है। विद्वानों का कथन है कि 'पदमावत' में महाकाव्यों (संस्कृत के) चरित काव्यों (अपभ्रंश के) और मसनवी काव्यों के तत्वों का सुन्दर समावेश हुआ है। इसीलिए पदमावत की शैली में इन तीनों प्रकार के काव्यों की गरिमामयी शैली के दर्शन होते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत में खंडों या सर्गों का विभाजन नहीं है। कथा आद्यन्त धारा-प्रवाह रूप में लिखी गई है। इसी कारण यदि कोई कहे कि पदमावत सर्ग बन्ध रचना नहीं है, तो यह ठीक नहीं होगा, क्योंकि पदमावत की अनेक प्राचीन प्रतियों में कथा को खंडों में विभाजित किया गया है। ग्रियर्सन, शुक्लजी, डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल आदि विद्वानों ने अपने संस्करणों में भी खण्डों की व्यवस्था की है, और जब तक कोई अत्यन्त प्राचीन, कवि की समसामयिक या उसकी मूलप्रति नहीं मिलती, जिसमें 'खंड' विधान न हो तब तक यह बात स्वीकार्य नहीं है। दूसरे प्राकृत अपभ्रंश में बिना खण्ड-विधान या सर्ग विधान के भी प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। तीसरे यदि सर्गबद्धता महाकाव्य का स्थिर और अन्तरिक लक्षण नहीं है। अत: 'खंड' —विभाजन न होने पर भी पदमावत के महाकाव्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित होती। अन्य बाह्य लक्षणों में प्रारम्भ में नामस्क्रिया, आशीर्वचन वस्तु-निर्देश आदि के विधान पदमावत में मिलते हैं। गउड़बहो की भांति इसका भी मंगलाचरण बहुत लंबा है। समासोक्ति, प्रतीक, संकेत और रोमांचक शैलीजन्य सौन्दर्य पदमावत में दर्शनीय हैं। पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है। उसमें बीच-बीच में पुराने अपभ्रंश-प्रयोग भी मिलते हैं। उसमें सर्वत्र व्याकरण-समस्त ठेठ अवधी भाषा का निराला माधुर्य भरा हुआ है। मुहावरे, सूक्तियां–लोकोक्तियां कहावतें उसके सौन्दर्य–वर्द्धन के लिए अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सुप्रयुक्त हैं। जायसी की भाषा भावाभिव्यंजना में सर्वत्र पूर्णत: समर्थ, स्वाभाविक और सरस है।

पदमावत में आद्यंत दोहा–चौपाई की कड़बक पद्धति अपनाई गई है। अपभ्रंश के अनेक चरित काव्यों में भी इसी प्रकार की कड़बक-पद्धति के दर्शन होते हैं। पदमावत में जायसी ने प्रत्येक कड़बक में सात अर्द्धालियां साढ़े तीन चौपाइयां रखी हैं—उन्होंने सभी कड़बकों में चौपाई छन्द का और कड़बकात में घत्ता रूप में दोहा छंद का प्रयोग किया है।

पदमावत में कहने की शैली अत्यन्त अकृत्रिम, प्रवाहपूर्ण, सरस और प्रभविष्णु है। "अत: सरल किन्तु गंभीर, सहज किन्तु उदात्त, माधुर्यपूर्ण किन्तु गरिमा-

यी शैली के प्रयोग की दृष्टि से पदमावत हिन्दी में अपने ढंग का सर्वश्रेष्ठ महा-काव्य है।''[१]

महान् उद्देश्य

महाकाव्य के निर्माण के मूल में महान् उद्देश्य का होना आवश्यक है। 'चतुर्वर्ग' में से किसी एक की प्राप्ति को भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकार किया है। आत्म-परिष्कार और मानव-जीवन का उत्थान भी महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य माना गया है सत् की असत् पर न्याय की अन्याय पर, पुण्य की पाप पर विजय का चित्रण करता हुआ महाकाव्यकार 'शिवम्' 'लोकमंगल' को ही साध्य मानता है।

डा० शम्भूनाथ सिंह का विचार है कि पदमावत के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसका उद्देश्य महान् है। ''वह कवि की महती काव्य-प्रतिभा से पुष्ट होकर इस काव्य को हिन्दी के अन्य सभी प्रबन्ध काव्यों से भिन्न एक निराले और उच्च पद पर बिठा देता है। काम मोक्ष की प्राप्ति उसका उद्देश्य है। यह अवश्य है कि पदमावत का कवि लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अनुभूति का आभास भी देता चलता है। अत: मोक्ष-प्राप्ति ही पदमावत का प्रधान फल है। – – अत: अप्रत्यक्षत: पदमावत का फल मोक्ष है।''[२] भले ही अप्रत्यक्ष रूप से पदमावत का उद्देश्य मोक्ष हो, पर जायसी ने प्रत्यक्ष रूप से 'काम' की ही प्रतिपादना की है सिद्धान्त- प्रतिपादन, आध्यात्मिकता आदि की बातें पदमावत में मिल सकती हैं, पर है वह काव्य-ग्रन्थ-शृंगार-प्रधान ग्रन्थ-जिसमें मुख्य रूप से काम ही साध्य है।

व्यावहारिक और कलात्मक दृष्टिकोणों से देखने पर भी पदमावत का उद्देश्य महान् दिखाई पड़ता है। ''पदमावत में मानवता के उस सच्चे स्वरूप का उद्घाटन किया गया है, जो प्रेम, उदारता, त्याग, साहस, सहिष्णुता और बलिदान की व्यापक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। अत: उसका उद्देश्य व्यापक और उदार मानवता का प्रसार और मानव-हृदय का विस्तार और परिष्कार करना है। मनुष्य इस काव्य-सरोवर में स्नान करके स्वाभाविक और विशुद्ध मानव बनकर निकलता है। उसका हृदय कोमल उदार और प्रशस्त बन गया रहता है।'' शुक्लजी का कथन है कि ''एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है, जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप-रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव

१—डा० शम्भूनाथसिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ४७६।

२—वही, पृ० ४२९।

करने लगता है। "जायसी ने अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसी गुप्त तार को झंकृत करके मनुष्यमात्र[1] के, चाहे वह जिस जाति, धर्म या वर्ग का हो हृदय को जागृत और प्रेम-प्लावित करने का प्रयत्न किया है।

इस उद्देश्य के लिये उन्होंने मानव की रागात्मिका वृत्ति–काम-को व्यापक अर्थों में गृहीत किया है। इसी के माध्यम से जायसी ने प्रत्यक्ष-जीवन की एकता का दृश्य उपस्थित किया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान के बीच की दूरी को स्नेहामृत से भर कर एकत्व की प्रतिष्ठा की है। इसीलिये जायसी के अध्यात्मवाद के अन्तराल में उदार और प्रेम-प्रवण मानवतावाद की सरस्वती प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार मानवतावाद की प्रतिष्ठा-जाति, धर्म आदि की कृत्रिम दीवालों को तोड़ कर मानव मात्र को एक सूत्र में बांधना ही पदमावत का उद्देश्य है और जायसी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सफल हुए हैं।

महती प्रतिभा, मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि एवं तज्जन्य गांभीर्य

महती प्रतिभा-संपन्न कवि जब किसी महत्शक्तिमयी प्रेरणा से उद्वेलित और अभिभूत होता है तो वह महाकाव्य की सर्जना में प्रवृत्त होता है। महाकवि मार्मिक स्थलों का सुन्दर विधान करता चलता है। वह जीवन के मर्मस्पर्शी प्रसंगों का पारखी होता है। ये मर्मस्पर्शी चित्रण मानव हृदय की रागात्मिका वृत्ति को जागृत कर देते हैं। महाकवि के प्रबन्ध रस से नीरस पद्यों में भी रसवत्त आ जाती है—

> रसवत्पद्यान्तर्गत नीरस पदानामिव पद्यरसेन प्रबन्ध सेनैवतेषां
> रसवत्ताङ्गीकारात।[2]

पदमावत के घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसे स्थलों का पूरा सन्निवेश है, जो मानव की रागात्मिका वृत्ति को उद्बोधित कर देते हैं, उसके हृदय को भाव-मग्न कर देते हैं। जायसी ने वस्तु–वर्णन के रूप में और पात्र द्वारा भाव-व्यंजना के रूप में इन प्रसंगों को कथा-प्रवाह के बीच रखा है। वस्तुत: कथावस्तु की गति इन्हीं स्थलों तक पहुँचने के लिए होती है। पदमावत में ऐसे स्थल अनेक हैं जैसे मायके में कुमारियों की स्वच्छंद क्रीड़ा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेम-मार्ग के कष्ट, रत्नसेन को शूली की व्यवस्था, उस दण्ड के संवाद से विप्रलंभ की दशा में पदमावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पदमावती का संयोग, सिंहल से लौटते समय सामुद्रिक दुर्घटना से दोनों की विह्वल स्थिति,

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जा० ग्रं० भूमिका, पृष्ठ २।
२–विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण।

नागमती की विरह-दशा, वियोग–संदेश, रत्नसेन की प्रणय-स्थिति अलाउद्दीन के संदेश पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोष और युद्धोत्साह, गोरा बादल की स्वामिभक्ति और क्षत्रतेज से भरी प्रतिज्ञा, अपनी सजल नेत्रा भोली भाली वधू की ओर वे पीठ फेर कर बादल का युद्ध के लिए प्रस्थान, देवपाल की दूती के आने पर पद्मावती द्वारा सतीत्व गौरव की अपूर्व व्यंजना, पद्मावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन, चित्तौर की दशा आदि। इनमें से पांच स्थल तो बहुत ही अगाध और गम्भीर हैं। नागमती-वियोग, गोरा-बादल-प्रतिज्ञा, कुंवर बादल का घर से निकल कर युद्ध के लिए प्रस्थान, दूती के निकट पद्मावती द्वारा सतीत्व-गौरव की व्यंजना और सहगमन। ये पांचों ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में हैं। पूर्वार्द्ध में तो प्रेम ही प्रेम है, मानव जीवन की और उदात्त वृत्तियों का जो कुछ समावेश है, वह उत्तरार्द्ध में है।[१] ये प्रसंग अत्यन्त मार्मिक, सरस और प्रभविष्णु हैं।

सचमुच जायसी की प्रतिभा महनीय थी। उन्होंने ब्रह्म, जीव और संसार की गुत्थी को सुलझाने के लिए जिस जीवन्त कथानक की कल्पना की है और उसमें अत्यन्त मर्मस्पर्शी स्थलों का चुनाव करके हृदय का समग्र रस निचोड़ कर जिस प्रकार अपने काव्य को आकर्षक और रसमय बना दिया है और साथ ही लौकिक शक्ति की अनुभूति को उन्होंने जिस कुशलता से ऊर्ध्वगामी बनाकर आध्यात्मिक जगत की ओर अग्रसर किया है, वैसा सामान्य प्रतिभा वाला कवि नहीं कर सकता है। काव्य-रचना का उद्देश्य तो कुतबन, मंझन, उसमान आदि सबका वही था जो जायसी का था, किन्तु उन कवियों में जायसी जैसी स्वाभाविक और शक्तिमती काव्य-प्रतिभा नहीं थी। जायसी की काव्य-प्रतिभा के दर्शन सबसे अधिक पदमावत के रूप-सौंदर्य और विरह की मनोदशाओं के वर्णन में होते हैं। जिनमें उन्होंने परम सत्य के चिरंतन, अनन्त और अनिर्वचनीय सौन्दर्य को मानव–जगत में प्रतिबिम्बित करके भी उसकी विराटता और अनन्तता को नष्ट नहीं होने दिया, साथ ही उस अनिर्वचनीय वर्ण्यवस्तु की आभा को पूर्णतः झलका भी दिया है। समासोक्ति एवं प्रतीकात्मक शैली की अभिव्यक्ति विराट् काव्य चेतना की ही देन हो सकती है।

पदमावत में प्रेम, उत्साह, वैराग्य, शोक, करुणा, भक्ति, भय आदि स्थायी भावों की गम्भीर अभिव्यंजना हुई है। क्या वैविध्यपूर्ण मनोदशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति और क्या अनुभूतियों की सच्चाई–गहराई, क्या अभिव्यक्ति की मर्मस्पर्शिता और क्या तीव्रता–प्रभविष्णुता, क्या प्रेम-प्लावित भाव और क्या तीव्र सौन्दर्य-चेतना की विराट्ता–प्रातिभासिकता, क्या दार्शनिक-आध्यात्मिक अनुभूतिजन्य गुरुत्व और क्या उदाराशयता–समन्वयात्मकता, क्या कथा की लौकिकता और क्या

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल ; जा० ग्रं०, भूमिका, पृ० ६९-७०।

समासोक्ति-पद्धतिजन्य आध्यात्मिकता—गूढ़ता, क्या परमसत्ता के दर्शन के लिये व्याकुलता और क्या तड़पन-जन्य प्राणशक्ति—मार्मिक अनुभूति और प्रियतम के प्रर्शन इत्यादि महान् तत्वों ने पदमावत में गुरुता—गम्भीरता और महाकाव्य के उपयुक्त महत्ता की प्राण-प्रतिष्ठा की है।

सूफी विद्वान् और सन्त पदमावत का आदर पुराण[१] की भाँति करते रहे हैं। सोलहवीं शताब्दी से ही विविध भाषाओं में इसका अनुवाद होने लगा था। इसकी अनेकानेक प्रतियां फारसी, अरबी, उर्दू, नागरी आदि में लिखी गईं। इस ग्रंथ के अनेक संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। इसकी अनेक टीकायें भी लिखी गई हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि 'व्यापक प्रभाव ओर लोकप्रियता की दृष्टि से भी देखने से रामचरितमानस के बाद पदमावत का ही नाम आता है।

महाकाव्य की अमरता उसकी आन्तरिक प्राणशक्ति, सशक्त प्राणवत्ता और अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति के कारण भी होती है। गम्भीर जीवनदर्शन, मौलिकता महान् उदार-सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रेम-सन्देश, लोक-प्रवृत्तियों का अन्तः स्पन्दन, लोकभाषा का पूर्ण निखार, लोकमंगल की भावना, आध्यात्मिक साधना, मानवतावाद आदि ने पदमावत में एक महान् जीवन-दर्शन और सशक्त प्राणवत्ता का उपस्थापन किया है। उस युग की साधना का शाश्वत अमर संदेश पदमावत में मूर्तिमान है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में—

"जीवन के अनेक स्वरूपों और उनकी अनेक स्थितियों को महाकाव्य में स्थान मिलता है। चरित्रों के विभिन्न आदर्श उसमें रहा करते हैं। कहाकाव्यों में स्वभावतः वस्तु-चित्रण की प्रधानता होती है। प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन भी वस्तु रूप में ही होता है।"[२]

इन बातों का उल्लेख करते हुए आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "परम्परागत महाकाव्यों के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि काव्य कहने में कोई हिचक नहीं होती।"[३]

यही बात थोड़े से परिवर्तन के साथ हम पदमावत के लिए भी कह सकते हैं कि पदमावत में महाकाव्य के कतिपय परम्परागत लक्षण भले ही न मिलें, फिर भी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि पदमावत हिन्दी के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में हैं।

१—पदुमावति, सं० ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी (रा० ए० सो० संस्करण भाग १) टीका पृष्ठ २

२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृष्ठ ७८

३— " " पृष्ठ ८०

६

चरित्र रचना

"प्रबन्ध काव्य में स्वभाव की व्यंजना पात्रों के वचन और कर्म द्वारा ही होती है। उनके स्वगत भावों और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। पद्मावत में प्रबन्ध के आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले तीन पात्र मिलते हैं- मद्मावती, रत्नसेन और नागमती। इनमें से किसी के चरित्र में कोई ऐसी व्यक्तिगत विशेषता कवि ने नहीं रखी है जिसे पकड़ कर हम इस बात का विचार करें कि उस विशेषता का निर्वाह अनेक अवसरों पर हुआ है या नहीं। इन्हें हम प्रेमी और पति-पत्नी के रूप में ही देखते हैं। हम इन्हें अपनी किसी व्यक्तिगत विशेषता का परिचय देते नहीं पाते। अत: इनके सम्बन्ध में चरित्र-निर्वाह का एक प्रकार से प्रश्न ही नहीं रह जाता।"[१]

इसके साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि उपर्युक्त तीनों पात्र प्रेम के विविध आयामों के प्रतीक हैं। तीनों प्रेममय हैं और तीनों के रूप-शील का अत्यन्त आकर्षक और भव्यतम विन्दु प्रेम है। तीनों का सम्पूर्ण कार्य कलाप प्रेम से ही परिचालित है। इसी महत् वैशिष्ट्य का जायसी ने इस काव्य में पूर्णत: निर्वाह और अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से विकास भी किया है।

पदमावत का चरित्र विधान

सूफी साधना में प्रेम ही सब कुछ है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के प्रेमियों के चरित्र का विकास इसी पृष्ठभूमि में हुआ है। प्राय: सभी नायक प्रेम-साधना में लीन चित्रित किये गये हैं।

पदमावत के चरित्र-विधान या स्वभाव-चित्रण को अध्ययन की सुविधा के लिए पांच रूपों में विभक्त किया जा सकता है-

(१) आदर्श रूप में,

१-पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली। (भूमिका), पृ० १२०

(२) जाति–स्वभाव के रूप में,
(३) व्यक्ति–स्वभाव के रूप में,
(४) सामान्य स्वभाव के रूप में,
(५) प्रतीक के रूप में और अलौकिक स्वभाव के रूप में ।

जायसी का प्रतिपाद्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना, जिसके द्वारा साधक अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है । रत्नसेन एक उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में चित्रित है । वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज-पाट सुख-भोग किंबहुना अपना सर्वस्व त्याग देने को प्रस्तुत है । वह प्रेम-पंथ का सच्चा पथिक है । प्रेम-पंथ पर चलते हुए वह युद्ध पसन्द नहीं करता । साथी राजकुमारों के आग्रह करने पर भी वह गन्धर्वसेन की सेना से लड़ना नहीं चाहता, पर अलाउद्दीन का पत्र पाकर वह युद्ध के उत्साह से भर उठता है । पदमावती एक आदर्श प्रेयसि है । 'प्रियतम को शूली का दण्ड मिला है' इस समाचार को सुनकर वह उसी के साथ प्राण-त्याग करने को बद्ध परिकर है (जियैं तजियौं मरौं ओहि साथा) । चित्तौर आगमन और उसके पश्चात् भी वह एक त्यागमूर्ति प्रेयसि के रूप में चित्रित है, किन्तु उसमें भी सपत्नी के प्रति ईर्ष्या की प्रबल वृत्ति है । उसके रूप, शील और चरित्र के द्वारा जायसी ने एक अलौकिक चरित्र की भी सृष्टि की है । इसी प्रकार नागमती को ही लें, तो स्पष्ट हो जाता है कि 'आदर्श रूप में, प्रतिप्राणा भारतीय गृहिणी है । पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि सामान्य स्वभाव के रूप में चरित्र-विधान तो चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत नहीं, वह सामान्य प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत है, जिसे पुराने ढंग के आलंकारिक स्वभावोक्ति कहेंगे । आदर्श चित्रण के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की यह है कि जायसी का आदर्श चित्रण एक देशव्यापी है । तुलसीदास जी की तरह सर्वाङ्गपूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया है । रत्नसेन प्रेम का आदर्श है, गोरा बादल वीरता के आदर्श हैं, पर एक साथ ही शक्ति वीरता, दया, क्षमा, शील, सौंदर्य और विनय इत्यादि सबका कोई एक आदर्श जायसी के पात्रों में नहीं है । गोस्वामी जी का लक्ष्य था मनुष्यत्व के सर्वतोमुख उत्कर्ष द्वारा भगवान् के लोक-पालक–स्वरूप का आभास देना । जायसी का लक्ष्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना जिसके द्वारा साधक अपने विशेष अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।''[१] पदमावत में आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले तीन ही पात्र हैं रत्नसेन, पद्मावती और नागमती । पद्मावत के चरित्र-चित्रण पर प्रकाश डालते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है 'पात्रों का चरित्र-चित्रण हिन्दू जीवन के आदर्शों से पूर्ण सामंजस्य रखता है । रत्नसेन में प्रेम का आदर्श है । वह

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० १२१ ।

सम्पूर्ण रूप के धीरोदात्त दक्षिण नायक है। धीरोदात्त नायक में जितने गुण होने चाहिए वे सभी गुण रत्नसेन में हैं। पद्मावती स्त्री–धर्म की मर्यादा में दृढ़ और प्रेम करने वाली है। नागमती भी प्रेम के आदर्श में दृढ़ है, 'मोहिं भोग सों काज न बारी। सौंह दीठि का चाखनहारी॥" में उसका उत्कृष्ट नारीत्व निहित है। – – सतोगुणी और तमोगुणी दोनों वर्गों के पात्रों में युद्ध होता है और अन्त में सतोगुण की विजय होती है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में हिन्दू संस्कृति का प्रभाव पूर्ण रीति से है।[1] पदमावत का एक बहुत बड़ा महत्व पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है।

रत्नसेन

हिन्दी सूफी काव्यों के नायकों में प्रेम के वे सभी लक्षण पाए जाते हैं जिन्हें सूफी साधकों के लिए आवश्यक कहा जाता है। इनमें सौन्दर्य के प्रति तीव्र आकर्षण है। उनका प्रेम ईश्वर–प्रदत्त है। ये नायक धीर हैं, गंभीर हैं, सहिष्णु हैं, त्यागी हैं, भोगी–योगी हैं, तपस्वी और उत्साही हैं, प्रेम के असीम आनन्द ही उन्हें कर्म-पथ पर आगे बढ़ाता है।

जायसी ने रत्नसेन से चरित्रांकन में आदर्श प्रतिष्ठापक व्यवहारों का ही प्राधान्य दिखाया है। वह एक गहरे सच्चे प्रेमपंथ का आदर्श पथिक है। महाकवि रत्नसेन के माध्यम से पदमावत में प्रेम की साधनावस्था का भी प्रवेश किया है। सूफी प्रेमाख्यानों के नायक प्रेम में अपने गृहस्थ जीवन में रुचि नहीं लेते, वे अपनी विवाहिताओं की उपेक्षा करते हैं, किन्तु तभी तक जब तक कि उनकी प्रेयसी प्राप्त नहीं हो जाती। पश्चात् वे पूर्व-विवाहिता की उपेक्षा नहीं करते।

रत्नसेन हीरामन सुआ से पद्मावती के अप्रितम रूप का गुणगान सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए चल पड़ा। उसने राज–पाट, घर–द्वार सब कुछ छोड़ दिया। वह जोगी वेश में चल पड़ा। चित्तौड़ में करुणा-क्रन्दन मच गया। माता व्यर्थ रोती–कलपती रह गई। पतिप्राणा रानियां बालों को नोंच कर खलिहान करती रह गईं पर रत्नसेन न रुका। उसके हृदय-प्रदेश को तो पद्मावती की प्रेमधारा ने आप्लावित कर दिया था। उसे ज्ञात था कि प्रेम-पंथ तो असिधार है, मझधार का संघर्ष है, वह जानता था कि उसका लक्ष्य सात सागर पार है, उसे पाना अत्यन्त साधना का काम है, किन्तु वह यह भी जानता था कि प्रेम–साधना की राह में शूल भी फूल हो जाते हैं 'क्लेषः फलेन हि पुनर्वेतां बिधते' की चरितार्थता होती है। वह साधना के पथ पर चलता है, कहीं भी विचलित नहीं होता। वह अपनी प्रेयसि में ही ईश्वरीय सौंदर्य के दर्शन करता है।

१—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३१७।

कुछ लोग इस बात को धार्मिक और नैतिक दृष्टकोणों से आंकते हुए रत्नसेन के कार्य को निन्दनीय कहते हैं। उनका कथन है कि अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग, घर–द्वार छोड़कर सात सागर पार पराई स्त्री के लिए जोगी बनना, सिंहल गढ़ के भीतर चोरों की तरह सेंध देना प्रभृति बातें लोक दृष्टि से निन्द्य हैं। "बात–बात में सदाचार का दम्भ भरने वाले तो इसे 'बहुत बुरी बात' कहेंगे। पर प्रेम–मार्ग की नीति जानने वाले चोरी से गढ़ में घुसने वाले (साधक) रत्नसेन को कभी चोर न कहेंगे। वे इस बात का विचार करेंगे कि वह प्रेम के लक्ष्य से कहीं च्युत तो नहीं हुआ। उनकी व्यवस्था के अनुसार रत्नसेन का आचरण तब निंदनीय होता, जब वह अप्सरा के वेश से आई हुई पार्वती और लक्ष्मी के रूप-जाल और बातों में फंस कर मार्गभ्रष्ट हो जाता। पर उस परीक्षा में वह पूरा उतरा।"[१] मृत्यु की चिन्ता भी उन्हें डिगा नहीं पाती। "पदमावती का पिता गन्धर्वसेन रतनसेन को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा देता है। रत्नसेन विचलित न होकर उसी प्रकार हँसता रहता है जिस प्रकार सूली पर चढ़ते हुए मंसूर प्रसन्न था।"[२] वह तो पद्मावती के प्रेम में सूली का भी हँसते-हँसते स्वागत करता है —

"जाकर जीव मरै हर बसा। सूरी देख सो कस नहिं हंसा॥
आजु नेह सोंहोइ तवेरा। आजु पुहुमि तजि गगन बसेरा॥"

इस स्थल पर करणीय–अकरणीय और रत्नसेन के स्वभाव की दुर्बलता के प्रश्न उठाए जा सकते हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रेम की साधनावस्था में ये कार्य उसके शील में परम भूषण हैं। स्पष्ट है कि वह अद्भुत साहसी और कष्ट सहिष्णुता उसका सम्बल है, अनुराग उसकी निधि है और प्रेम-जन्य विराग उसका साधक, रानियों का रोना और सात सागर पंथ के प्रत्यूह हैं। यह अवश्य है कि वह पद्मावती के लिए अधीर हो उठता है, स्वयं को भिखारी बताता है, इष्ट के लिए दुराग्रह करता है चोरी करता है, सेंध लगाता है। प्रेम–जन्य होने के कारण ये सब वस्तुयें उसके शील में दूषण रूप में नहीं, अपितु भूषण रूप में आई हैं। उसके लिए पद्मावती एक सामान्य नारी नहीं है। वह उसमें विराट सत्ता का दर्शन करता है। वह उसके रक्त की बूंद–बूंद में बसी हुई है, रोम-रोम में बसी हुई है, हाड़-हाड़ में उसी का शब्द है, नस-नस के उसकी ध्वनि है।" रत्नसेन – पद्मावती का संयोग भी विवाह के अनंतर ही होता है। इस प्रकार जायसी ने स्वथ्य सामाजिक प्रेम का चित्रण किया है। चन्दायन की तरह पर-पत्नी उढ़ारने का उन्होंने चित्रण कहीं नहीं किया है।

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी–ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० १२२–२३।
२—जा० ग्रं० ना०प्र० स० काशी। जस मारै कहँ बाजातूरु। सूरी देखि हँसा मंसूरू॥"

यह एक प्रकार की लोक-धारणा और उपदेश की बात है कि बहुत अधिक सम्पत्ति के समक्ष बड़े-बड़े त्यागियों को भी लोभ हो जाता है और इसीलिए सिंहल द्वीप से लौटते समय का रत्नसेन का अर्थलोभ उसके व्यक्तिगत स्वभाव के अंतर्गत नहीं आता।

जाति-स्वभाव के रूप में रत्नसेन एक क्षत्रिय वीर के रूप में उपस्थित होता है। उसका स्वभाव उग्र है और संकल्प अत्यन्त दृढ़। अपने लक्ष्य के लिए प्राणों की बाजी लगाकर सात समुद्र पार जाना उसके प्रेम और आदर्श स्वभाव के साथ जाति स्वभाव का परिचय क्षत्रिय होने के नाते अभिमान एवं पौरुष से उसका व्यक्तित्व ओत-प्रोत है। राघव चेतन से पद्मावती की रूप-चर्चा सुनकर अलाउद्दीन से रत्नसेन के पास पद्मावती के लिए दूत भेजा – उस समय उसके मुख से निःसृत वाक्य उसके संस्कार और जातीय अभिमान को अत्यन्त गौरव एवं ओजपूर्ण शब्दों में व्यक्त करते हैं –

"सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानहु देव तरपि घन गाजा॥
भलेहिं साह पुहुमी पति भारी। मांग न कोउ पुरुष कै नारी॥
को मोहिं तें अस सूर अपारा। चढ़ै सरग, खसि परै पतारा॥
हौं रनथंभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दींन्ह सरीरू॥
हौं तौ रतनसेन सक-बंधी। राहु वेधि जीती सैरिंधी॥
हनिवंत सरिस भारु मैं कांधा। राधौं सरिस समुद हठि बांधा॥
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइँ साका। सिंहलदीप लीन्ह जौं ताका॥
ताहि सिंघ कै गहै को मोछा। जौं अस लिखा होइ नहिं ओछा॥

— — — — — —

तुरुक, जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकंदर कै नाई॥

— — — — — —

महूँ समुझि अस अगुमन, संचि राखा गढ़ साजु॥
काल्हि होइ जेहि वना, सो चढ़ि आबौ आजु॥"[1]

रत्नसेन ने अलाउद्दीन के दूत को जो उपर्युक्त उत्तर दिया था, वह उसके चरित्र पर अधिक तीव्र आलोक डालता है। इस प्रकार के अनेक कथोपकथनों के विधान द्वारा जायसी ने रत्नसेन के स्वभाव का उद्घाटन किया है।

दिल्ली से लौटने के अनन्तर देवपाल की दुष्टता और दूती की करतूत की

१–पदमावत (बादशाह-चढ़ाई-खण्ड), दोहा १, ३, ५ (४९१–४९३) (सं० डा० अग्रवाल) पृ० ५१०–११।

बातें पद्मिनी से सुनकर वह क्रोधाभिभूत हो उठा। वह प्रातः ही देवपाल को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा करके कुंभलनेर पर टूट पड़ता है। पेट में सांग घुस जाने पर भी देवपाल पर सांघातिक आक्रमण करके उसे मार कर बांध लेता है। प्रतिकार की यह प्रबल वासना राजपूतों का जातिगत लक्षण है।[१]

रत्नसेन के चरित्र की व्यक्तिगत विशेषतायें भी अनेक स्थलों पर मिलती हैं। गोरा-बादल उसे चेतावनी देते हैं, किन्तु वह अलाउद्दीन के कपटाचार पर शंका नहीं करता, वह उसके साथ गढ़ के बाहर पहुँचाने चला जाता है। दूसरे पर छल का सन्देह न करने से राजा के हृदय की उदारता तथा सरलता तथा नीति की दृष्टि से अपनी रक्षा का पूरा ध्यान न रखने में अदूरदर्शिता, प्रकट होती है। वह व्यक्तिगत रूप से दोनों पत्नियों से समान प्रेम करता है। सिंहल में पक्षी से नागमती का सन्देश पाकर चित्तौड़ जाने के लिए वह गन्धर्वसेन से झूठ बोलता है।

रत्नसेन का व्यक्तित्व एक साधक का व्यक्तित्व है। कहीं वह अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है और कहीं ब्रह्मसाधना में लीन—

'चला भुगुति मांगै कहं, साजि कयातप जोग।
सिद्धि होउं पद्मावति पाएं, हिरदय जेहिं क वियोग॥

ये 'सिद्ध' और 'वियोग' विशिष्ट अभिप्राय व्यंजक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हैं। रत्नसेन काया है और पदमावती जीव है — दोनों अभिन्न हैं —"अब तुम जीव कया वह जोगी। कया करोग जीव पै रोगी।"[२]

सरग सीस धर धरती हिया सो प्रेम समुंद।
नैन कौड़िया होइ रहे, लै लै उठहिं सो बुंद॥

रत्नसेन पदमावती का भिखारी है, क्योंकि ईश्वरीय रूप उसमें अभि- व्यक्त है।

रत्नसेन के व्यक्तित्व के इस आध्यात्मिक या साधनात्मक पहलू की ओर भी कवि ने समासोक्ति पद्धति से अनेक स्थलों पर इंगित किया है।

योगी रूप में संकटों की परवाह न करने में, सच्चे साधक के रूप में, युद्ध-कला — प्रवीण रूप में, स्वच्छ निष्कपट हृदय वाले व्यक्ति के रूप में, क्षत्रियोचित गौरवशाली रूप में एवं सर्वोपरि आदर्श प्रेमी के रूप में उसके स्वभाव में निष्ठा, त्याग, लगन, उदात्तता और आत्म बलिदान प्रभृति आकर्षण के केन्द्र हैं।

पद्मावती

पदमावती का चरित्र-विधान-रूप और शील—पदमावत में अत्यन्त विशद रूप में चित्रित हुआ है। प्रधान नायिका होने से उसके चरित्र में भी आदर्श का ही प्राधान्य

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल, जा० ग्रं०, पृ० १२४।
२—जा० ग्रं० हि० एके०, २५६।

सामान्य स्वभाव के अंतर्गत माना जाता है, इसी से इनके वर्णन में रसिकों को एक विशेष प्रकार का आनन्द आया करता है। ये भाव व्यक्तिगत दुष्ट प्रकृति के अन्तर्गत नहीं कहे जा सकते। पुरुषों ने अपनी जबरदस्ती से स्त्रियों के कुछ दु:खात्मक भावों को भी अपने विलास और मनोरंजन की सामग्री बना रखा है। जिस दिलचस्पी के साथ वे मेढ़ों की लड़ाई देखते हैं उसी दिलचस्पी के साथ अपनी कई स्त्रियों के कलह को। नवोढ़ा का 'भय और कष्ट' भी नायिका भेद के रसिकों के आनन्द के प्रसंग हैं। इसी परिपाटी के अनुसार स्त्रियों की प्रेम-संबन्धिनी ईर्ष्या का भी शृंगार रस में एक विशेष स्थान है।"[1]

पद्मावती का सतीत्व हिन्दू नारी के चरम उत्कर्ष का निदर्शन है। इसीलिए कहा जा सकता है कि 'सबसे उज्ज्वल रूप जिसमें हम पद्मिनी को देखते हैं वह सती का है। "देवपाल और अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूतियों की परीक्षा की अग्नि में तप कर उसका सतीत्व स्वर्ण-सदृश प्रभाविकीर्णकारी हो गया है। ऐसे लोकोत्तर और दिव्य प्रेम की परीक्षा के लिए तैयार की गई कसौटी कदापि उसके महत्व के उपयुक्त नहीं है, किन्तु इतना अवश्य है कि सतीत्व की इस परीक्षा द्वारा उसके चरित्र की उज्ज्वलता और महानता की ही व्यंजना हुई है। रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर वह अपनी सपत्नी के साथ चिता पर बैठकर 'सती' हो जाती है। पदमावती और नागमती का सती होना 'जौहर' के रूप में नहीं कहा जा सकता है। (वे तो 'सती' हुईं और अन्य क्षत्राणियों ने 'जौहर' व्रत का सम्पादन किया)। सती होकर इन दोनों रानियों ने अपने प्रेम की अनन्यता की चरितार्थता ही कर दी है। सती होते समय उनके उल्लास का पारावार उमड़ रहा था—

'नागमती पदमावति रानी। दुवौ महा सत सती बखानी।
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी॥
आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिए, आजु आगि हम्ह जूड़॥"[2]

— — — —

एहि दिवस हौं चाहति नाहा। चलौं साथ पिउ देइ गलबांहा॥
लागीं कण्ठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अंगन मोरी॥[3]

यह एकनिष्ठ प्रेम पद्मावती के स्वभाव को अन्यतम निखार प्रदान करता है।

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी-ग्रन्थावली, (भूमिका) पृ० १२५।
१—पदमावत (पदमावती—नागमती—सती खंड), (५७।२)
२—वही (५७।१, ५७।३)

पदमावती के रूप और शील की अभिव्यंजना में जायसी ने प्रायः उसकी अलौकिकता की ओर भी इंगित किया है। उसके रूप-वर्णन के प्रसंग में आध्यात्मिक संकेत मुखरित है —

'बेनी छोरि झार जो बारा। सगर पतार होई उजियारा ॥
झिर हुलि सोहरि परहि भुइं बारा। सगरे देस होइ अंधियारा ॥'[1]

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर भी कवि ने पद्मावती के रूप सौन्दर्य वर्णन और उसके स्वभाव के माध्यम से उसकी लौकिकता के साथ ही अलौकिकता की ओर भी इंगित किया है।

नागमती

नागमती के स्वभाव-शील म उप-नायिका के प्रायः सभी गुणधर्म मिल जाते है। वह रत्नसेन की प्रथम विवाहिता पत्नी है (नागमती तू पहिलि बियाही)। अत्यन्त सुन्दरी और श्यामवर्ण नागमती को अपने रूप-सौन्दर्य पर गर्व है, यह स्त्रियों का सामान्य स्वभाव भी है। सुए से अपने रूप की भर्त्सना सुनकर, वह सशंक और क्रोधपूर्ण हो जाती है। रत्नसेन राज-पाट और घर-द्वार त्याग कर सिंहल जाने लगा, तो नागमती ने साथ चलने का अनुरोध किया। उसने तर्क भी दिया—

'अब को हमहि करहि भौगिनी। हमहूं साथ होब जोगिनी ॥
की हम्ह लावहु अपने साथा। की अब मारि चलहु एहि हाथा ॥
तुम अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहंवां राम तहा सग सीता ॥
जौ लहि जिउ संग छाड़ न काया। करिहौं सेव पखरिहौं पाया ॥

— — —

राज करहु चितउर गढ़ राखहु पिय अहिबातु।

इन पंक्तियो से स्पष्ट है कि नागमती सीता की भांति पतिप्राणा थी। उसका अनुरोध रत्नसेन की तर्कधारा में बह जाता है—

राघव जो सीता संग लाई। रावन हरी कवन सिधि पाई ॥

रत्नसेन नागमती को रोता छोड़कर चला जाता है।

पति सिंहलद्वीप गए। सुदीर्घ काल बीत गया। उसने अपनी गृहिणी की सुधि तक न ली। उस रोती कलपती और विरह मे विसरती रानी ने रत्नसेन और पद्मावती को पंछी-दूत द्वारा संदेश प्रेषित किया —

'हाड़ भए सब किंगरी, नसै भईं सब तांति।
रोवं रोवं ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भांति ॥

— — —

१–जा०ग्रं० (पदमावत : नखशिख खंड, दो० ६) पृ० ५५।

न्य है। मूलत उसके रूप और शील के दो आशय है—

(१) लौकिक और (२) अलौकिक।

पद्मावती पदमावत मे केन्द्र-स्वरूप है। इसी का आश्रय लेकर समस्त घटनाओ का स्रोत फूटा है। वह सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की राजकुमारी है। चित्तौड आगमन के पूर्व एक सच्ची और आदर्श प्रेमिका के रूप मे चित्रित हुई है। वह एक आदर्श निष्ठामयी, सुदृढ़ प्रेमिका और व्यवहार कुशल नायिका है। 'रत्नसेन के लिए सूली की आज्ञा' की सूचना पाकर वह व्याकुल हो उठती है। अपने प्रियतम के ही साथ वह प्राण त्याग देने को उद्यत है।

'काढि प्रान बैठो लेइ हाथा। मरे तो मरो जियौ एक साथा ॥''

प्रारम्भ मे वह कुछ कठोर अवश्य थी, पर जब उसे रत्नसेन के सच्चे प्रेम की प्रतीति हो गयी, तब उसने आत्मसमर्पण किया। उसके कोमल और प्रेम प्रवण हृदय की ही अभिव्यक्ति है — ''यदि अपना प्राण जलाने से प्रियतम मिले, तो मैं अपना प्राण जला दूँ।''[१] सिंहल से चित्तौड आते समय समुद्र मे जलयान ध्वस हुआ, हाथी, घोडे, कोश आदि सब नष्ट हो गये। लक्ष्मी-समुद्र से विदा पाकर वे चलने लगे, तब राजा को समुद्र ने हस, शार्दूल आदि पाच अलभ्य वस्तुये दी और रानी को लक्ष्मी ने पान के बीडे के साथ कुछ रत्न दिये। पुरी मे आने पर राजा ने देखा कि हस, शार्दूल आदि पाच वस्तुओ के अतिरिक्त उसके पास पाथेय कुछ नही है। पद्मावती ने तुरन्त उन रत्नो को बेचने के लिए प्रस्तुत कर दिया, जो विदा के समय लक्ष्मी के द्वारा छिपाकर दिए गए थे। यहा पर उसका चरित्र एक सच्चरित्रा, बुद्धिमती और आदर्श गृहणी के रूप मे निखर उठता है—

''लछमी अहा दीन्ह मोहिं बीरा। भरि कै रतन पदारथ हीरा ॥
काढि एक नग बेगि भँजावा। बहुरी लच्छि फेरि दिन पावा ॥''[२]

तुलसीदास ने भी गगातट पर केवट के प्रसग मे सीता के प्रत्युत्पन्नमतित्व और 'मणि मुँदरी' देने की बात के द्वारा सीता के गृहणीत्व को निखारने का प्रयत्न किया है—

''पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी ॥''[३]

राघव-चेतन को रत्नसेन ने देश से निकल जाने की आज्ञा दी थी। पदमावती सच्चे अर्थो मे रानी थी। उसने सोचा कि राघव-चेतन पण्डित है, गुणी है, जादू टोने मे प्रवीण यक्षिणी सिद्ध है। यदि वह थोडा मिथ्याचारी है तो क्या हुआ?

१—पदमावत छन्द ४०१।

२—पदमावत (लक्ष्मी-समुद्र-खण्ड) २८।५—६।

३—रामचरितमानस, काशिराज सस्करण, पृ० १८२ (१०२।३)।